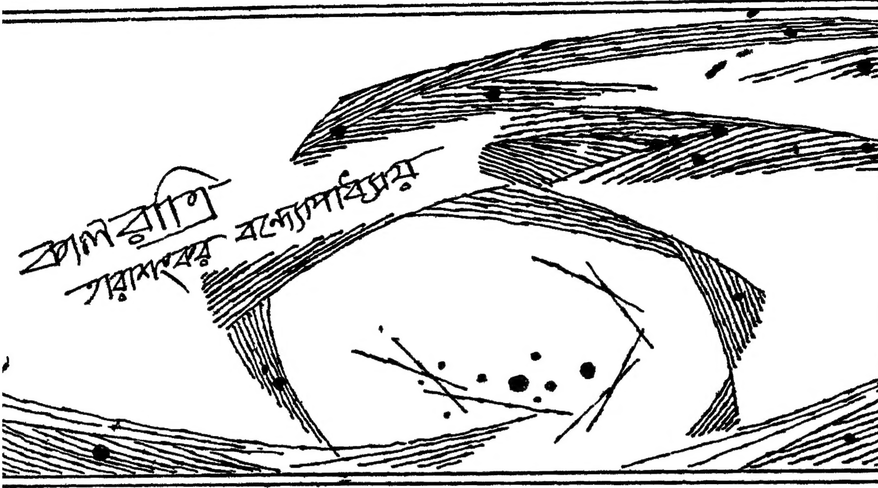
कालरात्रि



ताराशंकर वन्द्योपाध्याय

राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट, दिल्ली

अनुवादक
प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

मूल्य : आठ रुपये

पहला संस्करण 1971 , © ताराशकर वन्द्योपाध्याय
राष्ट्रीय प्रिंटिंग वर्क्स, शाहदरा, दिल्ली, मे मुद्रित
KĀLARĀTRI, Translation of the Bengali Novel 'KĀLRĀTRI'
by Tarashankar Vandyopadhyaya Rs. 8 00

कालरात्रि

एक

अंशुमान के लिए कुछ क्षणो तक पृथ्वी की सारी गति, समस्त चेतना, सारा जीवन-स्पंदन जैसे रुक गया। ऐसा लगा, जैसे सूर्य के चारों ओर अपनी कक्षा मे पृथ्वी का निरतर घूमना भी रुक गया हो।

परिणाम-स्वरूप अशुमान की आखो के सामने ठहरे हुए इस जगत् का सभी कुछ धीरे-धीरे मिटने लगा। वहां न कोई प्रकाश था, न अंधकार। उसका अपना अस्तित्व भी उसके लिए मिटा जा रहा था; बहुत कुछ मिट भी गया था। बुझते हुए दीपक की बाती के किनारे, क्षीणतम आलोक और उत्ताप की तरह उसके अस्तित्व का अवशेष मात्र किसी तरह बच रहा था।

मोटर ऐक्सिडेंट में घायल, खून से लथपथ, वह शिशु क्या उसीका लडका है? जिसे वह दोनो हाथो के बीच उठाकर मेडिकल कॉलेज के इमर्जेन्सी वार्ड की टेबुल पर डाल आया था, वह अनजान शिशु क्या उसी-का पुत्र है? सीता ने उसके पास से जाकर, अपने ही हाथो अपनी माग मे सिन्दूर भरा था और उसीकी उपाधि धारण करके उसने उस बच्चे को गर्भ मे रक्खा था, जन्म दिया था और उसे इतना बड़ा बनाया था; अंत मे···!

यहां उसकी चेतना और चेतना की लौ को बुझ जाना चाहिए था; लेकिन वही से यह लौ थोडी और जगमगा उठी थी और धीरे-धीरे पूरी चेतना मे लौट आई थी। साथ ही साथ पृथ्वी भी चलने लगी—सवेरे

का प्रदीप अपने प्रकाश और उत्ताप से जगमग हो गया। याद आया कि पास के बाथरूम के फर्श पर वह बच्चा और सीता के खून-सने कपडे, लिथ्पथ हुए पडे है।

बाथरूम के अदर से एक मीठी गध आ रही है। वह लैवेंडर साबुन इस्तेमाल करता है, बेशक देशी लैवेंडर, उसी साबुन से उसने हाथ-मुह धोया है—वही गध हवा के साथ मिली हुई है—उसके साथ है कुहासा जैसा कुछ। सामने रंजन खडा है। रजन ही यह खबर लाया है।

गति का वेग उसे पीछे की ओर ले गया। सामने बढने की सीमा तो श्मशान तक फैली है। उससे आगे नही। कम से कम अभी, इसी क्षण नीमतल्ला अथवा केवडातल्ला के श्मशान को लाघकर आगे नही जाया जा सकता। नही, वैतरणी नही, भागीरथी और काटी गगा आगे नही बढने देती। मृत्युलोक या अमरलोक या परलोक के स्वर्ग-नरक की बात भी नही है। अशुमान उसपर विश्वास नही करता। वास्तविक जीवन मे ही मानो इसके बाद कोई कल्पना अपने डैने नही फैला पाती। श्मशान मे लकडी की एक चिता सजाकर उसपर उस बच्चे की लाश रखकर···।

वह चौंक उठा। उसका हृदय ऐंठने लगा। वह बच्चा उसीकी सतान जो है!

चिता मे आग देने जाकर उसका मन थमकर रुक जाता है। पीछे की ओर भागता है। मन उसका पीछे की ओर भागता है।

उसका मन चौरगी रोड और धर्मतल्ला के जक्शन पर जाकर रुका। पिछले दिन का तीसरा पहर—पाच बजे का वक्त; पश्चिम आकाश मे सूर्य तब भी काफी तप रहा था और उसकी दीप्ति भी खूब प्रखर थी। अंशुमान टैक्सी से लौट रहा था। उसकी टैक्सी के सामने ही एक प्राइवेट कार थी। उसके सामने था एक खाली ट्रक और दो तल्लेवाली एक स्टेट बस। ये सभी गाड़िया दाहिनी ओर, धर्मतल्ला स्ट्रीट मे मुड रही थी—सामने की बस, ट्रक और प्राइवेट भी। उसकी टैक्सी सीधी उत्तर

की ओर जाएगी। प्राइवेट कार ने ट्रक और बस को पार करके, जिसे कहते है 'पार कर निकल जाना', उसी तरह आगे बढने की कोशिश मे एक कर्कश आवाज़ के साथ धक्का लगाया। धक्का ट्रक के साथ लगा था। गाडी का दाहिनी ओर का पिछला हिस्सा एकदम चूर-चूर हो गया। एक भयानक आवाज़ हुई।

इसी गाडी पर सीता थी। और एक बच्चा था। पीछे की सीट पर ये ही दोनो थे। आगे बैठकर जो सज्जन गाडी चला रहे थे, वे बच गए। छोटे बच्चे का एक हाथ एकदम कुचल गया था—टूटे हुए शीशे के टुकडों से कटकर छोटे-छोटे घाव बन गए थे और उनसे खून बह रहा था।

सीता को देखकर अशुमान चौक उठा था। बच्चा सीता का ही था, इसमे सदेह नही। सीता के चेहरे का प्रतिरूप था—इसके अलावा जो औरत टैक्सी पर सदूक-पिटारी, बेडिग वगैरह लादे लिए जा रही थी, अस्पताल मे जिसके वैनिटी बैग से सेकेड क्लास के रेल के दो टिकट निकले थे, वह बच्चा उसकी सतान के अलावा और क्या हो सकता था?

जो गाडी चला रहे थे, उन्हे कुछ न हुआ था। पुलिस उन्हे थाने मे ले गई। सीता को और उस बच्चे को उठाकर अशुमान अपनी टैक्सी मे मेडिकल कॉलेज के अस्पताल मे ले आया था। बेशक, साथ मे पुलिस भी थी।

सीता की चोट बाहर से ज्यादा नही जान पडी थी। उसके माथे पर डेढ इच लवा कटने का घाव ही सबसे बडा था। इसके अलावा काच के छोटे-छोटे टुकड़े बिध गए थे, वे बहुत चिन्ताजनक नही लगे थे किसी-को। लेकिन वह बेहोश हो गई थी, यही डर की बात थी। बाहर से न दीख पडनेवाली कोई चोट अगर उसके माथे या कलेजे मे लगी हो तो वह मामूली न होगी।

अशुमान उस बच्चे के लिए अपना कुछ खून भी दे आया था। किस्मत की बात है—डॉक्टर ने यही कहा था। उसका खून लेते समय डॉक्टर ने कहा था—इसे किस्मत की बात ही कहना पडेगा। एक ही ग्रुप का खून है।

तब अशुमान थोडा चौका था। सीता के बच्चे का और उसका खून एक ही ग्रुप का है ?

उसका मन और पीछे चला गया।

उसकी आखे अपने-आप लौटकर उसके सोने के कमरे की ओर जा लगी; उसकी सिंगल-बेड चारपाई पर।

पांच साल पहले चला गया मन। १९६२ मे। तारीख भी याद है। २७ जुलाई। तारीखे उसे याद नही रहती। डायरी रखना उससे पार नहीं लगता। बहुतेरी सस्थाए साल के शुरू मे ही उसके पास डायरी-कैलेंडर वगैरह भेजती हैं। एक डायरी मे वह खर्च नही, जमा लिख रखता है। लाचार होकर ही लिखता है। न लिखे तो हिसाब के वक्त गडबडी होती है। एक दूसरी डायरी मे वह नाम-ठिकाना लिख रखता है कि डायरी लिखेगा। १ जनवरी से कई दिन लिखता भी है, लेकिन उसके बाद नही लिख पाता। अचानक किसी दिन डायरी उठाकर दो-चार पंक्तिया लिख देता है।

१९६२ की २७ जुलाई को लिखा है—'आज सीता चली गई। कल रात वह यही थी। मैंने उसे जबर्दस्ती रोक रखा था।'

उसके बाद कई पक्तिया लिखकर काट दी गई है। स्याही के दाग से उस लिखावट को बिलकुल ढक दिया गया है। लेकिन अशुमान को याद है। 'पछतावा हो रहा है। अन्याय ।' काट दिया है। उसके बाद लिखा था—'वह समय के साथ नही चल सकी। मुझे अचरज होता है···यह क्या वही सीता है ?'

सवेरे के वक्त वह गहरी नीद मे सोता है। उस दिन नीद गहरी नही थी। नही हो सकी थी। सीता के साथ उसने इसी एक चारपाई पर रात बिताई थी। नीद हल्की थी। एक जेट प्लेन की लैंडिंग की कर्कश आवाज से उसकी नीद खुल गई। प्लेन रोज़ आता है, रोज उतरता है—लेकिन उस दिन सिर पर इतना नीचे आ गया था कि वह चौककर जाग गया था।

उसे याद है, पहले उसे नीद मे ही ऐसा लगा था कि शायद कोई

दुर्घटना हो गई है। शायद जेट टूट गया है और मकान के ऊपर गिर रहा है।

दूसरे ही क्षण वह प्लेन उसके घर से आगे बढ गया था। लेकिन उसके मुह से अपने-आप एक ऊबी-सी आवाज़ निकल आई थी।

'अः' कहकर उसने आखे खोल दी थी।

सब कुछ ठीक-ठीक याद आता है।

इतना स्पष्ट याद आता है, जैसे किसी आश्चर्यजनक सोते मे नहाकर ऐसा स्पष्ट हो गया हो। नही तो इन पाच बरसो मे हवा से उडनेवाली धूल के आवरण को किसी तरह हटाया नही जा सकता था। वह याद धुधली हो ही जाती।

उसे याद आता है, बिस्तरे पर सोए उसके चेहरे के पास ही वह तकिया था जिसपर सीता ने सिर रखा था। कोई गध उसकी नाक मे आई थी या नही, याद नही है। कम से कम इस बारे मे वह सजग नही था।

तकिये ने ही उसकी सुधि का दीपक जला दिया था। वह बिजली के बल्ब की तरह 'दप्' करके जल उठा था।

पल-भर मे उसे पिछली रात की सारी बाते एकसाथ याद आ गई थी। उसने खुली आखो से देखा कि सीता उसीकी ओर देखती खडी थी; जैसे जाने के लिए तैयार होकर वह आखे खोलकर उसके देखने की प्रतीक्षा मे ही खडी हो। आखें मिलते ही, या शायद उससे पहले से ही सीता के होठो पर जरा-सी और हल्की सी हसी फूट आई थी।

उस हसी और उस दृष्टि ने काटे की तरह अशुमान को बीध दिया था। उसे याद है, उसने तुरत आखे मूद ली थी। लेकिन सीता ने कहा था—आखे न मूदो। मैं जा रही हू।

—जा रही हो?—अंशुमान आखे खोले बिना न रह सका।

सीता ने कहा था—लेकिन यह क्या हुआ, बताओ तो?

इस बार फिर अशुमान ने आखे बद कर ली थी। सीता फिर हसी थी। साथ ही साथ उसके पूरे चेहरे पर बहुत ही करुण विषाद की छाया

उतर आई थी। चुप और अधमुदी आखोवाले अशुमान की ओर देखकर, वेदना से विकल होकर, सीता ने कई बार सिर हिलाया था। कहा था—जवाब नही दोगे ?

इस बार आखे बद किए हुए ही अशुमान ने कहा था—डोण्ट बी सेटिमेटल।

सीता ने इसका कोई उत्तर नही दिया। इस बार उसके होठो पर व्यग्य की निष्ठुर हसी दीख पडी थी। सामने के टेबुल से उसने हैड बैग उठा लिया था, उसके बाद चप्पले चटकाती, बहुत आहिस्ते से कमरे का दरवाजा खोलकर बाहर जाना चाहा था, लेकिन दरवाजे तक जाकर वह एक बार फिर थमककर रुक गई थी। बिस्तरे पर उसके हिस्से की जो खाली जगह थी, उसकी ओर देखती रही थी। शायद उसने यह जानने की कोशिश की थी कि वह जगह उसके जीवन का स्वर्ग है या नरक। लेकिन यह सवाल वह किससे करती ? भगवान को मानती होती तो शायद उनसे कर सकती थी। यह नही कि वह मानती ही नही—मानती तो है, लेकिन विश्वास नही है। सवाल पूछने लायक विश्वास तो नही ही है। उसके कलेजे से एक लबी सास जैसे अपने-आप निकल पडी। उसका नाम सीता है, लेकिन अशुमान को वह किसी तरह रावण के रूप मे नही सोच सकती। ये सीता की ही कही बाते हैं। उसने उस दिन अपने मुह से ये बाते नही कही थी। कुछ समय बाद चिट्ठी मे लिखी थी। चिट्ठी उसने फाडकर फेक दी है, लेकिन बातें आज भी नही भूल सका है। लगभग चार महीने बाद अचानक वह चिट्ठी आई थी। उसका पता नही था। उसने लिखा था—"मेरा नाम सीता है, इसीसे उस दिन सवेरे इच्छा हुई थी कि तुम्हे रावण कहकर गाली दू। लेकिन किसी तरह वैसा नही कर पाई। मैं तुम्हे राक्षस के रूप मे नही सोच सकी। तुम रावण को कुसंस्काराच्छन्न बर्बर कहते, ब्राह्मण के शाप को अटल समझकर वह सीता का सर्वनाश नही कर सका। तुम कुसस्काराच्छन्न नही हो—बर्बर भी नही हो; और मेरे जीवन का कुछ ऐसा नही था जो तुमको दिया न जा सके। लेकिन ··। रहने दो—सब भुला दो। तुम भी भुला दो, मैं भी कोशिश करूगी। तुम रावण नही हो। मैं भी सीता नही

हूं। तुम्हारी किसी आज्ञा से मैं अग्नि-परीक्षा नही दूगी।"

जाने दो। उस दिन जब दरवाज़े के पास खडी सीता ने लौटकर बिस्तर की ओर देखा था, तब उसकी आखे अपने-आप मुद गई थी। आखे बद किए ही उसने कहा था—सुनो।

सीता ने कहा था—क्या कहते हो ?

उसने कहा था—कोई दिक्कत होने पर मुझे खबर देना।

इन बातो से उसके माथे पर कई लकीरे उभर आई थी। जवाब देते उसकी आवाज कडवी हो आई थी। जवाब मे उसने कडवे स्वर मे कहा था—दिक्कत ?

आज भी याद है, ये बाते ताने की तरह लगी थी और उसने भी कडवे स्वर मे कहा था—हा, हा, दिक्कत। बचपना न करो।

सीता ने कहा था—बहुत गभीर होकर कहा था—नही, मैं बच्ची नही हू। पहले बचपना करती थी, अब बिलकुल नही करती। इसीके लिए अभिनय करना ही छोड दिया। यह ज्ञान मुझे है कि मैं बच्ची नही हूं। इसीसे मेरे सब कामो की जिम्मेदारी बिलकुल मेरी ही है। शायद इसीलिए अपने-तुम्हारे देने-पावने का हिसाब चुकाकर, जो देना था दिए जा रही हू, और जो लेना था लिए जा रही हू। इसके लिए चाहे जो भी सकट आए, वह बिलकुल मेरा होगा। उसके लिए मैं तुम्हारी शरण क्यो लूगी या तुम्हे याद ही क्यो करूगी ?

अशुमान ने आखे बद किए ही कहा था—आइ सी !

सीता बोली थी—तुम्हारे मुह से अग्रेजी बोली बहुत बुरी लगती है अशु ! तुमने बगला मे एम० ए० पास किया है। बगला मे ही कहो न !

ये बाते उसे ऐसी लगी थी जैसे बिजली कडकडाकर उसके चेहरे पर चाबुक जैसी लगी हो। सीता ने बडी कठोर बात कही थी। सीता का परिवार बहुत बडा अग्रेजीदा परिवार था और अशुमान बगला मे एम० ए० पास करने और लेखक के रूप मे प्रसिद्ध होने पर भी अग्रेजी मे बहुत पोख्ता नही था। इसीसे वह अग्रेजी पर नाराज था। चोट खाकर, कहने की कोई बात बहुत ढूढने के बाद, वह बोला था—तुमने

अग्रेज़ी के प्रति मेरी नाराज़ी को व्यर्थ कर दिया है सीता ! हो सकता है, मेरी अग्रेजी खराब हो, लेकिन तुम्हारे जैसे अग्रेजीदा लोगों की अग्रेज़ी कुछ बहुत अच्छी है, ऐसा नही है···

कहते-कहते वह रुक गया था; क्योकि उसे जान पडा था कि सैंडल पहने हल्के पैरो की धीमी आवाज उठने लगी है और धीरे-धीरे, और भी धीमी होती हुई वह दूर चली गई है।

सीता क्या चली गई ?

बोलना बद करके अंशुमान ने आखे खोली थी। देखा था, सीता नही है। वह चली गई है। कमरे का दरवाजा एक पल्लेवाला था; उसको ठेलकर बद कर गई है। वह दरवाज़े के फ्रेम के पास उठगा-सा आ लगा है। लेकिन अशुमान को लगा था, मानो दरवाज़े का वह पल्ला सीता और उसके बीच हमेशा पडी रहनेवाली एक आड का प्रतीक बनकर, उसकी दृष्टि का अवरोध बनकर खडा है।

कुछ ही मिनटो बाद सीता फिर लौट आई थी। उठगे हुए पल्ले को ठेलकर वह भीतर आ गई थी। उसके हाथो मे कुछ था—पहली नज़र मे वह समझ नही पाया कि क्या है। पास आकर खडी होते ही उसने पहचाना था—फाउण्टेन पेन की स्याही की दवात, लाल स्याही की दवात, और निब पडी हुई एक हैंडल कलम।

अशुमान ने कहा था—बैठो।

—नही, मैं बैठूगी नही, तुम उठो।

—क्यो ? शरीर बडा थका-थका-सा लग रहा है। उठने की इच्छा नही होती।

—लेकिन तुरत ही तुम्हे बाहर जाना होगा। मैं जानती हू, तुम जाओगे। तुम्हारा इगेजमेट है।

—इगेजमेट ?

—हा। जरा देर पहले किसीने टेलीफोन किया था।···शायद तुम्हारी किसी बाधवी ने। वे यहा आएगी। तुम सो रहे थे। हरि ने टेलीफोन पर बाते की थी। पास खडी होकर मैंने सुना है।

अशुमान चौंक उठा था—हा। है, बात है ! उसके नये नाटक की नायिका के एक लडकी से मिलने की बात है।

अशुमान, वही प्रसिद्ध अशुमान चौधरी, जो नये युग का नाटककार है। जो स्वय प्रसिद्ध अभिनेता है और जिसने लघु कथाओ और आधुनिक गीतो के रचयिता के रूप मे भी कुछ-कुछ ख्याति पाई है। सभीने सही, बगाल मे जो पढे-लिखे और सस्कृति मे रुचि रखनेवाले हैं, उनमे से अधिकाश उसे पहचानते हैं।

वह आज का कवि-नाटककार नही है, अपने को आनेवाले कल का कवि, नाटककार और गीतकार मानता है। आजकल वह एक नया नाटक लिख रहा है—कृष्ण द्वैपायन।

—अर्थात् महाभारत के रचयिता महाकवि महर्षि वेदव्यास।

अशुमान ने कहा था—मेरी बडी इच्छा थी कि सत्यवती का पार्ट तुम करो—मैं पराशर और शातनु, दोनो का पार्ट करूं।

—नही।

—क्यो ?

—इसका जवाब तुम जानते हो। जो जीवन को लेकर खेल सकता हो, वह खेले। मैं नही खेल सकती।

—सीता !

—दया करके मुझे माफ कर दो और जो कहती हू, वह सुनो—जिसके लिए जाते-जाते मैं लौट आई।

—कहो।

—इस कलम की उलटी ओर से थोडी-सी लाल स्याही मेरी मांग में लगा दो।

—मांग मे लाल स्याही लगा देने से ही क्या···

विषाद-भरे स्वर मे सीता ने कहा था—मैं तर्क करने नही आई। तर्क करने लायक मेरा मन भी नही है। मैं तुम्हे प्यार करती हू अंशुमान! इसीलिए यह याददाश्त चाहती हू। दो, लगा दो।

—नही। आख-मुह-मन सब बदल गया था अशुमान का। आज भी वह उस बात को याद कर सकता है। 'नही' कहकर जब वह करवट बदलकर सोया था, तब सामने की दीवार से लगे ड्रेसिग टेबुल के शीशे मे उसने अपना चेहरा देखा था। याद है, उसका चेहरा कडा और कठोर हो गया था। जैसे आसमान मे बादल छा जाते हैं, वैसे ही उसके मन मे कुछ छा गया था—उसकी छाया उसके चेहरे पर पड रही थी। उसके मन मे निष्ठुर तिरस्कार या कठोर विरोध जम गया था।

वह विवाह मे विश्वास नही करता।

उसके जीवन-पथ का अनुभव विचित्र है। वही क्यो, सारा देश ही इसी राह पर चल रहा है। इसे वह अस्वीकार किस तरह करे? नही—धर्म, ईश्वर, विवाह, प्रेम, किसीमे उसका विश्वास नही है।

—सुनो।

उसके क्रुद्ध चिता-प्रवाह मे बाधा देकर सीता ने कहा था—मैं जा रही हू। फिर कभी न आऊगी। लाल स्याही का यह चिह्न मैं खुद ही डाले ले रही हू। तुमने देखा नही, तुम्हे सुनाए जा रही हू।

इसके बाद सीता चली गई थी।

उसके माथे पर बल पड गए थे।

कुछ क्षण बाद उसने एक दीर्घ नि श्वास लिया था।

महातपस्वी ब्रह्मविद् महर्षि पराशर तीर्थयात्रा के लिए जाते हुए यमुना के घाट पर जा पहुचे थे। उसी घाट पर धीवरराज की परम सुंदरी युवती कन्या सत्यवती इस पार से उस पार तक नाव खेती थी। परिपूर्ण स्वास्थ्य और अपरूप सुदरतावाली युवती कन्या के मादक यौवन ने तपस्वी, ब्रह्म के उपासक, तीर्थयात्री पराशर को भी प्रकृति के नियम से चचल कर दिया था।

पराशर के औरस से धीवर-कन्या सत्यवती के गर्भ से वेदव्यास का जन्म हुआ। उनका जन्म एक द्वीप मे हुआ था। इसीसे नाम पड़ा द्वैपायन। शरीर का रग काला था, इसलिए कृष्ण विशेषण के साथ वे कृष्ण द्वैपायन कहे गए। वे वेदव्यास थे—महाभारतकार। वे भगवान

के समान स्रष्टा थे। वे भी महातपस्वी थे। जीवन-भर उन्होने भी विवाह नही किया था। लेकिन जरूरत पडने पर, माता की आज्ञा से उन्होने कौरव वश मे क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न किया था। इस बात को उन्होने छिपाया नही। उनकी मा सत्यवती ने कुमारी अवस्था मे उन्हे जन्म दिया था। उसके बाद उन्होने महाराज शातनु से विवाह किया था।

आश्चर्यजनक रूप से सत्य का महाप्रकाश हुआ है।

और इसी सत्य को लेकर हमारे जीवन मे कितनी कुठा है, कितनी जटिलता है, कितना तिरस्कार और कितना दड है!

बकिम ने रोहिणी को प्राणदड दिया है। अनुतप्त गोविंदलाल को सन्यासी बनाकर उससे प्रायश्चित्त कराया है।

महाकवि ने विनोदिनी को वैरागिन बनाकर काशी भेज दिया है।

शरत्‌चद्र की किरणमयी राह न पाकर पागल हो गई है। सावित्री सतीश को सरोजिनी के हाथ सौपकर मृत्यु-शय्या पर उपेन दा की सेवा करने गई है।

कल्लोल के युग मे इसीको लेकर विवाद का अत नही था। साहित्य मे हम लोग इस सत्य का सहज प्रकाश नही कर सके, लेकिन इसीलिए आज का समाज तो सत्य से मुह चुराकर अधेरी गुफा मे अपने को नही छिपा रखेगा। मनुष्य शरीर की रग-रग मे यह प्रवृत्ति दुश्मन बन जाना चाहती है—बन भी रही है। आश्चर्य है कि सन् १९४७ तक यह देश दूसरी तरह का था। उससे पहले भी यह प्रवृत्ति थी—नही थी, यह कौन कहेगा?

अचानक वह एक विचित्र चचलता से अस्थिर हो उठा।

सन् १९४७ का १४ अगस्त—स्वाधीनता-प्राप्ति के कुछ घटे पहले वह स्वय भ्रष्ट हुआ था। उसी रात उसके पिता की मृत्यु हुई थी।

उसे लगा था, वह अभिशप्त हो गया है उस पाप से। सोचते-सोचते वह जैसे टूट गया था। जिस सत्य को उसने सत्य के रूप मे स्वीकार किया है, उसपर पूरा जोर देकर वह फिर सीधा नही खड़ा हो सका था।

× × ×

याद आता है, वह परेशान होकर उठ बैठा था। उसने चिल्लाकर कहना चाहा था—सीता ! जीवन के इस देना-पावना को क्या बिलकुल सहज सरल नही बनाया जा सकता ? सीता !

लेकिन वह चिल्ला नही सका। उसके गले से कोई आवाज ही नही निकली। एक लबी सास लेकर वह फिर करवट बदलकर सो गया था। फिर वही प्रश्न मन मे उठा था। ऐसा क्यो हुआ ? अकेले उसीकी नही, सारे देश की एक ही-सी हालत है। उसके अपने जीवन ने, और देश के तमाम लोगो के जीवन ने विचित्र रूप से एक आश्चर्यजनक और उग्र मुखौटा लगा लिया है। जो कुछ पुराना है, वह सभी जैसे असह्य लगने लगा है। हृदय मे अचानक कोई सोया हुआ ज्वालामुखी जागकर आग उगलने लगा है।

राजनैतिक दलो के नेता इस उग्र मनोभाव के सुयोग से लाभ उठाकर लगातार उसमे दाहक पदार्थ डालते जा रहे है।

अनेक प्रकार के दलो की, अनेक प्रकार की नीतिया है।

केवल इसी देश की क्यो, सारे ससार के सभी देशो की हालत भी तो यही है। जल रहे हैं, इन्सान मानो जल रहे हैं। देह की भूख से, पेट की भूख से, मन की भूख से जल रहे है।

हो सकता है, यह आग इस समय की ही हो। यह जो समय है—१६०१ से लेकर १६६६ तक का समय—इस समय मे मानो समय के ही हृदय को चीरकर उसके भीतर से बहुत-बहुत समय की इकट्ठी आग फट पडी है और इतने समय के सब कुछ को जलाए जा रही है। इसी-के बीच है वह और सीता…।

रहने दो सीता की बात।

आज पाच बरस बाद इस मर्मभेदी सवाद को पाकर उसे याद आ रहा है, सीता की बात को दबा देने के लिए ही हरि को पुकारा था।

हरि उसका वाहन है। मित्र लोग कहते हैं वाहन। वह उसका सब कुछ है। नौकर, रसोइया, मित्र और रखवाला—उसके घर की सब व्यवस्थाओ और सारे आयोजनो का कार्यकर्ता और स्वामी, दोनो।

हरि सिर झुकाकर आ खडा हुआ था और यह उसने देखा था। देखने की बात ही थी। सीता इस घर के लिए अतिथि नही है—वह इस घर का हर कोना पहचानती है—और पिछले दो बरसो से उसने सब जगह अपने पैरो की छाप आक रक्खी है। शायद इस घर के सभी दरवाज़े उसके लिए खुल जाने की प्रतीक्षा ही कर रहे थे, लेकिन फिर भी कल जो कुछ हो गया, उसे वे स्वीकार नही कर पा रहे और चुपचाप उसे हजम भी नही कर पा रहे। हरि इस तरह खडा होकर उसी परे-शानी को सूचित कर रहा है। और दिन कमरे मे आते ही हरि ढीठ हो जाता था—स्वभाव से वह ढीठ है ही—बहुत ज्यादा बोलता है। कमरे मे आते ही वह शुरू करेगा—आज क्या खाएगे ? मछली लाऊगा या मास ? कल रात को रजन बाबू ने फोन किया था। और शिव बाबू ने भी फोन किया था। मैने उनको आने से रोक दिया है। आज ही बिजली का बिल देना होगा। जमादारनी रजिया आज पाच दिन से काम नही कर रही। कहने पर झगडा करने पर उतर आती है।

इसी तरह की लगातार बाते। सवाद-प्रश्न-उत्तर। हाट-बाजार और चावल-दाल के भाव से लेकर राजनीति की बड़ी-बडी बाते करता है। वह हरि भी उस दिन गूगा बना खडा था।

जान पडता है, पूरे एक मिनट तक गूगी चुप्पी दम घोटनेवाली गंभीरता से भारी बनी रही थी। इससे अशुमान हाफ उठा था और पिछली रात की सारी स्मृतियो तथा न्याय-अन्याय की सब दलीलो को जबर्दस्ती परे हटाकर कहा था—चाय ले आओ।

हरि ने कहा था—पानी चढा दिया है। वह जमीन की ओर देखता हुआ बाते कर रहा था।

अशुमान विस्मित होकर बोला था—सीता के लिए चाय बनाई, मेरे लिए क्यो नही बनाई ?

—उन्होने तो चाय पी ही नही।

—नही पी ? सीता ने चाय नही पी ? 'शुमान लगभग चौक उठा था। सीता ने चाय तक नही छुई ?

—नही। मैं तो अभी उठा हू। अभी तो बहुत सवेरा है। छः भी

नही बजे । दीदी मुझे पुकारकर चली गईं ।

अशुमान बिगड पडा था ।—सीता बिना चाय पिए चली गई ?

—मैं क्या करता ? साढे पाच बजे पुकारकर चली गईं । बोली—दरवाज़ा बद कर लो हरि ! मै उठा । मैंने कहा—चाय नही पिएगी ? वे कुछ नही बोली । चली गईं ।

अशुमान ने अचरज से कहा था—सीता चाय भी नही पी गई ?

हरि इस बात का ठीक मतलब नही समझ सका था । बोला—इस घर से गईं । तुमसे कहकर गईं । मैं क्या कहू ?

इसके बाद अशुमान को ढूढे कोई बात नही मिली । उसने जो कुछ कहना चाहा था या जो कुछ कहने की बात सोची थी, वह उसकी जीभ पर अटक गई थी; शायद उसकी ही एक सत्ता ने उसका गला दबा रखा था ।

'इस घर से गईं । तुमसे कहकर गईं,'—इसके बाद क्या कहे वह ? उसे हरि से भी सकोच जैसा कुछ लग रहा था । उसी सकोच के चलते उसने सीता के माथे के तकिये की ओर देखा था । तब तक कमरे मे रोशनी आ गई थी । बाहर धूप निकलने-निकलने को हो रही थी । साफ रोशनी मे उसे दीखा था, सीता के माथे का जहा दबाव पडा था, वहा दो लबे केश लगे हुए थे । किसी समय सीता के केश छोटे थे और वह उन्हे शैंपू करती थी । सीता बदल रही थी—उसके केश लबे हो रहे थे और इन लबे केशो से कैथर आइडिन की मीठी गध आ रही थी । तकिया उसने उलट दिया था ।

सीता उसकी मित्र थी । उस समय मित्र से प्रिय मित्र हो गई थी । एक छिपा हुआ, आनदपूर्ण संपर्क धीरे-धीरे गाढ़ा हो आया था ।

उसके गाढतम हो जाने की ही बात थी ।

लेकिन···। लेकिन जो हुआ, उससे मानो प्रश्न रह गया था । सीता प्रश्न ही कर गई थी—यह क्या हुआ, बताओ तो ?

इस प्रश्न मे एक ऐसा कठोर अभियोग था और उस कठोर अभियोग को उपस्थित करनेवाली आवाज़ मे एक ऐसी करुणापूर्ण वेदना थी कि जवाब मे, रूखा होकर, अंग्रेज़ी में 'डोण्ट बी सेंटिमेंटल' कहकर आंखें

मूंद लेने के सिवा और कोई रास्ता न था।

आकस्मिक दुर्घटना की तरह···। नही, ऐसा क्यों होने लगा ? आकस्मिक दुर्घटना क्यो होगी ? यही तो निश्चित परिणाम था। उसका दावा चिरतन दावा था। एक युवक और युवती—बधु और बाधवी। पग-पग पर प्रिय बधु प्रिय बाधवी—न ही पहुचे सप्तपदी तक तो क्या ? आज के जमाने मे दुनिया की सारी पुरानी प्रथाओ की तरह यह सप्तपदी भी जैसे बहुत पुरानी, बहुत जीर्ण, बहुत कष्टप्रद हो उठी है। इस देश जैसे देश मे भी उपलब्धि कहो, चाहे दावा ही कहो, उसके जोर से कोड-बिल पास हो गया है। विद्यासागर विधवा-विवाह नही चला सके। आज विवाह का बधन असह्य हो जाने के कारण तलाक तक ग्राह्य हो गया है। उन लोगो ने उससे भी नये सपर्क तक पहुचने का निश्चय किया था; लेकिन वह हो नही सका।

कल शाम के बाद दोनो ही एक-दूसरे के प्रति कडवे होकर अलग हो जाने को उद्यत हो गए थे। सीता चली जा रही थी। अचानक अंशुमान ने पागलो की तरह उसको पुकारा था—नही। और सारी रात उसे रोक रक्खा था।

कई बार विरोध करने के बाद सीता ने अचानक एक बार अजीब-सी हसी हसकर आत्म-समर्पण कर दिया था। वह अजीब-सी हसी और उसका वह आत्म-समर्पण खुशी का है या नाराजी का, मर्मांतक वेदना से आतुर इस बात पर वह विचार नही कर सका था, इसे समझना नही चाहा था। समझने की इच्छा या मन भी नही था उसका। वह पुरुष है। इस जमाने का पुरुष। इस ज़माने के पुरुषो का प्रतिनिधि। बीसवी शती के शेषाश का यौवन; इस युग मे धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र को टुकड़े-टुकडे चीरकर देखा गया है। यह युग जगली ज़माने की तरह बर्बर नहीं है, लेकिन तमाम अंधविश्वासो की लगाम तोड़ देनेवाले काले घोड़े की तरह विद्रोही है। शायद थोडा सिरफिरा भी है। वह त्याग के बदले भोग को चाहता है। जन्म का परिणाम मृत्यु है, इस बात को वह नकारता नहीं, लेकिन उसने इतना ही जाना है और इसी बात को पकड रक्खा है कि, जीवन का धर्म है बचे रहना; और उस बचे रहने का उद्देश्य है न चुकनेवाले छः

ऐश्वर्यो से भरी पृथ्वी को मथकर निकाली गई वस्तुओ से गठित, सोलह ऐश्वर्योंवाले इस देहमय जगत् का आस्वादन करना, इस जीवन्मय सृष्टि को बढाते जाना।

आज के इस निष्ठुर दिन के निष्ठुरतम क्षणो मे उसे ये बाते याद आईं। आज उस दिन की बातो को याद करते हुए जैसे वह अपने-आप ही अपने को कैफियत दे रहा है।

क्यो ?···क्यो ?

अशुमान ने एक गहरी लबी सास ली। कुछ देर खिडकी से बाहर की ओर देखता रहा। उसके बाद वह फिर उस टूटे सूत्र को जोडकर आगे बढाने लगा।

हा, सीता ने चुपचाप ही आत्म-समर्पण कर दिया था। उस आत्म-समर्पण मे कोई कुठा या कृपणता नही थी। वह केवल चुप हो गई थी। उस चुप्पी का मतलब उसने समझा था। लेकिन समझकर भी वह अपने मन के आवेग को रोक नही सका। सीता भी इस युग की लडकी है। वह उससे भी ज्यादा अविश्वासी और उग्र आबोहवा मे पली-बढी है। किसी समय सिगरेट पीने से सीता की दो उगलियो मे निकोटिन का गहरा दाग बन गया था। उसके अतीत के बारे मे उसने कोई खोज-खबर नही ली थी, लेकिन उस अतीत का रग श्राद्ध-दिवस के श्वेत पद्म की तरह सफेद नही है अथवा गध मे अगरु-मिश्रित धूपबत्ती की गंध की तरह मधुर भी नही है।

तब भी उसके हृदय मे अशांत साप की तरह एक बेचैनी छटपटा रही है।

उस दिन, यानी पाच-छह साल पहले उस दिन, उसका मन इसी तरह की एक बेचैनी से छटपटाया था और अचानक नही—ना; कहकर चीत्कार कर उठा था। लोट-पोटकर उसे बेचैनी के कारण बिस्तर से उठ जाना पड़ा था। सीता के पास उसके लिए अदेय कुछ नही था—जीवन का सब कुछ देने-लेने का अनकहा वादा अपने-आप उनकी मित्रता के अलिखित दस्तावेज़ की एक शर्त था, इसे कोई अस्वीकार नही कर सकता था—उस दिन भी नही कर सका था; आज सन् १९६७ मे भी

नही कर सकता। फिर भी उस दिन के सीता के आत्म-समर्पण मे अत्यंत विषण्ण और वेदनार्त कुछ था, जिसके कारण इतने बडे लेन-देन को एक-तरफा के सिवा और कुछ नही कहा जा सकता, उसने सब कुछ लिया ही था, सीता सब कुछ खोकर चली गई थी।

आज ही की तरह उस दिन भी उस खिडकी से बाहर की ओर देखते हुए उसने अपने मन को फैले हुए आकाश मे छितरा देना चाहा था। उसने रात को भूल जाना चाहा था। याद आता है, आसमान मे गडगडाहट की एक आवाज हुई थी। जेट तो नही है, वाइकाउट भी नही—अपेक्षाकृत धीमी गति से चलनेवाला कोई प्लेन है। आसमान मे बादल नही थे। आसमान धूप से झलमला रहा था। सवेरे की सुनहली धूप निकल आई थी; बडे-बडे मकानो की छतो के छज्जो पर और कई बहुत बडे मकानो के पूरे हिस्से मे वह धूप उस समय लिपट गई थी।

रात की स्मृति को भूलने के लिए उसने अपने मन को घर ढूढने या पहचानने मे लगाया था। नही, आत्महत्या के लिए नही, यो ही मन को किसी दूसरे काम मे लगाने के लिए। तेरह मजिला नया सेक्रेटेरियट कौन-सा है ? वह उसीको ढूढने की कोशिश कर रहा था।

अजीब है कलकत्ता ! कितने स्टाइल हैं, कितने फैशन, कितने इज्म, कितनी लड़ाई, कितना भोग ! अचानक वह बहुत उत्साहित हो उठा। तकिये के नीचे से सिगरेट निकालकर उसने ढेर-सा धुआ छोडा और उल्लास की फूक से उसे उडा दिया था। वह कुछ भी न मानेगा।

घर के सामने कार्पोरेशन ने कृष्णचूडा का पौधा लगाया है। उस समय वह खासा बडा हो गया था। उस समय उसके दुमज़िले वाले कमरे की खिडकी के बराबर हो गया था। याद आता है, उसके ऊपर कई पडुक-बुलबुल झगडा कर रहे थे। एक पुकारता था, दूसरा उसकी पुकार सुन-कर उडकर उसके पास जा बैठता था—साथ ही साथ पहलेवाला उड़ जाता था। इधर दो-तीन और, दूसरेवाले के पास आकर झगडने और शोर मचाने लगे थे। उसे याद है, उस दिन उस झगडे से उसे लका-काड की ही तुलना ठीक जान पडी थी।

तभी हाथ की उगलियो मे आग की आच लगी थी। उगलियो मे

फंसी सिगरेट जलकर छोटी हो गई थी और उसकी उंगलियो मे आच लगी थी। खीजकर उसने सिगरेट फेक दी थी। हरि को पुकारा था—हरि! सिगार ले आओ।

उसे कडे स्मोक की जरूरत महसूस हुई थी।

मन के किसी अतहीन अतल से एक बहुत अशात बेचैनी भाप की तरह उठकर उसे अस्वस्थ बना देना चाहती थी।

उसने अपने नाटक की पाडुलिपि खोलकर पढनी चाही थी, लेकिन एक पक्ति भी नही पढ सका था। अपना लिखा उसे बडा रूखा-सा लगा था। उसने पाडुलिपि फेक दी थी।

ठीक याद आता है, उस दिन सवेरे मानो कोई अदृश्य, निष्ठुर और कठोर होकर उसका तिरस्कार कर रहा था। उसने उस दिन उसे जघन्यतम पाप के लिए जिम्मेदार ठहराया था और कहा था—तुम्हारे इस पाप का प्रायश्चित्त नही है। द्वैपायन नाटक के नाटककार, तुम पराशर भी नही हो, द्वैपायन भी नही हो। तुम कवि, नाटककार, अभिनेता जो भी होओ, मनुष्य के रूप मे तुम निंदा के पात्र हो। और इस क्षण मे तुम साधारण मनुष्य से भी बहुत नीचे उतर गए हो।

याद आया था मा का चेहरा। ऐसा लगा था कि यह तिरस्कार उन्हीने किया है। पिता की याद आई थी। पिता पर उसकी बडी श्रद्धा थी—नही तो बहुत अधिक प्रेम तो था ही। वे जीवित नही है—उनका चेहरा याद आया था। वह चेहरा बडा उदास, बडा करुण था। और भी कई चेहरे याद आए थे। स्वामी विवेकानन्द, रवीद्रनाथ, सुभाषचन्द्र बोस तक बहुत-से लोगो की याद आई थी। मन की आखो मे एक के बाद एक दीखकर वे चले गए थे। एक कठोर मानसिक यत्रणा से अस्थिर होकर वह सिर झुकाए खडा था। उसने कहना चाहा था, तुम लोग जो कह गए हो, जो कर गए हो, आज तक जो कुछ मानते आए हो, मानकर धन्य हुए हो, वह सारा का सारा आज इस तरह मूल्यहीन क्यो हो गया? आज मैं तुम लोगो को निष्फल नमस्कार करके लौटाए दे रहा हूं।

धीरे-धीरे उसका मन फिर शात हो गया। मन की शाति उस पुराने ज़माने की नही, आज की शाति थी।

दूसरे महायुद्ध के बाद की शाति।

नागिन की जहरीली सास की शाति। विष से जर्जर स्वाभाविकता। शांति की मधुर वाणी आज उपहास मालूम होती है।

फिर भी उस दिन का सारा दिन अशाति और बेचैनी मे कटा था। उस दिन के लिए उसने जो कार्यक्रम बना रखे थे, उन सबको रद्द कर दिया था।

उसके नाटक का रिहर्सल होनेवाला था। इगेजमेट के मुताबिक नाटक की नई नायिका सुस्मिता को लेकर रजन आया था। उसे उसका पार्ट समझाकर एक रीडिंग दिलानी थी। उसने उन्हे भी लौटा दिया था। कहा था—"तबीयत ठीक नही है।"

उसके बाद ही अपने झूठ को सुधारकर उसने कहा था—यो मेरी तबीयत ठीक-ठीक खराब नही है रजन ! आज मेरे मन की हालत ठीक नही है। यह भी लगता है कि नाटक को एक बार मुझे खुद अच्छी तरह पढना चाहिए। पढना उचित भी है।

रजन ने कहा था—नाटक तुम्हारा बहुत अच्छा हुआ है अंशु दा ! खूब बढिया, खूब जमा हुआ ! इसके अलावा कंज़र्वेटिव और रिऐक्श-नरी लोगो के लिए वह बम-शेल् होगा। सभी फ्लैट हो जाएंगे। देख लेना !

इससे अशुमान की मानसिक शाति लौटी नही थी। उसके मन मे जो निष्ठुर द्वन्द्व चल रहा था और जिसके चलते अच्छा-बुरा सब कुछ जैसे धूल मे छिप-सा गया था, उसमे भी कोई फर्क न पडा। सात्वना के बदले रजन ने उसकी विरक्ति और वेदना को बढा ही दिया था। अशुमान ने कहा था—प्लीज़, मैं विनती करता हू, इस वक्त तुम लोग जाओ।

रजन तब भी हारा नही था। उसने कहा था—लेकिन अब दिन ही कितने रह गए है !

—नही रहे तो तुम लोग दूसरी कोई किताब चुन लो। इस नाटक को अभी रहने दो।

सुस्मिता बोली थी—तब मैं भी अपनी बात लौटाए लेती हू। मैंने इसी नाटक की बाबत सुनकर सत्यवती का पार्ट करने का वचन दिया है।

अशुमान ने सामने के कमरे से सोने के कमरे की ओर बढते हुए कहा था—मुझे आराम की जरूरत है रजन! मैं जाता हू। तुम फिर किसी वक्त फोन करके आना। सुस्मिता, तुम कुछ खयाल न करना।

वह कमरे के अंदर चला गया था।

उसका सारा अतर क्षत-विक्षत हो गया था। वह किसी ऐसे सत्य तक नही पहुच सका था, जिसे पकडकर टूट जाने के सारे आवेग को सभाल सकता—और टूटकर एकदम से धूल मे लोटते हुए वह हार भी नही मान सका था।

"नही। सत्य नही है। सत्य, धर्म, न्याय, नीति—यह सब व्यर्थ की बाते हैं। आज का सत्य, कल मिथ्या बन जाता है। आज का धर्म कल जीर्ण हो जाता है, सबसे बडा अन्याय अथवा पाप बन जाता है।"

"सब लोग मिलकर चिल्लाते हुए जो कहते हैं, वही सत्य बन जाता है।"

लेकिन इस तरह चुनी-चुनी युक्तियो और तर्कों को मन ही मन चिल्ला-चिल्लाकर कहने के बाद भी वह अपने मन की बेचैनी दूर नही कर सका था।

उसने बार-बार मन ही मन कहा—जाते समय सीता सिंदूर के बदले अपनी मांग मे अपने ही हाथो लाल स्याही लगाकर चली गई। वह स्वाभाविक रूप से नही गई, थोडा नाटक करके गई, लेकिन इससे भी उसे कोई बल नही मिला।

अन्त मे एक बार धडफडाकर वह उठा था और मकान से बाहर चला गया था। जाते समय उसने हरि को पुकारकर कहा था—मैं बाहर

जा रहा हू । लौटने मे देर होगी ।

कहकर वह फिर रुका नही था । लौटकर उसने पीछे की ओर देखा भी नही था कि हरि कही उससे कुछ पूछताछ न करे ।

लगभग दिन-भर वह घूमता रहा था । राह-बाट मे घूमने-फिरने के बावजूद वह घूम-फिरकर सीता को ही ढूढता फिरा था ।

जिस होम मे वह काम करती, रहती थी, वहां जाकर उसने सुना था—वहा से वह चली गई है । कह गई है, अब वह नही लौटेगी । ये बाते वह एक नौकरानी से कह गई है । कह गई है—बडी दी से कहना, मैं जा रही हू । अब नही लौटूगी । कहना, अचानक मेरी शादी ठीक हो गई है ।

तब ?

तब कहा गई सीता ? सीता को ढूढता हुआ अन्त मे वह सीता के भाइयो के यहा गया था । भाइयो के यहा सीता जाएगी, ऐसी बात नही थी । दोनो ही भाई उसपर बहुत नाराज थे । सीता के लिए उन्हे अपने बाप-दादो का घर बेचना पडा है । भाभियां और ज्यादा नाखुश थी । फिर भी, उनके यहा जाकर भी उसने तलाश की थी, कुछ कडवी बाते सुनी थी । उससे भी वह घबराया नही । देर तक घर के सामने खडा रहकर लौट आया था ।

जैसे किसी बात के लिए उसे सीता की जरूरत थी । एक हिसाब-किताब, जिसके पूरा होने के पहले ही सीता चली गई थी । शायद उसी-के लिए । उनके बीच जो एक सबंध था, उसे किसने तोडा ?

थोडा-थोडा करके लगातार अनगिनत बातें याद आई थी—एक दो नही । बहुत बाते, ब•• हुत बातें । उन्हे भूल जाने की कोशिश करके भी भूल नही सका था । अन्त मे उस दिन घर लौटकर, सीता की बातें सोचते-सोचते, 'स्वदेश' पत्रिका की एक जिल्द-मढी फाइल शेल्फ से निकाल ली थी ।

खोलकर सामने रखते ही, अंग्रेजी उन्नीस सौ साठ और बंगला

तेरह सौ सडसठ, आश्विन के तीसरे सप्ताह की सख्या का एक पन्ना अपने-आप खुल गया था—इससे पहले यह पन्ना बहुत बार खोला गया था और उस पन्ने पर छपा हुआ था उसीका लिखा एक लेख—

'सीता की परीक्षा'

इस लेख के चलते ही सीता से उसका परिचय हुआ था।

रामायण के अरण्यकाड की घटना—सीता-हरण।

देवता, राक्षस, यक्ष, किन्नर, असुर और दैत्यो से रावण नही डरता था। डरता था मनुष्य से। शूर्पणखा के अपमान का बदला लेने के लिए उसने सीता का अपहरण करने का सकल्प किया था। सम्मुख युद्ध मे राम को मारकर, बलपूर्वक सीता को ले जाने का साहस उसे नही हुआ। वह जानता था कि नर और वानर से ही उसे खतरा है। इसीसे चालाकी से, चोर की तरह सीता का हरण करने के लिए उसने मारीच को स्वर्ण-मृग का रूप धारण कराके सीता के मन को लुभाया था। यह माया-जाल अव्यर्थ था। बडे आदर की दुलारी, युवती नारी के सामने स्वर्ण-मृग। मुग्धा सीता ने अपने रूप-यौवन पर रीझे रामचन्द्र से कहा—पकड लाओ, मेरे लिए सोने का हरिण पकड़ लाओ।

रामचन्द्र हरिण के पीछे दौडे। रामचन्द्र के बाणो से बिंधकर मारीच मरने लगा तो उसने आर्त स्वर मे, बिलकुल रामचन्द्र की आवाज़ की नकल करके, लक्ष्मण को पुकारा। सीता ने व्याकुल होकर लक्ष्मण को रामचन्द्र की सहायता के लिए भेजा। रावण तपस्वी के वेश मे सीता की कुटिया के सामने आया। छल से उसने सीता को लक्ष्मण के द्वारा खीची रेखा से बाहर बुलाया और बलपूर्वक उसका अपहरण करके, पुष्पक विमान पर बिठाकर, वायु-मार्ग से लका की ओर चल पड़ा।

मार्ग मे पक्षिराज जटायु से रावण का सामना हुआ। जटायु ने उसे रोका। रावण के रथ को चूर-चूर कर दिया। लाचार, रावण रथ से उतरकर—सीता को उसी वन मे रखकर—जटायु से युद्ध करने लगा। उसके बाद जटायु को मारकर, केश पकड़कर सीता को एक हाथ मे लटकाए, अपनी राक्षसी माया से वह आकाश-मार्ग से लका की ओर

चला गया ।

यह घटना सबको मालूम है । कई हज़ार वर्षों से मनुष्य इस घटना को इसी रूप मे मानता आया है । लेकिन कुछ समय पहले, नये ज़माने के किसी राजनैतिक मत के उपासक एक विद्वान अध्यापक ने लिखा—"यहा, इस वन मे, जटायु का वध करने के बाद रावण ने सीता को अपमानित किया था । यहा उन्होने 'धर्षितायां सीतायां' शब्द का प्रयोग किया है और आश्चर्यजनक प्रगतिशीलता तथा साहस का परिचय दिया है । उन्होने रावण को चरम अत्याचारी तथा अपराधी के रूप मे अभियुक्त बनाकर पाठको के दरबार मे हाज़िर किया है और अत्याचारी प्रमाणित करके उसे चरम दड दिया है । सबसे आश्चर्य की बात यह है कि इस देश के बहु आकांक्षित और प्रार्थित, दैहिक सतीत्व के सस्कार को लाघ जाने मे उन्हे ज़रा-सी भी दुविधा नही हुई । यहा महर्षि वाल्मीकि एक महाकवि, सार्वकालिक प्रगतिशील तथा सस्कार-मुक्त एक अमर स्रष्टा हैं ।" अध्यापक महाशय ने लगभग ऊची आवाज़ मे ही कहा था कि प्रगतिशील महाकवि वाल्मीकि ने यहा आश्चर्यजनक कौशल के साथ सीता पर रावण के अत्याचार का वर्णन किया है ।

सीता जब वन मे 'हा राम ! हा राम !' कहकर रो रही थी, तब उनको पकडने के लिए रावण आगे बढा, सीता ने डरकर भागना चाहा और वन के वृक्ष की आड लेकर आत्मरक्षा करनी चाही, लेकिन वे कब तक अपनी रक्षा कर सकती थी ? रावण ने उनकी खुली चोटी पकडकर उन्हे खीचा और उनको लाछित करके मुट्ठी मे उनकी चोटी थामकर वह माया के बल से आकाश मे उड गया । वाल्मीकि ने लिखा है—इस प्रकार धर्षिता सीता को देखकर आकाश काला पड गया, वन के वृक्ष-पल्लवो की सास रुक गई, वायु का बहना बद हो गया, सिद्ध ऋषिगण 'हाय-हाय' करते-करते सूख गए—इत्यादि ।

दो शब्दो से तैयार किया गया एक आश्चर्यजनक चित्र ।

"प्रधर्षितायां वैदेह्या—"

अतः उस वन मे रावण ने सीता को लाछित किया था ।

अध्यापक ने वाल्मीकि की भूरि-भूरि प्रशसा करते हुए लिखा था—

"आश्चर्य ! उनमे देहगत पवित्रता की बीमारी नही है···, तथाकथित सतीत्व-असतीत्व का कोई बद्ध सस्कार नही है। वर्तमान समय मे भी भारत-वर्ष और बगाल जहा नही पहुच सका है, हजारो वर्ष पहले यह प्राचीन महाकवि अनायास ही वहा से पार हो गया था।" इस जमाने का आदमी होकर भी अशुमान इस तरह के विचारो से थोडा चचल हो गया था। उसे लगा था कि उन भले आदमी ने स्वय ही इस तथ्य की रचना की है।

उस समय अशुमान के साहित्यिक जीवन का आरभ ही हुआ था। उन अध्यापक से उसकी उम्र बहुत कम थी और वह अपने को प्रगतिशील ही समझता है। हिसाब लगाया जाए तो उसका मतामत उन अध्यापक से भी अधिक प्रगतिशील है। राजा राममोहन का जन्म सन् १७७४ मे हुआ था—सतीदाह और सहमरण की प्रथा बद कराने का कानून पास हुआ था सन् १८१६ मे। बकिमचद्र ने उन्हे मूर्ख कहा था; कृष्णकात की वसीयत मे उन्हीके विधान से गोविंदलाल ने रोहिणी को गोली मारी थी। उसके बाद साहित्य मे विनोदिनी, सावित्री, किरणमयी आदि ने आकर समूची जाति का स्नेह आकर्षित किया और उनके माथे पर अपने हृदय की सहानुभूति ढाल दी। इतना ही नही, कल्लोल के जमाने मे 'विवाह से श्रेष्ठ' जीवन की कामना जिस साहित्य ने की, चहारदीवारी के घेरे से मुक्ति की कामना भी जिस साहित्य ने की, उसी साहित्य के दरबार का प्रतिनिधि और स्वाधीन भारत के हिन्दू कोड बिल पास करने-वाले समाज का साहित्यिक होकर जो अशुमान आया था, वह रामनामी ओढकर और माथे पर चोटी लटकाकर नही आया था; वह आया था बाकायदा ढीले हाथ और बगल के बटनवाला कुर्ता और ढीला पाजामा पहनकर; उसके सिर पर केशो का गुच्छा नही था, चेहरे पर दाढी-मूछ नही थी; अग्रेजी ढग से छटने पर भी उसके माथे के केशो मे अग्रेजी-यत नही आ पाई थी, बडे-बडे बिखरे बालो को बॉब छटवाकर और दाढी-मूछ साफ करके वह बाहर-भीतर से सोच्चार योग्यता का दावा लेकर ही आया था। देहगत शुचिता-अशुचिता के प्रश्न पर अध्यापक के मन से सर्वनाश हो गया, ऐसी भावना से मुरझा जानेवाला आदमी वह नहीं

था। फिर भी उसे कौतूहल हुआ था। उसने रामायण-महाभारत पढा है। केवल कृत्तिवास और काशीराम नही—और भी पढा है। उसने थोडी-बहुत सस्कृत भी पढी है। लेकिन वह किसी तरह विश्वास नही कर सका था कि ऐसी व्याख्या हो सकती है अथवा वाल्मीकि ने इस प्रकार का घटना-विन्यास किया है। इसका सबसे बडा प्रमाण है सीता की अग्नि-परीक्षा। ऐसे ही मन से उसने कई बार सस्कृत की रामायण आद्योपात पढी थी और एक लेख भी लिख डाला था—'सीता की परीक्षा।'

पहली परीक्षा हुई त्रेता युग मे—लका की युद्ध-भूमि मे। अग्नि-परीक्षा। दूसरी परीक्षा भी त्रेता मे ही हुई—स्थान था अयोध्या की राज-सभा। सीता का पाताल-प्रवेश। वर्तमान समय मे तीसरी परीक्षा कलि-युग मे हुई। रामायण की पुरानी साहित्य-भूमि की खुदाई करते हुए एक नर-ककाल मिला है, उसके साथ मिले है कुछ आधुनिक गणित के हिसाब से चुस्त-दुरुस्त प्रमाण, जिसके बल पर सीता को फिर जनता के सामने ला खडा किया गया है। आधुनिक काल के वाल्मीकि के नये भाष्यकार ने रामायण के अरण्यकाड मे एक श्लोक का आविष्कार किया है।

इस श्लोक के 'धर्षिताया सीताया' इन शब्दो का अर्थ क्या है? अध्यापक का कहना है, रावण ने सीता पर यह जो अत्याचार किया है, इससे सीता को किसी अपवित्रता ने स्पर्श नही किया। यह नितात बाहरी है।

इतने बडे अध्यापक के लेख का विरोध करते हुए उसने समझा था कि वह कोई बहुत बडा चौकानेवाला काम कर रहा है। यह बात सत्य है कि उसने वाल्मीकि रामायण को शब्दश: पढकर, उसका विश्लेषण करके, वाल्मीकि के स्रष्टा मन को ढूढ निकालना चाहा था। एक सत्य और भी था। आज वह चाहे जो अशुमान हो—बचपन मे रामायण पढ़कर उसे राम-सीता बड़े अच्छे लगे थे—उसके लिए सीता जैसा पवित्रतम और सुदरतम नायिका-चरित्र दूसरा नही था। इसीसे उसने जी-जान से मेहनत करके लेख लिखा और उसे 'स्वदेश' पत्रिका मे प्रकाशित करा दिया। उस लेख के लिए उसने आत्यंतिक प्रशंसा और भूरि-भूरि अभिनंदन की आशा की थी। मेहनत उसने बहुत की थी और वाल्मीकि के लेखन-सत्य का

आविष्कार भी किया था।

सीता को रावण जैसे बलवान, कामार्त और दुराचारी के हाथो सौंपकर वाल्मीकि ने ऐसी निंदित व्याख्या करनेवालो की अथवा कठोर वास्तविकता की बात न सोची हो, ऐसा नही है। उन्होने निश्चित रूप से सोची थी और यथास्थान इसके लिए रक्षा-कवच तैयार करके सीता को अशोक वाटिका मे, दासियो के बीच, सुरक्षित कर गए थे। रावण ने यदि सीता पर अत्याचार किया होता तो 'कायेन मनसा वाचा' जैसे तीन शब्दो के समन्वय से एक ऐसे वाक्य की रचना न हो पाती, जिसे सुनते ही जान पडे कि यह वाक्य सीता के अलावा और किसीका नही है। इस वाक्य को भारत का बच्चा-बच्चा जानता है—खूब अच्छी तरह जानता है।

उसकी धारणा गलत नही हुई। उसने आविष्कार किया था कि वाल्मीकि ने 'प्रधर्षिताया वैदेह्या' इन दो शब्दो के द्वारा केशो को खीचने से अपमानित तथा 'कष्ट और लाछना से क्लिष्ट और लाछित सीता'—यही बात कहानी चाही थी। उसने यह भी आविष्कार किया था कि महर्षि वाल्मीकि ने अपनी सारी रामायण मे सीता पर अत्याचार के अर्थ मे धर्षण या धृष् धातु का व्यवहार कही नही किया।

इस तथ्य का आविष्कार करके तरुण अशुमान ने मन ही मन एक अद्भुत उत्साह का अनुभव किया था। इसका मतलब शायद यही था कि उसने एक ऐसे विज्ञ और पडित अध्यापक की भूल पकडी है। मन ही मन उसने यह आशा भी की थी कि उसका यह लेख पाठको मे आश्चर्यजनक हलचल मचा देगा। उसे याद आया था कि रवीद्रनाथ को 'घर-बाहर' उपन्यास मे दुष्ट-चरित्र सदीप के मुह से सीता के बारे मे कुछ बुरी बातें कहलाने के कारण कितने विरोध और कठोरता का सामना करना पडा था। इसलिए बगाल के इन समाजपतियो के द्वारा शासित समाज, इसके लिए उसे सिर पर उठा लेगा, इस बारें मे उसे कोई संदेह नही था। लेकिन यह भी सच नही कि यह सारा का सारा वाहवाही पाने का लोभ ही था। एक झूठ का विरोध करने के लिए भी वह इस लेख को लिखने मे जुटा था और उसे बहुत परिश्रम करके

उसने लिखा था ।

अध्यापक का एकमात्र प्रमाण था एक विशेषण, एक शब्द । 'धर्षित' शब्द । वनपर्व के उस स्थल पर कहा गया है कि रावण का रथ जब टूट गया तो वह सीता को लेकर जमीन पर खडा हुआ और उन्हे वन मे छोडकर जटायु के साथ युद्ध करने लगा । जटायु का वध करके रावण जब फिर सीता को पकडने के लिए आगे बढा, तो सीता वन के वृक्ष के तने को पडककर "हा राम ! हा राम !" कहकर करुण स्वर मे रो पडी थी । तब रावण उनकी चोटी पकड़कर माया के बल से सीधा आकाश मे उड गया ।

क्रोशन्ती राम रामेति रामेण रहिता वने ।
जीवितान्ताय केशेषु जग्राहान्तकसन्निभ. ॥
प्रधर्षिताया वैदेह्या बभूव सचराचरम् ।
जगत्सर्वममर्याद तमसान्धेन सवृतम् ॥

सीता शून्य मे झूलने लगी । यही पर सस्कृत रामायण के श्लोक में है—इस प्रकार 'प्रधर्षिताया वैदेह्या'—धर्षित सीता को देखकर त्रिभुवन हाहाकार करके रो पडा । इसी 'प्रधर्षित' शब्द के सहारे इन अति आधुनिक नास्तिक विद्वान ने कहना चाहा था कि 'प्रधर्षित' शब्द का अर्थ है शारीरिक अत्याचार । अपनी इस नास्तिकता की ओर से ही इन पडित ने वाल्मीकि की बहुत तारीफ करते हुए, कृपापूर्वक उन्हे महाकवि कहा था ।

अशुमान ने अपने लेख मे प्रमाणित किया था कि उस 'प्रधर्षित' शब्द का अर्थ अत्याचार नही है । पूरी रामायण मे नारी-देह के भोग के अर्थ मे कही भी धर्षित, धर्षण अथवा धृष् धातु का व्यवहार नही किया गया । वैसे प्रसगो मे, सब जगह उन्होने भुज् धातु का व्यवहार किया है और 'बलाद् भुङ्क्ते' लिखा है । धर्षण और धर्षित शब्द तथा धृष् धातु का उन्होने सब जगह निर्यातन एवं परास्त करने के अर्थ मे व्यवहार किया है । इसके अलावा उसने रामायण से और प्रमाण भी प्रस्तुत किए थे ।

राम जिस दिन वानर सेना लेकर, सेतुबंध बाधकर लंका पहुचे, उस दिन रावण ने सभा करके सभासदो से पहली बार कहा कि उसने सीता

नाम की एक मानवी का अपहरण किया है। उसने अभी उसका भोग नही किया। उसने राय मागते हुए पूछा था—तुम लोग क्या इस मानवी को राम को लौटा देने को कहते हो? इसी प्रसग मे रावण ने सभासदो से यह भी कहा कि कुछ समय पूर्व एक अप्सरा को ज़बर्दस्ती कब्ज़े मे करके उसका भोग करने के कारण पितामह ब्रह्मा ने उसे शाप दिया था। कहा है कि नारी की असहमति रहने पर भी बलपूर्वक उसका भोग करने पर रावण के दस सिर एक सौ टुकडो मे फट जाएंगे, शतधा विदीर्ण हो जाएगे।

यहा उसने लकाकाड से कुछ श्लोक उद्धृत किए थे। रावण के सभासद महाबली महापार्श्व ने रावण से कहा था—

"य. खल्वपि वन प्राप्य मृगव्यालनिषेवितम्।
न पिबेन्मधु सप्राप्य स नरो बालिशो भवेत्॥
ईश्वरस्येश्वरः कोऽस्ति तव शत्रुनिबर्हण।
रमस्व सह वैदेह्या शत्रुनाक्रम्य मूर्धनि॥
बलात् कुक्कुटवृत्तेन प्रवर्त्तस्व महाबलः।
आक्रम्याक्रम्य सीता वै ता भुङ्क्ष्व च रमस्व च।"

उत्तर मे रावण ने कहा था—

"महापार्श्व निरोध त्व रहस्य किञ्चिदात्मनः।
चिरवृत्त तदाख्यास्ये यदवाप्त पुरा मया॥
पितामहस्य भवन गच्छन्ती पुञ्जिकस्थलाम्।
चञ्चूर्यमानामद्राक्षमाकाशेऽग्निशिखामिव॥
सा प्रसह्य मया भुक्ता कृता विवसना ततः।
स्वयम्भू भवन प्राप्ता लोलिता नलिनी यथा॥
तच्च तस्य तथा मन्ये ज्ञानमासीन्महात्मनः।
अथ सकुपितो वेधा मामिद वाक्यमब्रवीत्॥
अद्य प्रभृति यामन्या बलान्नारी गमिष्यसि।
तदा ते शतधा मूर्द्धा फलिष्यति न सशयः॥"

रमस्व, प्रवर्तस्व, भुङ्क्ष्व, भुक्ता आदि शब्दो के नीचे लकीर खीचकर उसने उन्हे चिह्नित कर दिया था और 'प्रधर्षित' तथा 'धर्षित' शब्दो के

व्यवहार का दृष्टात देकर उसने प्रमाणित किया था कि सब जगह उसका अर्थ है—लाछित करना, परास्त करना। लका को आग से जला देने को कवि ने 'लका धर्षित हुई' कहा है। फिर जहा वानर-सेना मधुवन को तोड-फोडकर तहस-नहस करती है, वहा भी, महर्षि वाल्मीकि ने 'मधुवन धर्षित हुआ', यही कहा है। राक्षसो ने और रावण ने स्वर्ग को जीता है, वहा भी धृष् धातु का प्रयोग है; हनुमान ने लका-दहन किया है, वहां भी वही है। दुर्मुख राक्षस क्रोधित होकर कहता है—

"अब्रवीत्तम सक्रुद्धो दुर्मुखो नाम राक्षसः।
इद न क्षमनीय हि सर्वेषा न प्रधर्षणम्॥
अय परिभवो भूय. पुरसातः पुरस्य च।
श्रीमतो राक्षसेद्रस्य वानरेद्र प्रधर्षणम्॥"

अनेक दृष्टात देते हुए उसने लिखा था—बलपूर्वक नारी पर अत्याचार के अर्थ मे धृष् धातु का व्यवहार रामायण मे कही नही है।

उसका लेख प्रकाशित भी हुआ था; बेशक, उस अखबार मे नही, दूसरे मे। उस अखबार ने वह लेख नही छापना चाहा था। उन लोगो ने इस सबध मे दो-तीन हल्के विरोध छापकर ही विवाद बद कर दिया था।

अशुमान को आशा थी—इस अध्यापक के लेख के बारे मे देश मे विरोध का अबार लग जाएगा। लेकिन आश्चर्य, वैसा कुछ भी नही हुआ। कही किसी विद्वान या आलोचक साहित्यिक ने इस सबध मे कुछ भी नही कहा। जिस देश मे तीस-चालीस साल पहले 'घर-बाहर' नाम के उपन्यास मे एक शिक्षित किंतु दुष्ट-प्रकृति पात्र के मुह से सीता के विरुद्ध कुछ अपशब्द कहलाने के कारण रवीद्रनाथ जैसे महान व्यक्ति और महाकवि तिरस्कृत हुए थे, तीस-चालीस साल मे उसी देश मे इतना परिवर्तन हो गया है कि इस बात को लेकर कोई थोडा परेशान भी नही हुआ।

उसकी यह आशा भी पूरी नही हुई कि उसका लेख प्रकाशित होने पर शायद कुछ हलचल मचे।

वह उस समय साहित्य के क्षेत्र मे जमना चाहता था। अपनी आशा पूरी न होने से उसे सिर्फ चोट ही नही लगी थी, वह थोड़ा क्रोधित भी हुआ था।

कुछ चिट्ठिया उसे मिली थी।

उनमे भी ज्यादातर चिट्ठियो मे इस तरह के प्रश्न ही पूछे गए थे—अध्यापक महोदय की इस सुचिंतित व्याख्या से आप इतने नाराज़ क्यो हो गए है ? उन्होने ऐसी अयुक्त बात क्या लिखी है ?

उसे याद आता है, इसके साथ ही तत्कालीन दगे मे नोआखाली इलाके मे गुंडो ने जिन औरतो को अपमानित किया था और जिन्हे भगाया था, उनका उल्लेख करते हुए पूछा गया था—इनके बारे मे यदि कोई यह कहे कि दैवी शक्ति ने उनकी इस तरह रक्षा की है कि कोई उनका अग-स्पर्श अथवा धर्म भ्रष्ट नही कर सका, तो क्या उसपर विश्वास किया जा सकता है ?

एक पत्र का उत्तर देते हुए उसने लिखा था—आपने मुझे गलत समझा है। मेरा कहना यह है कि इन अध्यापक ने जान-बूझकर गलत व्याख्या करके वाल्मीकि की मानस-पुत्री के मुह पर कालिख लगाई है। प्रश्न यह नहीं है कि मेरे निकट दैहिक शुद्धता का मूल्य कितना है, बल्कि यह है कि वाल्मीकि ने उसे कितना महत्त्व देना चाहा है। कसौटी पर लगे सोने के दाग की तरह, सीता की दो परीक्षाओ में, उनके शपथ-वाक्यो से इसका निर्णय हुआ है। लंकाकाड में अग्नि-परीक्षा के और उत्तरकाड मे पाताल-प्रवेश के प्रसग मे इसका उल्लेख मिलेगा।

कायेन मनसा वाचा यथागति चराचरम्।
राघव सर्व धर्मज्ञं तथासा पातु नावकः॥

दूसरा है—

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समच्चये।
तथा मे माधवी देवी विवर दातुमर्हति॥

अशुमान ने यह पत्र अग्रेजी के एक प्रसिद्ध साहित्यिक को लिखा था। इसका उत्तर नही आया। लेकिन इस पत्र की प्रतिक्रिया मे जो कुछ हुआ था, उसे अशुमान ने सुना था। साहित्यिक महोदय ने पत्र को मोड़-तोड़कर घर के बाहर, सडक पर फेक दिया था। इसे किसीने देखा नही था, उन्होने स्वय अपने मित्रो से यह बात कही थी। उन्हीमें से कोई आकर यह बात उसे सुना गए थे। लेकिन इन पत्रो के लिए उसके

मन मे कोई ग्लानि नही हुई थी ।

वह लज्जित और कुठित हुआ था हिन्दू सभा के एक राजनैतिक कार्यकर्ता की प्रशसा से । शायद गलती हो गई—लज्जित और कुठित शब्द उपयुक्त नही हुए, वह लज्जित या कुठित नही हुआ, एक तरह की बेचैनी ने उसे थोडा उत्सुक बना दिया था । उसे लगा था, उसका विरोध शायद सचमुच सीमा लाघ गया था ।

इसके बाद ही उसकी मुलाकात सीता से हुई थी ।

एक अद्भुत आधुनिका !

उस पहली मुलाकात की बात उसके मन मे अमिट हो गई है । सीता दीप्तिमती लडकी है । उसे ठीक-ठीक रूपवती नही कहा जा सकता । नाक-आख-मुह की गढन मे कई कमिया है । रग बडा साफ है । उसमे ललाई की मात्रा जरा अधिक है । आखो की पुतलिया काली नही, कत्थई रग की है । केश खूब घने है, लेकिन उनमे कालिमा के लावण्य की कमी है । उन्हे छटवाकर और शैपू से रूखा बनाकर उनपर ऐसी विदेशी छाप डाली गई है कि उसे अबगाली, यहा तक कि अभारतीय कहकर भी खपाया जा सकता है । इसपर भी उस दिन उसके कपडे-लत्ते और साज-सिगार कुछ खास तौर से सवारे-सभाले गए थे । वह खुद कोई बहुत बडे घर का लडका नही है, मगर और दसियों की तरह मामूली गृहस्थ-घर का भी नही है । अपने पास हीरे-जवाहरात के गहने नही थे, सोना-चादी के थे, लेकिन बहुत निकट परिवारो की लडकियो को पन्ने का सेट पहनकर सजते, हीरे का सेट पहनकर सजते उसने देखा है । उस दिन मानो यह लड़की कपड़े-लत्ते और रूबी सेट में सजी लडकी की याद दिला गई ।

याद आती है लम्बी, ललछौंहे गोरे रग की एक लडकी । उसने आम की लपटो के रग की नाइलन की एक साडी पहन रक्खी थी, उसीसे मैच करता लाल साटन का ब्लाउज़ था—पैरो मे लाल फीतेवाला सैंडल और इन्ही सबके बीच एक मनोहर मुखडा—माथे के बीचोबीच कुकुम का एक टीका, कानो मे लाल पत्थरवाले दो ईयर-रिंग । रूखे बालों

की दुहरी चोटी मे टह्टहे लाल फीते का फूल। उसके मकान के बरामदे के किनारे से उसने हाथ जोडकर नमस्कार किया था।

उसकी ओर देखकर अशुमान को थोडा विस्मय हुआ था। उस समय तक उसने उसकी साज-सज्जा की बनावट का विश्लेषण करके उसे नही देखा था—लेकिन कायदे के मेक-अप के प्रभाव का उसने ठीक-ठीक अनुभव किया। उसकी वह शोभा उसे आज भी याद है। इसीसे पहली बार मे भले ही न हो, उसके बाद जितनी देर वह रही, वह उसके साज-सिंगार को निरख-परखकर देखता रहा था।

यह, उस लेख के प्रकाशित होने के तीन महीने बाद की बात है।

अपने नये खरीदे मकान मे वह स्थायी रूप से रहने लगा है। उसने अपने जीवन का मार्ग भी निश्चित कर लिया है। खानदानी तौर से कई राहे उसके सामने खुली ही हुई थी। जमीन लेकर फार्मिंग करना यानी खेती-बारी, उसके साथ पोल्ट्री, फिशरी, और फिर एक हस्किंग मशीन भी चल सकती थी। राजनीति, उसके पिता काग्रेस के नेता थे। पिता के बाद उसकी मां काग्रेस की प्रेसिडेट हुई थी, आजकल उसके सौतेले भाई प्रेसिडेंट हैं। वह आसानी से राजनीति मे जा सकता था। पी० एस० पी० या सी० पी० आई० या आर० एस० पी० मे हिस्सा ले सकता था। उन लोगो का और भी बहुत कुछ है, राइस मिल है, उसीको चला सकता था। एक सौतेले भाई वह मिल चलाते हैं। इसके अलावा उसने स्वय अच्छी श्रेणी मे बी० ए० पास किया था। एम० ए० मे वह अच्छा नतीजा ला सकता था, लेकिन उसने परीक्षा नही दी। छात्र-जीवन में छात्र-आदोलन की राजनीति मे पडकर परीक्षा न देते-देते कई बरस बिताकर कवि, नाटककार, कहानी लेखक और उसके साथ अभिनेता के रूप मे लोभनीय प्रतिष्ठा अर्जित करके उसी राह को उसने अपने जीवन की राह के रूप मे स्वीकार कर लिया था।

स्वीकार ही क्यो किया था, वह कई पग चल भी चुका था और तब वह सारी दुनिया मे अकेला हो गया था।

पिता बहुत पहले मर चुके थे। सन् १९४७ में, स्वाधीनता-दिवस को। चार साल हुए मा भी नही रही। बेशक, उसके पहले ही मतभेद

के कारण मा से सपर्क टूट चुका था। सौतेली मा, सौतेले भाई है, लेकिन उनसे भी कोई सबध नही है। गाव से भी नही है। पैत्रिक-सपत्ति बेच-कर सारी दुनिया मे अकेला और बिलकुल मुक्त होकर वह साहित्य, सगीत और अभिनय-साधना के मार्ग पर, दूर दिगत की ओर दृष्टि गडाए बैठा है।

उस दिन वह नये नाटक की बात सोच रहा था। उसका मन है इस युग का, जो मन बीते युगो के सब विचारो, समस्त ध्यान-धारणाओ को अस्वीकार करना चाहता है; समाज मे, राष्ट्र मे—धर्म के नाम पर, नियम के नाम पर मनुष्य के जीवन मे जितने बधन, जितनी गाठे हैं, उन सबको तोड-फोडकर, धो-पोछकर वह एक नया समाज चाहता है। वह एक ऐसा ही नाटक लिखेगा।

उसे आज भी याद है, उसके मन मे उस समय अपनी निज की एक धारणा गठित हो रही थी। बेशक, उस धारणा के साथ इस युग के विचारो और धारणाओ का स्वाभाविक रूप से, गभीर रूप से सम्पर्क और सादृश्य था।

जहा बधन है, वहा गाठ ही मूल है। घर-परिवार, जाति-धर्म और अपने-सगे को लेकर जो समाज-जीवन है, उसकी मूल ग्रन्थि है दापत्य-जीवन—विवाह। इसी तरह गाव, देश, राष्ट्र की मूल ग्रन्थि है भूमि पर अधिकार। और इन्ही दो के चलते आज मिथ्याचार और दुराचार का अन्त नही है। इसी भावना के चौखटे मे नाटक की प्रतिमा गढने के लिए वह मन ही मन कहानी का प्लाट ढूढ रहा था।

कहानी उसने महाभारत से ढूढ निकाली थी।

उसने नाटक का नाम 'द्वैपायन' रखने का निश्चय किया था।

मत्स्यगधा सत्यवती के साथ ऋषि पराशर का एक दिन का निवास। मत्स्यगधा योजनगधा बनी। धीवर-कन्या बनी पृथ्वी के श्रेष्ठ मनीषी और महाकवि की जननी। उसके बाद वह भारतेश्वरी बनी—महाराज शातनु की महिषी।

उसका परिणाम हुआ चित्रागद और विचित्रवीर्य।

उनकी अकाल मृत्यु हो गई।

राज्याधिकार की रक्षा के लिए अबिका अंबालिका के गर्भ से क्षेत्रज पुत्र की व्यवस्था हुई। ज़रूरत के लिए, प्रेमहीन संपर्क का परिणाम यह हुआ कि एक पुत्र अधा हुआ, दूसरा फीका, पीले रग का—दुर्बल और असमर्थ।

एक कापी मे ये बाते लिखी है। लेखक के नाते वह नोट-बुक रखता है। याद है, नाटक की रूप-रेखा लिखकर, पास ही उसने एक टिप्पणी भी लिखी थी। उसने लिखा था—समाजवाद की ओर जा रहे ससार और राष्ट्र मे, पूर्ण नारी-स्वाधीनता-घोषित समाज मे, इसके अलावा कोई और दूसरा सत्य है ?

ठीक इसी समय उस अग्निवर्णा महिला ने आकर और उसके बरामदे के सामने रुककर, हाथ जोडकर उसे नमस्कार किया था—नमस्कार।

अशुमान ने उसकी ओर देखकर भौहे सिकोडी थी। लेकिन एक ऐसी शोभामयी, दीप्तिमयी, विशेषतः इतने यत्नपूर्वक लाल पोशाक मे सजी हुई एक लडकी को देखकर, दु स्वप्न की तरह जटिल उस चिंता से उबरकर, उसने प्रसन्नता की सास ली थी। उसकी ओर देखकर, खुशी से प्रसन्न हसी हसते हुए उसने कहा था—आइए! उधर, उस फाटक से घूमकर आ जाइए।

अशुमान बरामदे मे बैठा था। बरामदा पारापेट और ग्रिल से घिरा हुआ था। घर मे आने का रास्ता बगलवाले फाटक से था।

महिला ने घूमकर और फाटक खोलकर अदर आने पर कहा था—मैं ज़रा अदर जाऊगी। घर की औरतो से मिलना चाहती हू।

अपने-आप ही उसके मुह से निकल पडा था—बात क्या है ? एलेक्शन ? या किसी पार्टी की कनवेसिग ?

औरत ने कहा था—पोलिटिकल पार्टी-वार्टी तो नही, लेकिन मै कनवासर हू, यह ठीक है। बिज़िनेस पार्टी की···।

थोडा हसकर अशुमान ने कहा था—जो कुछ कहना हो, मुझसे ही कहिए। घर मे कोई औरत नही है।

—जाने दीजिए, तब किसी और दिन आऊगी···

उसकी बात खत्म होते-न-होते अशुमान ने कहा था—उस दिन भी

कोई औरत आपको न मिलेगी; क्योकि मेरे परिवार···। ज़रा रुककर शायद उसने यह सोचा था कि क्या कहना अच्छा लगेगा—फिर कहा था—मैं अविवाहित हू ।

—ओ ! कहकर वह थोडी अप्रतिभ भी हुई थी, थोडी विस्मित भी । कहने को और कोई बात न ढूढ पाई थी । अशुमान नमस्कार करके उसे विदा ही देने जा रहा था कि उस औरत ने कहा था—मुझे ज़रा घर-परिवार की ··

अशुमान ने कहा था—ठीक तो है, मुझसे ही कहिए । मेरी गृहिणी न हो, गृह है और मै उसका मालिक हू । साडी-ब्लाउज़ जैसी 'फार लेडीज़ ओनली' बात न हो तो मुझसे भी कह सकती है ।

ज़रा हसकर उसने कहा था—नही, 'फार लेडीज़ ओनली' नही, बिलकुल घर की बात है, रसोईघर की—एलेक्ट्रिक कुकर, केटली, हीटर । कोयला-गोयठा से धुआ होता है, कालिख होती है, झोल पडता है ·। यह एकदम साफ-सुथरा मामला है । इसके अलावा ऑटोमैटिक इंतज़ाम भी है ।

—ठीक तो है । किसी एक दिन डेमास्ट्रेशन देकर कोई एक चीज़ दे जाइएगा ।

—एक ही क्यो, एलेक्ट्रिक का सभी सामान क्यो न ले लीजिए? बैलगाडी और मोटर, दोनो पर एकसाथ पैर रखने से क्या चला जा सकता है ?

अशुमान हस पडा था । उसने कहा था—आप तो खूब बाते करती हैं !

महिला ने भी हसकर कहा था—यही तो कनवेसिग का पहला गुण है, और आखिरी भी ।

—हा, अपनी बात को अद्वितीय और एकमात्र सत्य प्रमाणित करना होता है ।

—लेकिन मैं झूठ को सच नही बना रही । हम लोगो के घर मे सब एलेक्ट्रिक है···मैं देखती हू···मेरा विश्वास है···।

अशुमान ने ज़रा कातर भाव से कहा था—लेकिन बिजली बीच-

बीच मे फ्यूज़ जो हो जाती है ! भात चढ़ा हुआ है, और अगर कही चूल्हा बुझ गया तो लकडी-वकडी डाल देने से भी काम चल जाता है—कुछ न हो तो कागज़ जलाकर भी निबटाया जा सकता है । लेकिन इसका क्वायल जल जाए तो सब खत्म । एक हीटर तो है मेरे पास ।

—नही, नही । यह बहुत अच्छी चीज है । हम लोग गारटी देगे । दिक्कत होने पर हमारे यहा का मिस्त्री आवेगा—मैं आपको अभी दिखा सकती हू···। कहते-कहते उसने सडक की ओर देखकर पुकारा था—अय्यर, अय्यर !

अय्यर निश्चय ही मद्रासी होगा । लेकिन एक मोटिया माथे पर बडा-सा बोझा लिए आगे बढ आया । बोला—अभी आए जा रहे है । सिगरेट लेने उधर गए है ।

इतनी देर तक वह एक काले साहब और सिर पर बडा-सा बोझ लिए इस मोटिया को किसी सूत्र से जोड न सका था ।

अशुमान के घर का सारा काम-धधा करता है भरतचद्र । कम उम्रवाले इस उडिया लडके मे जैसा गुण है, वैसी ही काम करने की ताकत है । अशुमान जैसे आदमी के जीवन मे भी वह कोई असुविधा नही होने देता । अशुमान के मित्र कहते है, वह अशुमान का वाहन है ।

अशुमान कहता है—बात नही बनी । विष्णु का वाहन गरुड है, राम के हनुमान । वे गधमादन उखाड लाकर असाध्य साधन कर सकते है, लेकिन खाना बनाकर नही खिला सकते; हारे-मादे मे सिरहाने बैठकर माथे पर जल-पट्टी नही रख सकते, पखा भी नही झल सकते । पुकारते ही हाज़िर तो ये भी हो जाते है, भरत भी हो जाता है; लेकिन चाय बनाने के लिए बीस बार कहने पर भी ये लोग चाय न बनावेगे । मेरा भरत राम के भरत से भी बढकर है । अत मे उसी भरत को बुलाकर उसकी राय से उसने एक एलेक्ट्रिक केटली, एक प्रेशर कुकर और एक स्पेशल हीटर खरीदा था । महिला ने डेमास्ट्रेट करके दिखाने के लिए एलेक्ट्रिक केटली मे चाय बनाकर पिलाई थी ।

इसी चाय की मजलिस मे अचानक उसने पूछा था—रामायण

आपको बहुत अच्छी लगती है न ?

उसकी ओर देखकर अशुमान ने कहा था—अचानक यह बात क्यो पूछ रही है ? उसके बाद कहा था—रामायण किसे अच्छी नही लगती ? आपको नही लगती ?

वह औरत घबरा गई थी। उसने कहा था—नही···यानी···इसका नाम भरत···

—उसका 'भरत' नाम उसके मा-बाप ने रक्खा था। मेरे यहा नौकरी कर रहा है, यह सयोग मात्र है। उसका नाम कुछ और भी होता तो कोई फर्क न पडता।

और इसके बाद उसने कहा था, या कहने को बाध्य हुई थी कि उसने उसका वह लेख पढा है।

अशुमान खुश हुआ था। उसने कहा था—इस तरह के लेख पढने का अभ्यास है आपको ? पढे है ?

कुठित होकर वह बोली थी—हमेशा तो नही पढती, इसे पढा था। प्रोफेसर बोस, जिन्होने मूल लेख लिखा था, मेरे पिता के बडे मित्र है। पिताजी ने कहा था, वह बडा बोल्ड है। आपका लेख पढकर पिताजी उसका प्रतिवाद लिखना चाहते थे, लेकिन उन्होने लिखा नही, क्योकि पता नही, वह लेख कहा साप्रदायिक प्रश्न हो जाए। यानी, हम लोग क्रिश्चियन हैं।

अशुमान ने बात को वही दबा दिया था या दबा देना चाहा था। उस औरत ने ही बात आगे बढाई थी। कहा था—लेकिन आप तो ऑर्थोडॉक्स नही है।

—इसके साथ ऑर्थोडॉक्सी का क्या सबध है ? अशुमान का स्वर कुछ कठोर हो गया था।

औरत ज़रा चकित और शंकित हो उठी थी। बोली थी—पिताजी और उनके उन मित्र ने कहा था—इस ज़माने मे 'कायेन मनसा वाचा'··· वह···इतना कहकर वह रुक गई थी।

अशुमान ने कहा था—यह शपथ त्रेता युग की सीता की शपथ थी। मैंने यही कहा है। मैं ऑर्थोडॉक्स नही हू। मैं हैम खाता हू। मैं ईश्वर

को नही मानता । हम लोगो की पैत्रिक देवोत्तर ज़मीन है । उसमे से मैंने अपना हिस्सा इसलिए नही लिया कि देवता को प्रणाम करना होगा, उनकी पूजा करनी होगी । अत. ऑर्थोडॉक्सी का कोई प्रश्न ही नही है ।

इसके बाद वह औरत चुप हो गई थी । बिना कुछ कहे बैठी रही थी । अशुमान ने समझा था, वह जाना चाहती है, लेकिन शिष्टाचार से या किसी सकोच से उठ नही पा रही है ।

अय्यर नाम का मद्रासी चुपचाप बाते सुनता जा रहा था—वह कुछ दूर पर बैठा था । बदरी बैठा ऊघ रहा था । बातचीत मे रुकावट पडते ही अय्यर ने चलने की याद दिलाई थी । वह बगला अच्छी तरह नही जानता था । किसी तरह काम चला लेता था—थोडी बगला, थोडी हिन्दी और थोडी अग्रेज़ी-मिली एक तरह की बोली से । उसने बदरी को चौकाते हुए जरा ज़ोर से ही कहा था—ए ब-द-री ! देखो, बैठे-बैठे आराम से स्लीपिंग···गेट अप-मैन ! उठाओ, माल उठाओ । मिस सेन !

विदाई का नमस्कार अशुमान ने ही पहले किया था । हसकर कहा था—अच्छा, नमस्कार । सीता भी उठ खडी हुई थी और नमस्कार करके बोली थी—किसी चीज़ मे कोई खराबी हो तो कम्पनी मे फोन करके कह देगे । कहिएगा, मिस सेन से—सीता सेन से मैने चीज़े खरीदी है ।

इस बार अशुमान थोडा चौका था । उसकी ओर देखकर बोला था—आपका नाम सीता सेन है ?

सीता ने जरा हसकर कहा था—हा ।

उसके बाद सिर उठाकर, अपनी प्रसन्नता को प्रकट करते हुए ही उसने कहा था—पहले मुझे कितना डर लगा था !

—क्यो ?

—मैंने सोचा था, आप शायद बडे गुस्सेवर होगे । और शायद···

—क्या ?

—सोचा था, शायद आप खासे बुजुर्ग होगे—उस जमाने के अधेड, मोटे, गुलथुल···। इस बार वह हस पडी थी ।

भौहे सिकोडकर अशुमान सोच रहा था—इसने ऐसा क्यो सोचा ?

उसने तो सिर्फ ऊटपटाग व्याख्या का प्रतिवाद करके अपने लेख मे सच्चे अर्थ को सामने ला रक्खा था। अत मे सीता की हसी ने उसे थोडा शात और हसमुख बना दिया था। सीता ने इस बार पीछे फिरकर अय्यर और बदरी से कहा था—चलो।

अय्यर ने कहा था—ह्वाट ! यू आर ऑलरेडी लेट बाइ हाफ ऐन आवर !

—कोई बात नही, चलो। अय्यर, हम लोग बगाली है, अग्रेज नही है। चलो।

अशुमान ने पूछा था—कहा जाइएगा ?

—यही, पास ही। एक बडा ऑर्डर है। यह माल उन्ही लोगो का है। रास्ते मे आपको अपने घर पर देखकर

साडी के आचल को एक ज़ोर का झटका देकर बरामदे से उतरते-उतरते उसने कहा—बडा अच्छा लगा। जानते है···।

बडा अच्छा लगा।

यही था सीता के साथ पहला परिचय।

उसी लेख के लिए वह उसे देखने आई थी। उस बार का परिचय वही खत्म हो गया। दूसरी बार भेट न होने पर सीता की उसे कभी याद न आती। सीता उसके जीवन मे ही न आती और आज की इस मर्मातक घटना का उसे सामना न करना पडता।

यह चोट भयानक है—यह चोट शायद सारी चोटो मे कठोरतम चोट है।

उसकी आखो से कई बूद आसू टप-टप गिर पडे।

अगर सीता से फिर उसकी भेट न होती ! उस दिन की यह मुलाकात किसी सभा-समिति मे दिए गए फूलो के एक गुच्छे से ज्यादा कुछ नही थी।

नही, सीता से उस दिन भेट न होती तो वह दूसरा लेख न लिखता।

सीता से भेट होने के बाद, पहले लेख का सिलसिला बढाते हुए उसने एक दूसरा लेख लिखा था। वह लेख पहले लेख से ठीक उलटा

था। उसमे उसने वाल्मीकि की रचना की व्याख्या नही, वाल्मीकि की आलोचना की थी।

सीता से मुलाकात होने के बाद उसके मन मे एक कठोर प्रतिक्रिया हुई थी। ऐसी एक कच्ची उम्र की महिला उसे भय के साथ, विस्मय के साथ देखने आई थी। उसने यह धारणा बना रक्खी थी कि वह एक दकियानूसी हिन्दू धार्मिक है, स्वभाव का क्रोधी है, पक्की उम्र का है, जिसका मतलब यह हुआ कि पुराने ज़माने का है, अचल है।

नई उम्र की, सीता नामवाली उस औरत की धारणा तक ही यह बात सीमाबद्ध नही है, इस ज़माने के लडके-लडकिया, प्रगतिशील लोगों की धारणा मे यह बात किसी देव-मदिर के पुष्प-कुड के बासी फूलो की गध-सनी हवा की तरह फैल गई थी। इस ज़माने मे 'रिलीजस' और 'ऑर्थोडॉक्स, ये दो शब्द अच्छे शब्दो की सूची मे नही आते। ब्राह्मण, पडित, मुल्ला, मौलवी, इन शब्दो का असल मतलब जो भी हो, या कभी जो भी रहा हो, आज के युग मे इनका अर्थ साप, बिच्छू वगैरह की तरह जहरीला और घृणित हो गया है। उस दिन आकर सीता उसे यही खबर दे गई थी कि वाल्मीकि के श्लोक की गलत व्याख्या और सीता के चरित्र मे अतर्निहित कवि-कल्पना को विकृत करने का विरोध करने जाकर वह पूरा धार्मिक, पुराणपथी और रिलीजस रिऐक्शनरी के रूप मे जाना गया है।

इसकी एक भयानक बेचैनी है। नही, बेचैनी से भी ज्यादा। यह एक असहनीय मार्मिक यत्रणा है।

और, वह वास्तव मे उससे ठीक उलटा है।

उसके पिता ने विद्रोह किया था। उसकी मा भी विद्रोहिणी थी। विद्रोह और विप्लव की शिक्षा उसे सौरी-घर से ही मिली है।

इसीलिए उसने दूसरा लेख लिखा था। लेख का शीर्षक था वाल्मीकि और वेदव्यास। खासा बडा लेख था। आज याद आता है, लेख मे अनेक स्थानो मे रक्षणशीलता पर व्यग्य करते हुए वह सीमा का अतिक्रमण कर गया था। पहला लेख लिखकर उसने जितनी जलन महसूस की थी, आज यदि वाल्मीकि जीवित होते—अथवा परलोक मे उनकी आत्मा

ने अमरता पाई होगी—तो उन्हे उससे बहुत ज्यादा जलन महसूस होती अथवा होगी, इसमे सदेह नही है। लेख मे उसने इस रहस्य का उद्‌घाटन किया था कि वाल्मीकि मे वास्तविकता का सामना करने का साहस नही था और इसके लिए उनका मखौल उडाया था या उनपर कोडे चलाए थे। यह भी कहा जा सकता है कि उसमे समाज की लाज बचाने तथा सतीत्व की महिमा अक्षुण्ण रखने के लिए सत्य को नजरबदी कानून के मुताबिक देवलोक के जेलखाने मे कैद कर दिया गया था। पहले उसने लिखा था कि सिर्फ एक सोने का हिरन देखकर सीता इतनी मोहित हो गईं कि उन्होने राम को भेजा—जाओ, उसे पकड लाओ। पकडना ही होगा। "जिसको जो कहना हो सो कहे, मुझे तो सोने का हिरन चाहिए।" जिसका जो होना हो, होता रहे, उससे मुझको क्या लेना-देना है! लेकिन वही सीता सोने की लका मे जाकर सोने का घर-द्वार देखकर क्यो नही मोहित हुई? वह क्यो अनशन और सत्याग्रह करके अशोकवन मे पड़ी रही, इसका कोई उचित कारण नही है। उसके बाद उसने लिखा था—अपनी कल्पना की सीता नाम की उस मानवी और मानव-कुलवधू के शरीर की पवित्रता को लेकर महाकवि बडे सकट मे पड गए थे। सत्य का सम्मान करू या सतीत्व-महिमा के मिट्टी के देवता की पूजा करू; वास्तव को वास्तव के रूप मे प्रस्तुत करूं या समाज की आज्ञा शिरोधार्य करके माथे पर शिरोपा रक्खू, इस दुविधा में पडकर एक नही, दो-दो बार उन्होने दैव के मैजिक रूपी असभव और अलौकिक की शरण ली थी। उसने बडे कौशल से अपने पहले लेख की भी याद दिला दी थी। उसने यह समझा या जता दिया था कि यह लेख उसके पहले ही लेख का अतिम अंश अथवा असल बात है। लेख मे उसने सीता-हरण की वही बात उठाई थी। जटायु का प्रसग।

"जटायु को मारकर और सीता के केश पकडकर लटकाए हुए रावण सारा आकाश-मार्ग पार करके लका आया। वहा चेटियो के पहरे में अशोक-वन मे सीता को रखकर भी रावण को उनका भोग करने का साहस नही हुआ। राक्षस मे मानवीय उदारता नही है। रावण मे तो नही ही है। फिर भी उसका साहस नही हुआ। क्यो नही कर सका'

इसका कारण रावण ने अपने सभासदो से अपने ही मुह से बताया था। उसने कहा था, लोक-पितामह ब्रह्मा ने उसे शाप दिया है—नारी की सम्मति के बिना, बलपूर्वक उससे भोग करने पर मेरे दस सिर सौ खड हो जाएगे।"

सीता को रावण के अशोक वन मे पहुचाकर शायद महाकवि को समाज की और राजा की (शायद वे राम ही हो) याद आई। विचलित होकर वे मा सरस्वती के दोनो पैरो पर पछाड खाकर गिर पडे थे—और जननी वाग्वादिनी ने, जो कल्पना मे मनुष्य के मन को आकाश मे उडने की शक्ति देती है, कहा था—भय क्या है वत्स ! दैव की महिमा के अलौकिक ओढने से सीता का अग-बन्धन कर दो। वाल्मीकि ने अपनी बुद्धि से सीता का अग-बन्धन न करके रावण के हाथ-पैर—बीस हाथ और दो पैर देवलोक के तात से बुने अलौकिक के अगोछे से बाध दिए थे।

"आदि पर्व से लेकर वन पर्व के राजसभा-वर्णनवाले सर्ग तक कवि ने रावण के शाप के बारे मे कही कुछ नही कहा। इस सर्ग मे पहुचकर उन्हे ख्याल आया कि रावण का वध तो किया जा सकता है, लेकिन सीता को उसके अशोक वन मे लाकर डाल देने के बाद, रावण के बीस हाथो के हमले से उनके शरीर को बचाया किस तरह जा सकता है। जिस उपाय से वह बच सका, उसे सभी जानते है। और अब तक अर्थात् त्रेता काल से पूरे द्वापर और कलियुग की बीसवी शती तक वाल्मीकि निरकुश प्रशसा और अभिनन्दन पाते आए हैं। इस बीसवी शती मे उन्हे न्यायालय के कठघरे मे खडा होना पडेगा। मेरा यह लेख वस्तुतः लेख नही, जनता के न्यायालय मे मेरी अर्जी है। मैं गवाह किसीको न मानूगा। मानूगा वाल्मीकि को ही। उनको बताना पड़ेगा कि रावण के मुह से एक बार उस शाप की बात कहलाने के बाद उन्हे एक बार फिर अग्नि-परीक्षा के उस जादू की जरूरत क्यो पडी ? उसके बाद भी उन्होने धरती को फाडकर सीता को पाताल मे क्यो भेज दिया ? वे उस राज-सभा से वैकुठ से आए रथ पर बैठकर, शख-घटा बजाकर, लक्ष्मी के रूप मे वैकुठ क्यो नही गईं।

इसके बाद उसने महाभारत के सभापर्व की द्यूत-क्रीडा और रजस्वला तथा एकवस्त्रा द्रौपदी को सभा मे खीच लाकर दु.शासन के द्वारा उसके वस्त्र-हरण की घटना का उल्लेख करते हुए लिखा था—यद्यपि वेदव्यास ने यह लिखा है कि नारायण रूपी कृष्ण ने अदृश्य रूप से वस्त्र जुटा दिया था, लेकिन द्रौपदी को नगी होने से बचाने के लिए एकमात्र यही रक्षा-कवच नही था। यहा दैव-बल ही एकमात्र बल नही था। यह स्मरण रखना होगा कि भीष्म और द्रोण आदि कौरवो के अन्न के दास थे। उनकी उपेक्षा करके अधे राजा धृतराष्ट्र ही वहा सबसे बडे अधिकारी थे—वे ही कौरवो के कुलपति थे, राजा थे। देवी गधारी जैसी महिमामयी राजेश्वरी को भी स्मरण रखना होगा। ध्यानपूर्वक महाभारत को पढने से स्पष्ट होता है कि द्रौपदी की रक्षा जन्मान्ध राजाधिराज धृतराष्ट्र के हस्तक्षेप ने की थी। दुर्योधन का बहुत तिरस्कार करके उन्होने द्रौपदी को दिलासा दिया, वर भी दिया। दासता से पाडवो का छुटकारा हुआ।

इस लेख के प्रकाशित होते ही चारो ओर से आश्चर्य उमडने लगा था। तरह-तरह के विचार, तरह-तरह की आलोचनाए अखबारो मे शुरू हो गई थी। गाली-गलौज भी कम नही हुई। लेकिन मौखिक आलोचना का तो अन्त नही था—खास कर तरुणो के दल मे।

एक विचित्र बात यह है कि इस गाली-गलौज के बीच उसने अपने को परेशान नही महसूस किया, बल्कि एक छिपे हुए अहकार-बोध से उसे थोडी तृप्ति ही मिली थी।

चिट्ठिया बहुत सारी आई थी। प्रशसा और अभिनन्दन भी मिला था। और निन्दा, कडवी बाते और उसके साथ अभिशाप भी था। वह पत्रो की लिखावट को ध्यान से देखता था। लिखावट अच्छी-बुरी, कच्ची-पक्की, सब तरह की होती थी। इसीसे वह निर्णय करता था कि उनमे से कितने छोकरे हो सकते है और कितने विचारशील व्यक्ति। उनमे कितनी औरते है और कितने मर्द, वह इसका लेखा-जोखा भी लगा लेता था। नई उम्रवालो ने ही उसे उत्साहित किया था। पुराने लोगो मे जो पुरुष थे, उनमे से कइयो ने शास्त्रीय तर्क छेड़े थे, कइयो ने दु.ख प्रकट

करते हुए अनुरोध किया था कि वह फिर कभी पुराणो की ऐसी अटपटी व्याख्या न करे। दो बूढो ने तो उसे शाप भी दिया था। औरतो की एक जमात ने उसे एक ही ढग से गाली दी थी। लिखा था—हम लोगो को तुमसे घृणा है। उनमे से किसी-किसीको एक ही बार 'घृणा है' लिखने से सतोष नही हुआ, तो उन्होने लिखा—घृणा है, अत्यन्त घृणा है।

इसके अलावा और बाते भी हुई थी। छात्रो के दल मे उसका नाम एक चचलता उत्पन्न करनेवाला नाम बन गया था। वे दो-दो करके उसे मिलने अथवा उसे देखने आने लगे थे। सभा-समितियो की विवाद-गोष्ठियो मे बड़े आग्रह के साथ उसके नाम की प्रतीक्षा होती थी।

छात्रो मे तो पहले से ही उसकी शोहरत थी। उसका छात्र-जीवन लबा था और उस लबे छात्र-जीवन मे उसकी जगह छात्र-आदोलनो की प्रथम पक्ति मे थी। दो-चार राजनैतिक दलो ने भी उसे अपने-अपने खाते मे नाम लिखवाने को कहा था, लेकिन उसने लिखाया नही।

अपनी छोटी-सी आयु मे ही उसने राजनैतिक दलो को अच्छी तरह जान और पहचान लिया था। राजनैतिक दर्शन और राजनीति-शास्त्र उसने बहुत पढा है। राजनैतिक दलो को भी वह पहचानता है। सभी दलो का चेहरा उसने देखा है।

रहने दो।

सीता बहुत दूर पडी जा रही है।

जीवन की बाते तो बहुतेरी है। वे सब बाते, बाते होकर भी बातें नही है। सवेरे की जो बात शाम को मन से मिट जाती है, उसका कोई निशान भी नही रहता, वह भी कोई बात है? रात को सभी लोग कुछ न कुछ सपना देखते है, लेकिन सवेरे उसकी कोई बात याद नही रहती—यह भी वैसा ही है।

सीता वह नही है।

आज मृत सतान को गोद में लेकर—रोगशय्या पर लेटी, उसने उसके पास संवाद भेजा है।

अपने किए का विचार करके, अपने अपराध के लिए उसने दंड का निर्णय कर लिया है।

उन दिनो बहुत-से लोगो ने बहुत सारे पत्र लिखे थे। सीता ने कोई पत्र नही लिखा। किसी बहाने उससे मिलने भी नही आई। नही, उसने भी उसकी खोज-खबर नही ली।

एक पत्र उसकी मा ने लिखा था।

उसकी भाषा बडी कठोर और कर्कश थी और वक्तव्य मर्म को बेधने-वाला था, निष्ठुर। बहुत दिन पहले, अपने छात्र-जीवन मे ही वह मा से अलग हो गया था। उस समय उसने आई० ए० भी पास नही किया था। तभी से वे उसका मुह न देखती थी। यह लेख पढ़कर उन्होने लिखा था—"तुम्हारा लेख पढकर मैं अच्छी तरह समझ पा रही हू कि तुम्हारे मन को कोढ हो गया है। तुम ईश्वर से दया की प्रार्थना करना। सुना है, देश मे कुष्ठ रोग की चिकित्सा मे उन्नति हुई है, अव्यर्थ औषधियो का आविष्कार हुआ है। लेकिन मन का कुष्ठ दैवी कृपा के बिना कभी नही छूटता। मन ही मन पश्चात्ताप करना। पश्चात्ताप से अपने चित्त को शुद्ध करना।"

नही।

उसने पश्चात्ताप नही किया—उस समय पश्चात्ताप करने का कोई कारण नही उपस्थित हुआ।

दो

पत्रो के इतने आघात, इतनी वाहवाही और निंदा, यहा तक कि कठोर क्रोध की आच से जलाते हुए मा के उस पत्र से भी वह विचलित नही हुआ। उसने किसी पत्र का उत्तर नही दिया; मा के पत्र का भी नही।

जिन्होने उसे उत्साहित करके वाहवाही दी थी, वह उनके दल का कोई नही है और जिन्होने उसे शाप दिया था, वह उनका भी कोई नही है। अपने जीवन के अनुभव से समस्त देश की, देश ही क्यो, सारे ससार की इस शती की अवस्था देखकर वह जो समझ रहा था, जिस धारणा तक पहुच रहा था, उसीको प्रकट करने के लिए उसने तीसरा लेख लिखने का सकल्प किया था।

सबसे पहले उसके मन मे उस लेख का शीर्षक ही आया था। शीर्षक था—'नवभारत का मुक्ति-पर्व'। लिखना आरम्भ भी कर दिया था, लेकिन लेख के रूप मे उसे प्रकाशित कराना उसके लिए सहज नही हुआ। बार-बार लिखना आरम्भ करके, थोडा लिखने पर मानो उसका हाथ और उसकी कलम अवश हो जाती थी। लगता था, ठीक नही बन पडा। उसे फेंक दिया था। किसी बार दो-चार पैराग्राफ, किसी बार एक-दो पृष्ठ और किसी बार पांच-सात पृष्ठ लिखकर भी फेंक दिया था। उसके घर के पुराने, रद्दी कागजो मे ढूढने पर, उसका बचा-खुचा कुछ हिस्सा अब भी पाया जा सकता है।

उसने जो समझा था, उसे प्रकट करने मे उपलब्धि का अभाव उसे नही हुआ। लेकिन उसे प्रकट करने का शायद वह साहस ही नही कर सका, और लेख लिखने के लिए, अनेक स्थलो पर जिसकी अत्यन्त आवश्यकता होती है, उन तर्कों तथा तथ्यो की भी कमी हुई। वह सग्रह नहीं कर सका। कर नही सका, ऐसा नही, करता तो अवश्य ही कर सकता था, लेकिन उसमे उतना धीरज नही था। वह ठीक-ठीक निबन्ध-लेखक नही है। उसे लिखना अच्छा लगता हैं। वह नाटक और गीत लिखना चाहता है; उसने कहानिया और उपन्यास भी लिखे है थोडे-बहुत, लेकिन नाटक ही उसका सबसे प्रिय माध्यम है।

इस नई उपलब्धि के बाद, बहुत सोच-विचारकर उसने अपने नये नाटक के लिए विषय-वस्तु का निर्वाचन किया था—महाभारत के मौसल पर्व से। उसने सबसे पहले अन्तिम दृश्य की ही कल्पना की थी।

'परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्'—पृथ्वी पर धर्म की सस्थापना के लिए जिन श्रीकृष्ण ने अवतार लिया था, वे श्रीकृष्ण अब बूढे हो चले है। कुरक्षेत्र के सहार का किस्सा खत्म हो चुका है। कौरवों के अन्त पुर मे विधवाए ही विधवाए है—वहा विधवाओ को छोडकर और कोई दीख नही पडता। पाडवो के वश मे उत्तरा का पुत्र परीक्षित ही अकेला बच रहा है। दुर्बल भारत क्षेत्र मे बच्चे-बूढे है अथवा विधवाएं और कुमारिया। लेकिन समुद्र के किनारे, द्वारका राज्य मे, छत्तीस करोड़ यादव मतवाले होकर घूमते फिर रहे है। जोर की हसी और ठहाकों से समुद्र का गर्जन लज्जित हो जाता है—उनके कोलाहल से, कलरव और आस्फालन से, आती हुई आधी अपना रास्ता बदल देती है। यादव कुमार और कुमारिया स्वच्छन्द भाव से विहार करती घूमती-फिरती है।

जाने दो। इन सबके वर्णन की जरूरत नही है।

कुमार्गी और सख्या मे बढे हुए यादवो ने मद्यपान से मतवाले होकर आपस के लडाई-झगडे और अन्तर्द्वन्द्व से···। नही, इन सस्कृत शब्दो में नही, सीधी भाषा मे दगा-फसाद करके सरकडे के पेड और उनकी डालें लेकर और उसीसे एक-दूसरे को मार-पीटकर खत्म कर दिया।

इस परिणाम की बात श्रीकृष्ण जानते थे।

जरा (बुढ़ापा) व्याध के शराघात से घायल होकर, नीम के पेड के तने का सहारा लेकर, शेष निःश्वास छोड़ने के समय, अन्तिम मुहूर्त मे उन्होने आखो के दो बूद आसू गिराए। उसने यहा भी नाटक का अन्त नही किया। किया था वहा, जहा अर्जुन अनाथा यानी नाथहीन यादव पुर-नारियो को हस्तिनापुर ले जा रहे है और बीच राह मे जहा शबर तथा व्याधो ने उनपर आक्रमण किया है। अर्जुन उन्हे रोकने के लिए गाडीव पर प्रत्यञ्चा चढाने लगे तो स्तभित होकर रह गए। वे धनुष पर प्रत्यञ्चा न चढा सके। थर-थर कापने लगे। यह क्या हुआ ? क्यो हुआ ऐसा ? किसी तरह उन्होने प्रत्यचा चढाई भी तो युद्ध-कौशल भूल गए। उनका अक्षय तूणीर युद्ध करते-करते खाली हो गया।

उधर उल्लसित शबर और व्याधगण, रथ से खीचकर पुर-नारियो को नीचे उतारने लगे। पुर-नारिया कोई और न थी—महाभारत के पुरुष-श्रेष्ठ पुरुषोत्तम के वश की कन्याए और वधुए थी। हो सकता है कि वासुदेव कृष्ण की असख्य विवाहित पत्नियो के भाग्य मे भी इससे भिन्न कुछ न बदा हो। व्यासदेव ने कुछ लिखा नही।

उन्होने जो धर्मराज्य कुरुक्षेत्र के युद्ध मे स्थापित किया था, वह आसमान मे उडनेवाली एक पतग की तरह, तागा तोडकर आकाश मे उड़ गया—बिलकुल एक कागज के टुकड़े की तरह।

इसी पटभूमि मे काल आया नया काल लेकर।

नये काल मे दिन का रग नही बदला, दिन की लबाई मे भी फर्क नही पडा, गर्मी मे शायद कुछ फर्क पडा हो, लेकिन वह भी कुछ खास नही। प्रकाश की, वायु की, जल की, मिट्टी की वही एक ही गति, एक ही गुण, एक ही क्रिया और एक ही स्वाद है। फिर भी काल का परिवर्तन हुआ। परिवर्तन हुआ धर्म मे, जीवन की भावना मे। जीवन धर्म के परिवर्तन से काल बदलता है—द्वापर के बाद कलि। परीक्षित काल पर शासन करके भी उसे धोखा नही दे सके।

सांप के काटने से परीक्षित की मृत्यु हुई। कलि ने आकर अपना शासन फैलाया। उसके प्रशासन मे आत्मा नही है, ईश्वर अस्वीकृत है, सत्य है

× × ×

केवल जीवित मनुष्य और वस्तु।

नही, इस तरह कलि काल की व्याख्या नही की जा सकती। यह व्याख्या उसकी सच्ची व्याख्या नही है। इस व्याख्या के सामने आज असख्य प्रश्न निर्भीक भाव से उच्चरित होते है। महाराज परीक्षित के सामने ये प्रश्न कलि नही उठा सका था। आज कलि इन प्रश्नो को प्रमाण के साथ प्रचारित कर रहा है।

कौन कहता है, कलियुग भ्रष्टता का युग है?

कौन कहता है, कलि काल खर्वता का काल है, दुर्बलता का काल है, निर्वीर्यता का काल है?

कौन कहता है, कलियुग अज्ञात का युग है, मिथ्या का युग है, भ्राति का युग है, सकीर्णता का युग है, अशाति का युग है, भोग-सर्वस्वता का युग है?

कलियुग मे क्या दिन का प्रकाश मलिन हो गया है? दिन की दीर्घता क्या कम हो गई है? अधकार क्या और गाढा काला हो गया है? रात की लवाई क्या बढ गई है?

नही।

कलियुग विचित्र युग है। मत्य, त्रेता और द्वापर से बिलकुल अलग। यह भ्रष्टता का युग नही है, खर्वता का भी नही—सकीर्णता अथवा दुर्बलता अथवा निर्वीर्यता का युग भी नही है।

विश्वकर्मा-पूजा के दिन की अनगिनत कटी पतगो की तरह, यहां आकर उसके विचार गड्डमड्ड हो गए और मन के आकाश मे खो-बिखर गए।

नाटक का उपसहार अथवा समाप्ति मानो अधूरी रही जा रही थी। कई बार नाटक आरभ करके, दो-तीन दृश्य लिखने के बाद उसने काम रोक दिया। उसे डर लगा। एक विराट् ध्वस ऐसे भयावह रूप मे सामने आ खडा हुआ कि उस ध्वस-दृश्य को पार करके उसकी कल्पना, किसी एक-बिंदु आलोक का आश्रय पाकर, उसे जकडकर खडी न रह सकी।

नाटक नही लिखा जा सका। नीव पडी थी नये निबध की। उसने

सोचा था, निबध के माध्यम से ही वह मा को उत्तर देगा। पत्र नहीं लिखेगा। लेकिन निबध लिखकर उसका मन सतुष्ट नही हो सका। सिर्फ उसका थोडा-सा हिस्सा लेकर आखिर उसने अपनी मा के शाप-भरे अथवा निदारुण उत्ताप-भरे पत्र का उत्तर दिया था।

उसने लिखा था—तुमने मुझे जो पत्र लिखा है और उसमे जिन गिने-चुने कठिन वाक्यो का प्रयोग किया है, वे बिलकुल व्यर्थ और लज्जित हुए है। मुझे यह आशा नही थी कि तुम ऐसा पत्र लिखोगी। तुम इतनी युक्तिहीन हो सकती हो, मेरी ऐसी धारणा नही थी। अतसी की घटना लेकर तुम मुझसे नाराज़ और विमुख हो, यह बात सबको मालूम होने पर भी, उस नाराज़ी का ज़हर और उस विमुखता की व्याप्ति इतनी तीव्र और दुस्तर है, यह मैं नही जानता था। मै तो तुम्हारी पेट-जनमी सन्तान हूं। आरम्भिक शिक्षा मुझे तुम्हीसे मिली है। मैंने बचपन मे देखा है कि तुम मन्दिर की ओर नही जाती थी, यानी देवता पर विश्वास नही करती थी। आज तुमने पढी-लिखी महिला की भाषा मे मुझसे जो कुछ कहा है—उस जमाने मे दादी अपने उस ज़माने की देहाती बोली मे ठीक यही सब कहती थी। आज वही तुमने लिखा है मुझे!

यह बात अशुमान को उसकी गुजरी ज़िन्दगी की घटना याद दिला जाती है।

केवल अशुमान की गुजरी जिदगी ही क्यो—उसके पीछे भी है उसके वश का जीवन। उसके पिता निरजन चौधरी थे, मा शोभा चौधरी।

नही। शोभा चौधरी विवाह के सूत्र से चौधरी बनी, उसके पहले से ही याद करना होगा। पहले स्थान, तब काल—सबके अन्त मे पात्र।

वर्धमान जिले के उत्तरी हिस्से मे अजय नदी है—नदी नही, नद। नही, पडा रहे उसका नद का पौरुष। फिर भी था नद ही।

अजय के किनारे एक गाव। ब्राह्मण-वैद्य-गधवणिक-उग्र क्षत्रिय-प्रधान इस गाव मे उसके बाप-ताऊ वगैरह का ही सबसे बडा घर था। इस इलाके के दूसरे-दूसरे गावो मे उग्र क्षत्रियो की प्रधानता और प्रबलता होने पर भी इस गाव के जमीदार, जोतदार और महाजन—ये तीनो ही

चौधरी लोग थे।

१९२४ से ही काल का आरभ करना ठीक है।

सन् १९२४ मे अजय नद के दक्खिनी किनारे वाले देवग्राम गाव के प्रधान व्यक्ति थे चौधरी लोग। उपाधि थी चौधरी, जाति ब्राह्मण गोत्र काश्यप यानी चट्टोपाध्याय। बगाल के ग्रामीण समाज मे फटेहाल मेहनत-मज़दूरी करनेवालो से लेकर धनी, जमीन-जायदादवाले लोगो की अनेक श्रेणिया, अनेक सीढिया है। रोज़ कमाने-खाने, न कमाने पर उपवास करनेवालो से लेकर, देकर खाने, खाकर फेकने, फेका हुआ भात जिस घर मे कौए खाते है, कुत्ते खाते है, उन घरो तक और फिर मोटिया, मज़दूर, किसान, नौकर, खेतिहर, जोतदार वगैरह बहुत-सी सीढिया है। उसके बाद प्रधान सीढिया तीन है—जोतदार, महाजन और ज़मीदार। इसके साथ फिर जाति का श्रेणी-विभाग जुडा हुआ है, छूत-अछूत-व्रात्य से नवशाक तक की अनेक श्रेणिया, ऊपर की इन तीन श्रेणियो के कायस्थो, वैद्यो और ब्राह्मणो के बीच सीमाबद्ध है। देवग्राम के चौधरी लोग ब्राह्मण है।

बहुत पहले के लोगो का कहा प्रवाद चला आता है कि बहुत पुराने ज़माने मे देवग्राम के चौधरी पट-झाडा ब्राह्मण थे, यानी सद्गोप-प्रधान, इस इलाके मे पुरोहिती करते फिरते थे। लोग कहते—भशचाज जी, यानी भट्टाचार्य जी।

निरजन चौधरी के पाच पुश्त पहले कृष्णपुर से कई गावो के बाद के एक गाव का कोई सपत्तिशाली यजमान-घर, बहुत बडे दोष से समाज मे पतित हो गया था। कहते है कि उनके घर मे मुसलमान के ससर्ग का दोष हो गया था। दोष हुआ था स्वय मालिक से। वे अमितचारी भी नही थे—पापी-व्यभिचारी कहने से जो समझा जाता है, वह भी नही थे। वर्धमान मे फौजदार के मातहत काम करते थे, गाने-बजाने का शौक था, बाई जी के आशिक थे—वह आशिकी ऐसी गहरी हो उठी थी कि आखिर उसे उन्होने गाव-बाहर के बगीचे मे ला बैठाया था। परिणामत: वे पतित हुए। उधर फौजदार की ओर से दबाव पडा। उन्होने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया। राजा सहायक थे, राज सरकार की नौकरी थी,

भरे-पूरे आदमी थे, ज़मीदारी-जागीरदारी थी, कोई खास दिक्कत नही हुई। दिक्कत हुई थी सिर्फ घर की शालिग्राम-मूर्ति को लेकर। जात देकर भी वे उस शिला को नदी के दह मे या तालाब मे नही फेंक सके अथवा लोहे की हथौडी से उसे तोड भी नही दे सके। उस विलासी फौजी आदमी के हृदय मे जाने कहा एक अद्‌भुत ममता छिपी थी उस शिला के लिए।

बहुत सोच-विचार के बाद आखिर देवग्राम के पुरोहित जी को बुलाकर उन्होने वह शिला उन्हे सौप दी और उसकी सेवा-पूजा के लिए बीस बीघे की एक जोत और उसके साथ एक बावली और बगीचा भी दे दिया। यह सब निष्कर सम्पत्ति थी। उन्होने खास नवाबी दफ्तर मुर्शिदाबाद से नवाब के दस्तखतवाला लाखराजनामा ला दिया था। कहते है कि लाखराजनामा की दो जगहो की लिखावट धुधली पड गई है, साफ दीखती नही। लोग कहते है, यह लाखराजनामा पुरोहित जी को देते समय मालिक की आखो से आसू की दो बूदे झर पडी थी।

यही शुरुआत थी। जिन्होने यह शालिग्राम और जमीन पाई थी, वे निरजन चौधरी के वृद्ध पितामह थे।

इसके बाद की पुश्त के, निरजन चौधरी के प्रपितामह ने नौकरी पकड ली थी—फौजदार की ऊपरी आमदनी से महाजनी कारबार करके वे एक ही साथ जोतदार और महाजन बन गए थे। उन्होने चौधरी उपाधि भी पाई थी। ज़मीदार हुए थे निरजन के पितामह लोग। पितामह दो भाई थे। उन्ही लोगो ने जमीदारी अर्जित करके, पुरोहिताई के पेशे का लज्जाजनक परिचय मिटा देने के लिए ही चट्टोपाध्याय (लोग गलती से कहते थे भटचाज) उपाधि का त्याग करके चौधरी उपाधि धारण की। घर की देव-सेवा के लिए एक दूसरे ब्राह्मण को बुलाकर गाव मे बसाया।

रहने दो। गुजरे से गुज़रे जमाने की घटनाओं पर यही पर्दा पडा रहे। नही। एक और घटना खुद ही पुकारकर, कान के पास आकर कह रही है। कहती है—एक बात और है। निरजन चौधरी के पितामह दो भाई थे। जीवन के अन्तिम दिनो मे उन्होने सब कुछ दो हिस्सो मे

बाट लिया था। एक भाई को एक लडका था, दूसरे को दो थे। निरजन के पिता अपने बाप के अकेले लडके थे। उनके दो लडके हुए। अर्थात् निरजन के सहोदर और दो भाइयो के लडके हुए दो गंडा, यानी आठ। अत अगले ही प्रश्न मे भीष्म पर्व से सौप्ति पर्व तक अथवा स्त्री पर्व तक कुरुक्षेत्र का हिस्सा शुरू हो गया।

मामला-मुकदमा, विवाह-उपनयन, श्राद्ध के क्रिया-कर्म के समारोह से लगाकर, कहा जाता है, वर्धमान की खेमटावाली की मजलिस मे प्याला देने तक वह कुरुक्षेत्र, महाभारत के कुरुक्षेत्र से अलग होने पर भी बहुत साधारण और सुपरिचित था। इसीके बीच एक युद्ध-मुख या क्षेत्र था राजा के अनुग्रह का क्षेत्र। जिसपर राजा का जितना अनुग्रह होता, वह जनसाधारण पर, समाज पर उतना ही प्रभाव फैलाता।

सन् १९२० तक पचायत की अध्यक्षता को लेकर झगडा था। यह पद चौधरियो के ही कब्जे मे था, लेकिन उनमे आपस मे खासा विवाद था।

सन् १९३१ मे यूनियन बोर्ड कायम हुआ। उधर लेजिस्लेटिव कौसिल का चुनाव आया।

आज, सन् १९६८ मे यह बताने की जरूरत है कि सन् १९२१ मे लोअर हाउस का नाम एसेबली नही, कौसिल था। अपर हाउस का एसेबली।

सन् १९२१ मे निरजन चौधरी के भाई यूनियन बोर्ड के प्रेसिडेट बने। निरजन के बडे भाई पहले से ही यहा की पचायत के प्रेसिडेट थे। तब तक निरजन आदि का सम्मिलित परिवार था। यही से भाई-भाई मे विरोध आरम्भ हुआ था। आरम्भ हुआ था सन् १९२१ के आदोलन को लेकर। उस साल पूजा के समय दूगाई मिश्री की विलायती कपडो की दुकान पर अचानक छोकरो के एक दल ने धरना देना शुरू कर दिया था। विलायती कपडे कोई न खरीदे—कोई न बेचने पावे, यही उनका अनुरोध था। दूगाई मिश्री, निरजन के बडे भाई पुरंजन का सहपाठी था और यूनियन बोर्ड मे वह क्लर्क और टैक्स कलक्टर, दोनो ही था। दूगाई मिश्री ने आविष्कार किया था कि इन धरना देनेवालो के पीछे

जिनकी प्रेरणा है, वे है निरजन चौधरी । इस दूगाई ने ही व्याख्या की थी कि इसका कारण स्वदेश प्रेम नही है, देवग्राम मे विलायती कपडो की दुकान पर धरना देने का मतलब है यहा के यूनियन बोर्ड के प्रेसिडेट को ज़िले के ऊपरवालो के सामने नीचा दिखाना ।

निरजन चौधरी इन लोगो के समर्थक थे, यह सच है; लेकिन यह सच नही है कि वे अपने बडे भाई को नीचा दिखाना चाहते थे । सच बात यह थी कि देशव्यापी आदोलन ने उनको भी स्पर्श किया था, लेकिन आदोलन मे कूद पडने की उनकी अपनी क्षमता नही थी । इसीलिए उन छोटे-छोटे लडको से विलायती कपडे की दुकान पर धरना दिलाकर उन्होने थोडा पुण्य सचित करना चाहा था । शायद उसके साथ कुछ प्रतिष्ठा भी पानी चाही थी । लेकिन सर्किल अफसर और थाना अफ़सर ने पुरजन से कहा था—आपके इलाके के लडके आपकी बात न सुनकर आपके छोटे भाई की बात मानेगे, यह बात तो साहब, अजीब-सी लगती है । जान पडता है, भाई के जरिये आप ही यह सब करा रहे है । सर्किल अफ़सर गनी ने इसीके साथ कहा था—पुरजन बाबू, बीच-बीच मे आपको राय साहबी देने की बात चलती रहती है, लेकिन यह सब करने पर तो······

बस, इसीसे एक दिन विचित्र भाव से यह बात स्पष्ट और प्रकट हो गई कि नये और पुराने, दोनो जमानो मे कश-म-कश शुरू हो गई है । देश मे नही, देवग्राम गाव मे, चौधरियो के घर मे । शुरू हुई उसी घटना को लेकर । अथवा आज जो कुछ हो रहा है, उस घटना की सूचना मिली थी उसी दिन ।

पुरजन चौधरी सिर्फ दुखी ही नही हुए, नाराज़ भी हुए थे । छोटे भाई के लिए उन्होने बहुत कुछ किया था । इट्रेस फेल ये निरजन बच्चे नही थे, उनकी खासी उम्र हो गई थी । दो लडको और एक लडकी के बाप थे । लडके सयाने हो गए है—बडा नवें दर्जे मे पढता है । बेशक कम उम्र मे लडके हुए है । जो भी हो, बच्चा बनकर बैठ रहने से तो चलेगा नही । बच्चो के बाप को याद रखना होगा कि वह बच्चो का

बाप है। अब तक पुरजन ही जमीदारी का कारबार सभालते आ रहे थे—समझदारी से चला रहे थे। जैसे साप हिरन को निगलता है, उसी तरह वे दो पैसा, चार पैसा करके अपने ताऊ के लडको की सपत्ति निगलते जा रहे थे। ज़मीदारी बढी थी, ज़मीन बढी थी। पुरजन ने यह सब अकेले अपने ही लिए नही किया था। दोनो भाई बाट लेंगे, इसी खयाल से दोनो भाइयो के नाम से खरीदा था। इट्रेस फेल होकर निरजन घर बैठकर कुछ दिनो तक फुटबाल खेलते रहे थे। इसके अलावा गाना-बजाना था। तबला और पखावज के पक्के बजवैया थे। वर्धमान शहर मे राजा के थियेटर मे पार्ट करके उन्होने नाम कमाया था। इससे खुश होकर पुरजन बाबू ने गाव मे भी शहर के थियेटर की नीव डाली थी। घर पर पितामह राधा-गोविंद की मूर्ति स्थापित करके देवोत्तर सपत्ति रख गए थे। उसी देवोत्तर संपत्ति से थियेटर चलता था। राधा-गोविंद की दोल-यात्रा, रथ-यात्रा के सिलसिले मे उत्सव होता—उसी समय देवग्राम के राधा-गोविंद थियेटर मे तीन दिन, छः दिन नाटक का अभिनय होता था। स्त्री का अभिनय करने के लिए कलकत्ते से लडको को बुलाना पडता था। जिस भाई के लिए पुरजन बाबू ने इतना किया था, वही भाई इस तरह तिरछी चाल से उनका विरोध कर रहा है, यह जानकर उनके दुखी और क्रोधित होने की बात ही थी। दारोगा और सर्किल अफसर, दोनो ही कह गए—यह रिपोर्ट आइ० बी० की रिपोर्ट है। यह खबर झूठ नही है, झूठ नही हो सकती।

भाई को बुलाकर पुरजन ने कहा—तुम इतने बड़े कुटिल और शैतान हो! तुम इतने नीच हो सकते हो!

निरजन चौक उठे—क्या कहते हो? मैने क्या किया है?

—क्या कहता हू? क्या तुम इन्कार कर सकते हो कि दूगाई मिश्री की दुकान पर विलायती कपडो की बिक्री के खिलाफ जो लोग धरना दे रहे है, उनके पीछे तुम्हारा हाथ नही है?

—इन्कार क्यो करूगा? मेरा हाथ तो है ही।

—क्यो है?

—क्यो है? यह भी भला कोई सवाल हो सकता है?

—क्यो ? क्यो नही हो सकता ?

—ना, नही हो सकता । कारण यह है कि हम लोग जमीदार वश के लडके है, ज़मीदार है—अग्रेजी सरकार के साथ हमारी चोटी बधी हुई है । ज़मीदारी कानून के अनुसार हम अग्रेजी सरकार की सहायता करने को बाध्य है । तीसरी बात यह कि मैं जितने दिन घर का मालिक और यूनियन बोर्ड का प्रेसिडेट हू, उतने दिन इस घर का कोई आदमी गवर्नमेट के विरोधियो के खाते मे नाम लिखावे, यह नही हो सकेगा ।

निरजन ने विस्मित होकर कहा—तुम खुद जो स्वदेशी-स्वदेशी किया करते हो । स्वदेशी कपडे पहनते हो ? स्वदेशी वस्तुओ का व्यवहार करते हो ?

रोककर पुरजन ने कहा था—वह बात और है । उसके साथ आदोलन का कोई सपर्क नही है ।

बात के बीच मे निरजन ने कुछ कहना चाहा था, लेकिन पुरजन ने हाथ हिलाकर कहा था—ठहरो, ठहरो । सुनो, मैं जो कहता हू वह सुनो । समझते तो खाक हो । नटगिरी और अड्डा देकर दिन काटते हो । गवर्नमेट के खाते मे पिताजी के जमाने से हमारा नाम है । पिताजी को खिताब देने की बात थी । लेकिन वे तो अचानक मर गए । सर्किल अफसर मुझसे कह गए है—

—अच्छा ! तभी शायद इतनी ममता है !

पक्के सीरियो-कॉमिक ऐक्टर की ऐक्टिग के स्वर मे इस बार निरजन ने इस 'अच्छा' शब्द का ऐसा उच्चारण किया था कि उसीसे चौधरियो के घर के जीवन-नाट्य के एक अक की समाप्ति होकर यवनिकापात की तरह एक अध्याय की समाप्ति हो गई थी ।

अर्थात् इसीसे चौधरियो के घर का अतिम सपन्न और धनी घर भी दो हिस्सो मे बट गया ।

यह तो हुआ, लेकिन इसका नतीजा निरजन चौधरी के लिए अच्छा नही हुआ । वह एकदम अकेला पड गया । निरजन की स्त्री के बडे भाई पुरजन की स्त्री के चचेर भाई थे और पुरजन की स्त्री के मौसा उस जमाने के एक नामी-गरामी आदमी थे । एम० ए० पास थे । अध्यापन छोडकर कोयले के रोज़गार से खासे धनी हो गए थे । राय बहादुरी का

खिताब था। लाट साहब भी उनकी इज्ज़त करते थे। इसी कारण स्त्री-पुत्र, सास-ससुर, सहोदर से लेकर सहोदर के इन खिताबधारी मौसिया श्वसुर तक ने उसे अनुभव कराना चाहा था कि उसने गलती की है। लेकिन फिर भी निरजन ने अपनी गलती नही मानी। स्त्री-पुत्र आदि से असहयोग करके भी वह अपनी जिद पर अडा रहा था। उसने खेती-बारी मे मन लगाया था, खूब सजा-बनाकर थियेटर को जमाया था। इससे बेकार लडको के दल के उसके चेलो की सख्या बढ गई थी। सिर्फ चेलो की सख्या ही नही बढी, उस ज़माने के कई स्वदेशी नाटको का अभिनय करके उसने असाधारण लोकप्रियता भी अर्जित कर ली थी। उस लोकप्रियता ने पुरजन को चिंतित बनाया था। उन्होने अफवाह सुनी थी कि सन् १६२४-२५ के यूनियन बोर्ड के चुनाव मे निरजन वोट-युद्ध मे उनका मुकाबला करेगा। उन्होने थियेटर को बद करने के लिए रास्ता ढूढ निकाला। देवोत्तर सपत्ति से थियेटर का खर्च न दिया जाएगा। उन्होने आमोद-प्रमोद और कीर्तन-यात्रा मे थोडा खर्च करके बाकी रुपयो से एक प्राइमरी गर्ल्स स्कूल खोल दिया। पुरजन चौधरी के उन्ही मौसाजी ने गवर्नमेट से 'एड' दिला दी। जिला मजिस्ट्रेट को बुलाकर धूम-धाम से सभा-उत्सव कराया। तीन अध्यापिकाए आई। दो बालिका विद्यालय के लिए और एक वयस्क महिलाओ को कटाई-सिलाई सिखाने के लिए। निरजन चुपचाप बैठा नही रहा। विचित्र ढग से उसने अपना रास्ता आप ही ढूढ लिया। पानी जैसे ढाल की ओर तिरछा-टेढा होकर अपने-आप ही बह जाता है, ठीक उसी तरह राह चलने के वेग से उसका मार्ग अपने-आप ही बन गया। भाई से अलग होकर उसने खेतीबारी मे मन लगाया और थियेटर मे रुचि होने के कारण उसने उसे मात्र थियेटर ही न रखकर उसके साथ एक पुस्तकालय और एक फुटबाल क्लब जोडकर उसे पूरी तौर से क्लब का रूप दे दिया। उसके साथ वह महीने के अत मे, हर पूर्णिमा को पूर्णिमा-मिलन के नाम से एक चर्चा-गोष्ठी आयोजित करता था। उस जमाने मे चर्चा के दो विषय थे। पहला विषय था स्वाधीनता, यानी पराधीनता से मुक्ति; और दूसरा, सामाजिक शासन से मुक्ति। अपने स्त्री-पुत्रो के विरोध की उपेक्षा करके ही निरजन ने राह

पकडी थी और उसपर चला था। घर मे मौजूद सारा धान बेचकर, उधार-पैचा करके भी उसे होश नही हुआ। उसपर एक जिद सवार हो गई थी। उस जिद की झोक मे वह सब लोगो से परित्यक्त और सकरे एक देहाती नाले अथवा झील के छिछले बहाव मे अपनी जीवन-नौका छोडकर, उसे कलेजे से ठेलकर ही ले चला था। वह वैतरणी की किस धारा मे जा मिलेगा, इसका कोई ठिकाना न था। सुना जाता है कि वैतरणी की दो धाराओ मे से एक धारा अधकार और असुविधा के लोक मे ले जाती है और दूसरी ले जाती है स्वर्ग मे, न हो, स्वर्ग के बन्दरगाह मे।

सन् १९२४ मे एक मोड और घूमा—सिर्फ निरजन के ही नही, सबके जीवन मे।

सन् १९२४ मे लेजिस्लेटिव कौसिल का दूसरा चुनाव आया। उस समय एसेब्ली नही थी—थी कौसिल। सन् १९२१ के पहले चुनाव मे काग्रेस चुनाव मे नही उतरी थी। उतरी दूसरी बार—सन् १९२४ मे। वर्धमान मे वहा के लोगो को वोट-युद्ध ने पागल नही बनाया। बनाया था वीरभूम के वोट-युद्ध ने। अजय नदी के दक्खिन, बाध से सटा उनका गाव था। नदी के परले पार, उत्तर की तरफ वीरभूम था और वही था चौधरियो की जमीदारी का इलाका। उस बार वीर-भूम के चुनाव मे एक रायबहादुर और एक राजाबहादुर खडे हुए थे। राजाबहादुर के मैनेजर और तमाम तरह के काम करनेवाले उनके फुफेरे भाई थे एक जमीदार—अवनीश राय। काग्रेस को कोई प्रतिनिधि नही मिला। लेकिन अचानक चुनाव की ही कोई एक बात लेकर राजा बहादुर अपने फुफेरे भाई पर नाराज़ हो गए। यह विरोध अचानक दावानल की तरह ऐसा जल उठा कि धू-धू करके जलते-जलते ये राय महाशय ही राज का इलाका छोडकर—चुनाव की सारी ज़िम्मेदारी झाडकर सीधे बी० पी० सी० सी० के दफ्तर मे जा पहुंचे और काग्रेस के सदस्य बनकर, वीरभूम जिले के प्रतिनिधि के रूप मे वोट-युद्ध मे अवतीर्ण रथी बनकर वापस आ गए। युद्ध त्रिकोणात्मक हो गया।

निरंजन के भाई पुरजन के वे प्रसिद्ध ममिया ससुर अपने मित्र राय बहादुर के तरफदार बनकर पुरजन के घर आए। उनको साथ लेकर

वीरभूम के अजय के किनारेवाले इलाके मे घूमे और पुरजन को सारे काम का भार सौप गए। दफ्तर भी खुल गया। वहा दो-तीन बेकारो को तनखाह देकर बैठा दिया गया।

निरजन अपनी साइकिल लेकर अजय के उत्तरी किनारे से सिउडी—वह कई कोस की दूरी पर था—तक जाकर वहा के काग्रेस आफिस से काग्रेस के प्रतिनिधि राय महाशय की चुनाव-व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी लेकर लौट आया। सिर्फ इतना ही नही, अगले दिन वर्धमान के ज़िला काग्रेस आफिस मे जाकर, नकद चदा देकर स्वय काग्रेस का सदस्य बना और साथ ही क्लब के तमाम अनुगत सदस्यो के नाम रसीद कटवाकर देवग्राम काग्रेस कमेटी कायम करके, बाज़ार से एक साइनबोर्ड लिखवाकर रात दस बजे के लगभग घर लौटा।

भाई तो विरोधी थे ही। इस विरोध से ही इतना काड हुआ। निरजन के बाल-बच्चे भी उस समय बहुत छोटे न थे। इस बात मे वे भी विरोधी हो गए थे। लेकिन निरजन ने किसीकी नही सुनी। इतना ही नही कि सुना ही नही, उन बातो पर कान भी नही दिया, ध्यान भी नही दिया।

किसी युग का जो भाव-जीवन होता है, वही मनुष्य के जीवन-स्रोत की शक्ति की सृष्टि है। तीर और तरग के सघर्ष से उसका उद्भव होता है। जहा भी कुछ विशेष घटित होता है, वही गगा के घाट की तरह घाट बन जाता है।

इस घटना मे बडी घटना हुई—अनेक के जीवन-स्रोत मे किसी एक विशेष स्रोत की धारा का मिल जाना। नदी के दोनो किनारो का जल, कगार तोडकर फिर नदी मे ही आ गिरता है। लेकिन जहा उस किनारे का पानी एक दूसरे स्रोत की सृष्टि करता है और वह धारा आकर नदी मे मिलती है, वही सगम तीर्थ बन जाता है। युक्त वेणी। और उस स्रोत को छोड़कर कोई स्रोत जब सागर के सधान मे दौड जाता है तो वह होता है मुक्त वेणी।

जो धारा मरु-पथ मे खो जाती है, वह धारा अभिशप्त है।

जो धारा सागर तक जाती है, वह धारा···

लेकिन जाने दो।

उसी दिन की बात कहू । उस दिन निरजन जनता के जीवन-स्रोत मे, अनेक जीवनो की जल-धारा लेकर आ मिला था । लोग अचरज से निरजन की ओर देखते रह गए थे ।

सन् १९२४ मे वीरभूम मे काग्रेस की जीत हुई थी ।

राय बहादुर और राजा बहादुर, दोनो को ही हराकर राय महाशय विजयी हुए थे । साथ ही साथ निरजन की भी शोहरत हो गई । राय महाशय ने उससे प्रीति की थी । राय महाशय पर देशबधु की कृपा थी। देशबधु चित्तरजन के जीवन-पर्यंत अवनीश राय उनके दाहिने हाथ की तरह दिन-रात उनके पास ही रहते थे। स्वर्गीय जितेन बद्योपाध्याय, स्वर्गीय सत्येन मित्र आदि अवनीश राय के साथ उनके घर जाया करते थे। वीरभूम मे सभा-समिति करते फिरते थे । निरजन उन लोगो के साथ जाता था और उसके बहुत आग्रह करने पर वे लोग दो-चार बार देवग्राम भी गए थे ।

निरंजन क्रमश. कलकत्ते मे परिचित हो गया था। सुभाषचद्र, किरण-शकर, यतीद्र मोहन, सेनगुप्त आदि के साथ भी उसका परिचय हो गया था। देशबधु के स्वर्गवास के बाद यतीद्र मोहन, सेनगुप्त के दल के साथ रहते थे। सन् १९३० मे निरजन चौधरी ने कानून भी तोडा था, लेकिन जेल नही गए। लेकिन बाड लिखकर या दस्तखत करके छुटकारा पाकर वे घर मे नही घुसे थे। निरजन चौधरी थे पक्के ज-जो-म अर्थात् ज़मीदार, जोतदार और महाजन। टेनेसी ऐक्ट से लेकर इडियन पिनल कोड तक उन्होने बचपन से घर की गाय के दूध, घर के पिछवाडे के कृष्णसागर के जल और मुकर्ररी-मौरूसी जायदाद की ज़मीन के गोविंदभोग चावल के साथ और खेत के गुड तथा पोखरे की मछली के सहित हजम कर रक्खा था। उसी कानूनी जानकारी के बल से बाकायदा मुकदमा लडकर और भारत सरकार को हराकर, छुटकारा पाने पर घर लौटे थे। शायद इतनी बाते कहने की ज़रूरत न होती, लेकिन इस बात अथवा इन अतीत घटनाओ के साथ अशुमान के जीवन का बड़ा घनिष्ठ सबंध है—इतना घनिष्ठ,

कि अगर ये घटनाए न घटती तो शायद अशुमान इस ससार मे आता ही नही और उसकी मति-गति-प्रकृति ठीक ऐसी ही न होती ।

सन् १९३० मे देवग्राम मे १४४ धारा लगाकर सभा-समिति-जुलूस पर पाबदी लगा दी गई थी । लेकिन सरकार को यह खयाल न था कि देवग्राम गाव, सरकारी खतियान के मुताबिक एक मौजा नही है, सदर रास्ते के उत्तर की ओर की थोडी बस्ती और थाना ही सरकारी खतियान के मुताबिक देवग्राम है । सदर रास्ते से दक्खिन की ओर का सारा गाव एक दूसरा मौज़ा है । उसका नाम है चक दक्षिण पाडा, और वही असली बस्ती है ।

निरजन चौधरी सदर रास्ते से, थाने के सामने होकर, जुलूस ले गए । थाने के दारोगा ने निरजन चौधरी और उनके साथ के चार और लोगो को गिरफ्तार करके जुलूस भग कर दिया । १४४ धारा तोडने के लिए उनपर मुकदमा चला । चौधरी का जेल जाना ही निश्चित था; लेकिन कानून का वह छिद्र, किसी दिन ताक पर छोड रक्खी किसी दुर्लभ वस्तु की तरह, उन्हे दीख गया । चौधरी ने उसकी उपेक्षा नही की । वे जमानत पर छूटे । उन्होने वकील किया और प्रमाणित कर दिया कि वे जुलूस ले गए है, उन्होने नारे लगाए है, सब कुछ किया है कानूनी तौर से । कारण यह कि १४४ धारा देवग्राम मे जारी की गई है । वे जिस रास्ते से जुलूस ले गए है, उस रास्ते मे देवग्राम की एक इच ज़मीन या सीमा नही है । पुलिस ने उनको और उनके साथियो को गिरफ्तार करके गैर-कानूनी और मदहोश साम्राज्यवादी अत्याचार का चरम दृष्टात स्थापित किया है । अदालत ने उनको और उनके सहकारियो को सम्मान के साथ रिहा कर दिया । उसने दो-चार मज़ेदार टिप्पणिया भी की थी । लेकिन छोडो उस बात को । मामला वही खत्म नही हुआ । चौधरी को मुकदमे से छुटकारा तो मिला, लेकिन बालिका विद्यालय की अध्यापिका कुमारी शोभा चक्रवर्ती की नौकरी चली गई ।

लगभग छह महीने पहले वह लड़की, सरोज नलिनी मेमोरियल राष्ट्रीय विद्यालय मे पढकर और वही से पास होकर देवग्राम मे नौकरी करने आई थी । उम्र पचीस-छब्बीस की भी नही थी । छोटी उम्र की

चपलता से अथवा तारुण्य-धर्म के दु.साहस के चलते उसने चुपके-चुपके काग्रेस से सबध रखकर उसकी सहायता की थी।

लेकिन छिपाने की तमाम कोशिश के बावजूद बात किसीसे छिपी न थी। कारण यह था कि शोभा चक्रवर्ती नाटक-अभिनय की मुग्ध भक्त थी—उसकी उच्छ्वसित प्रशसा करती थी। और निरजन चौधरी के लिखे एक नाटक की, उस शोभा चक्रवर्ती ने नकल कर दी थी। इसके लिए किसीने शोभा चक्रवर्ती की निंदा नही की अथवा उसपर अश्रद्धा नही की; लेकिन पुलिस के बडे साहब और डिस्ट्रिक्ट इस्पेक्टर आफ स्कूल्स के पास एक गुमनाम आवेदन पहुचा था कि शोभा चक्रवर्ती सिर्फ छिपकर काग्रेस की ही मदद नही करती, निरजन चौधरी के साथ उसका जो योगायोग और मिलना-जुलना है, वह अत्यन्त आपत्तिजनक है।

थोडी छानबीन हुई और शोभा चक्रवर्ती की नौकरी जाती रही; लेकिन शोभा चक्रवर्वी देवग्राम से नही गई। स्कूल की अध्यापिकाओ के डेरे से निकलकर सीधी निरजन चौधरी के घर के जनानखाने मे जा पहुची। निरंजन चौधरी ने माथे पर मौर पहनकर शोभा चक्रवर्ती से विवाह कर लिया।

निरजन चौधरी के पहले घर की स्त्री और उसके लडके-लडकियो ने घर मे प्रबल प्रताप से दखल जमा रखा था। दरखास्त उन्ही लोगो की ओर से दी गई थी। बडा लडका तब बाईस-तेईस साल का था। बी० ए० पास करके कानून पढ रहा था। लडकी की शादी हो चुकी थी। छोटा लड़का मैट्रिक मे पढ़ता था। इस शादी मे उन लोगो ने बडी बाधा डाली थी, लेकिन किस्मत की बात—वह किस्मत चाहे जिसकी रही हो, ऐसी थी कि उसे रोका नही जा सका। निरजन चौधरी ने जिला कांग्रेस आफिस के मकान मे चदोवा तानकर और जिला मैरेज रजिस्ट्रार के रजिस्टर मे दस्तखत करके शोभा से विवाह किया। कई बरस सदर मे किराये का मकान लेकर रहे भी। उसी मकान मे, उसी साल के अन्दर, अशुमान का जन्म हुआ था। अंशुमान की मा, अशु को गोद मे लेकर और नाममात्र का घूघट निकालकर चौधरियो के घर के

छोटे हिस्से मे एक और छोटे हिस्से का निर्माण करके जा बसी थी ।

निरजन चौधरी की बैठक के पच्छिम, सदर रास्ते के पच्छिम की ओर था उनका जनानखाना—इस बार उन्होने बैठकखाने से पूरब, कृष्ण, सागर के किनारे, एक नया दुमंज़िला मकान बना लिया था । वही मकान था छोटे हिस्से का भी छोटा हिस्सा ।

अन्धकार और प्रकाश, प्रकाश और अन्धकार की तरह ही शायद धोखा और नकल तथा सत्य और असल की खीच-तान से इतिहास तैयार होता है । सृष्टि की विचित्र भगी से आज अशुमान केवल धोखा और नकल का हिस्सा ही देख रहा था । उसे लग रहा था, सब कुछ धोखा है, धोखा है, धोखा है । नही, नही, इस तरह देखने से काम न चलेगा । नही । भगवान्, तुम क्षमा करो ।

निरंजन चौधरी के बडे लडके का नाम है रमारजन । छोटे का राधा-रजन । निरजन ने अपने छोटे लडके का नाम रखना चाहा था सुरंजन । उस समय साल-भर शोभा चक्रवर्ती के साथ घर बसाकर उनके कानो मे रमा-राधा, कृष्ण-काली आदि नाम जाने कैसा-कैसा लगने लगा था और रजन शब्द के साथ 'सु' जोडकर उसे आधुनिक बना लेने लायक उनका मन और रुचि भी हो गई थी । लेकिन शोभा ने अपने लडके का नाम सुरजन नही रखने दिया । उसने नही चाहा कि उसके लडके के साथ बडी मालकिन के लड़को के नाम या प्रकृति या रुचि अथवा और भी किसी बात की ज़रा-सी भी समता हो । उसने खुद ही पसद करके नाम रखा था अशुमान ।

शोभा चौधरी ने घर ही पर पढकर एक के बाद एक आइ० ए० और फिर बी० ए० पास किया था और गर्ल्स स्कूल की सेक्रेटरी बन गई थी, चैरिटेबल डिस्पेंसरी की मेंबर हो गई थी । उसने अशुमान को अपनी इच्छा के अनुसार गढा था । उसे अपने आदर्श के अनुसार आदमी बनाना चाहा था । उसमे ज़रा-सा फाक भी नही था, फाकी भी नहीं थी ।

× × ×

सब याद आता है और वह किसी तरह उसे तिरछी नजर से नही देख पाता। सन् १९४७ का साल—तब उसकी उम्र सोलह की थी। तब तक वह निष्पाप था। हा, उसे अनायास निष्पाप कहा जा सकता है। स्कूल मे पढने-लिखने मे अच्छा था। कविता लिखता था। अच्छे स्वर मे पढ़ता था। जिले की आवृत्ति-प्रतियोगिता मे काजी नजरुल इस्लाम की 'विद्रोही' शीर्षक कविता पढकर उसने मेडल पाया था। निबध-प्रतियोगिता मे भी द्वितीय आया था। इसके अलावा वह तकली पर महीन सूत भी कातता था।

उसके पिता मुकदमा लडकर जेल जाने से भले ही बच गए हो, वे सूत कातते थे, खद्दर पहनते थे, जातिभेद और अस्पृश्यता को न मानते थे, भाषण देते थे, सभी लोगो—खास करके साफ-सुथरे लोगो के यहा, भले ही वे किसी भी जाति के हो, जल पीते थे। जमीदारी, जोतदारी और महाजनी के काम मे बारीक कानूनी ढग से चलते थे। ठगकर किसी से कुछ लेते न थे और जो उनका उचित पावना था, उसे छोडते भी न थे। गाधी जी के उदाहरण से मास-मछली न खाते थे। पूजा-उपासना करते थे। अपने पिता का अनुकरण करके वह भी सूत कातता था, खद्दर पहनता था, सबके घर, सबके हाथ का पानी पीता था। मास-मछली वह भी न खाता था।

उसकी मा गाधीवाद की उपेक्षा न करती थी, लेकिन उनके गाधीवाद मे थोड़ी उग्रता थी। पूजा-पाठ उन्हे पसंद नही था। घर के देवोत्तर का जो कुछ पूजा-पार्वण था, वह छोटे घर के बडे हिस्से मे मनाया जाता था—छोटा हिस्सा उसके साथ कोई ताल्लुक न रखता था। सन् १९४४ से '४६ तक शोभा चौधरी ज्यादातर सभा-समितियो के काम मे ही घूमती-फिरती रही थी। उससे पहले वे शांतिनिकेतन गई थी, उन्होने रवीद्रनाथ को देखा था, उन्हे प्रणाम किया था। अशुमान की मां ने सोने का एक गहना छोड़कर कभी दूसरा गहना नही पहना। वह था सोने से मढ़ा लोहे का शादीवाला बाला। इसके अलावा दाहिने हाथ मे सादे शंख की चूड़ी पहनती थी; बायें हाथ मे भी वही। लेकिन बाहर जाते समय उसे उतारकर घड़ी बाध लेती थी। माग का सिदूर अच्छी तरह दीख न पड़ता था,

लेकिन ललाट पर सिंदूर अथवा कुमकुम का निर्दोष सुन्दर टीका रहता था। अशुमान अक्सर उनके साथ ही साथ रहता था।

मा शोभा चौधरी की आकाक्षा थी कि लडका मैट्रिक परीक्षा मे टॉप करे। लेकिन वह नही हुआ—फर्स्ट डिवीज़न मे तीन लेटर लेकर पास हुआ। सस्कृत और बगला के अक। अग्रेज़ी मे कम नबर आए थे—नहीं तो डिस्ट्रिक्ट स्कालरशिप उसे ज़रूर मिलता। ज़िले मे वह सेकेंड आया था।

सन् १९४७ मे मैट्रिक परीक्षा पास करके वह आगे पढने के लिए कलकत्ता आया। कलकत्ते मे उस समय भी सुदीर्घ खाडव-दाह की तरह हिन्दू-मुसलिम दगा चल रहा था। इस दगे से वन मे आग लगने की जैसी समता थी, वैसी और किसीके साथ न थी। कुछ देर धू-धू करके जलती थी, कुछ देर जलती रहती थी, फिर खत्म होती, वहा की आग बुझ जाती, लेकिन देखते ही देखते किसी और जगह जल उठती। यहां से आग के जो टुकडे अथवा स्फुलिंग उडे, उन्होने जाकर एक अथवा दो-तीन जगहो मे घास पर गिरकर आग जला दी। जलती-जलती वह आज भी जली चली जा रही है। सिर्फ इतना ही नही। सन् १९४० से १९४६ तक विराट् विश्वयुद्ध होकर खत्म हो गया। देश मे स्वाधीनता आंदोलन का गाधीवादी आदोलन खत्म हुआ। सुभाषचन्द्र कलकत्ता से बर्लिन—वहां से सिंगापुर टोकियो होते हुए कोहिमा आए। नेताजी बने। बगाल मे तूफान आया, बाढ आई, अकाल पडा। काले बाज़ार का पर्दा उठा। देश मे कम्युनिस्ट आदोलन बढा। बहुत कुछ हुआ। आदर्शवाद चूर-चूर हो गया।

चिंतित निरजन और शोभा, दोनो ने राय-मशविरा करके लडके को शोभा की एक बहन के घर मे रख दिया। शोभा के बहनोई पुलिस कोर्ट के वकील थे। अच्छे वकील। घर भरा-पूरा था। सब लडके नौकरी-चाकरी से लगे थे। देश-विदेश आते-जाते थे। घर पर रहनेवाले थे पति-पत्नी यानी शोभा के बहन-बहनोई। रहने की व्यवस्था बहुत सम्मान-जनक थी। हरिचरण बाबू ने हर महीने रुपयो की एक अच्छी खासी राशि लेने से इन्कार नही किया। इसके अलावा आते-जाते लोगो के

जरिये तरी-तरकारी, ताज़ी मछली और महीन चावल का बायन आता ही रहता था। सन् १९४६-४७ का साल। उस समय सारे बगाल मे चावल का अभाव हो गया था। एक शाम गेहू खाना पडता था। सन् १९४२-४३ मे जो लोग कलकत्ता शहर मे आकर 'जरा-सा माड दोगी मा! थोडा जूठा-काठा!' कहकर दरवाज़े-दरवाज़े फिरा करते थे, वे मरकर भी खत्म नही हुए, अपने घर भी नही लौटे, चुप भी नही हुए—बल्कि उनका दल बढा है, हर साल की बरसात मे गावो से नये-नये लोग आए है।

मा शोभा चौधरी जाते समय कह गई थी—मन लगाकर पढना। सावधानी से रहना। मेरा मुह उजला करना। मुझे तुमसे बडी आशाए हैं। अपने बाप-दादो की गोष्ठी के देहाती जमीदारो-जैसा, देवग्राम का देवता न बनना। पुराने समय मे तेरा बाप क्या था, तू इसकी कल्पना भी नही कर सकेगा। इनके सामने ही तो कह रही हू। अपने बडे भाइयो को, बडी मा के लडको को, तो तूने देखा ही है। बडे भाई की तरह अगर तू हल्के ढग का वकील बना तो मैं गले मे रस्सी डाल लूगी।

पिता ने कहा था—शी इज राइट (ये ठीक कहती है) देखो, मैं महात्मा जी का शिष्य हू। समझे? शायद मैं ठीक शिष्य नही हो पाया। फिर भी मन ही मन मैं वही हू। तुम बडे बनो और सावधानी से रहो। दगा-फसाद हो रहा है। इसान की जिन्दगी की कोई कीमत नहीं है। शाम के पहले ही घर आ जाना। जो ज़रूरत हो, मौसा-मौसी से कहना। उन्हे व्यर्थ चिता मे न डालना। एण्ड बी ए गुड बॉय (और अच्छे लड़के बनो) जिससे भविष्य मे मनुष्य बन सको। आइदर ए लीडर ऑर एन आई० ए० एस० (या तो लीडर बनो या आई० ए० एस०)।

हो-हल्ला और दगा-फसाद के बीच वह कलकत्ता एक अजीब कलकत्ता था। कम से कम अशुमान ने वही देखा था। उसने एक अजीब कलकत्ते को देखा था।

साम्प्रदायिक विद्वेष से इसान उस समय पागल जैसा हो गया था। विष-प्रयोग के परिणामस्वरूप मानो एक सपूर्ण जाति विष-जर्जर होकर उन्मत्त हो उठी थी। विषाक्त हिंसा के सामने विचार और विवेक-पगु

और गूगे हो गए थे। लेकिन इसके बीच भी अचानक अजीब-अजीब आदमी आ खडे होते थे। नोआखाली के अत्याचार-पीडित यहां आए हैं। हिन्दुओ के मुहल्लो से भागकर मुसलमान लोग मुसलमानी मुहल्लो मे जाकर दल बढाकर रह रहे है, जो हिन्दू मुसलमानी मुहल्लो मे थे, वे हिन्दू मुहल्लो मे आ इकट्ठे हुए है। बस्ती के लोग एक-एक आश्रय मे ठेलमठेल करके दिन काट रहे हैं। बीभत्स साप्रदायिकता मे जैसे कोई बहुत बडा काम करने का भाव या भगिमा है। नेतागण दिन-रात इसी-मे व्यस्त है। काग्रेस और मुस्लिम लीग के साथ लार्ड वैवेल और फिर लार्ड माउटबेटन बातचीत कर रहे है। अग्रेजो ने कहा है कि वे चले जाएगे—लेकिन भारतवर्ष का भार किसको सौप जाएगे ? सारा भारत-वर्ष दुर्दशा के बीच चरम आत्मघात मे लिप्त होकर भी समझ रहा है कि इसीमे कल्याण और मुक्ति है।

मौसा हरिचरण बाबू उस समय बडे व्यस्त थे। वे पुलिस कोर्ट के वकील है। उस समय दगे के इल्ज़ाम मे पुलिस जिसे पाती, उसे ही पकड लेती थी। जो गुडे पक्के दगाई थे, वे लुके-छिपे पडे थे। उनके अलावा मुहल्ले-मुहल्ले मे जो तरुण, पहले आत्मरक्षा के लिए और फिर बदला लेने की पुकार सुनकर और काछा बाधकर खडे थे, ज्यादातर वे ही लोग पकडे गए है। इसीसे पुलिस कोर्ट और मजिस्ट्रेट कोर्ट के वकीलो का काम बहुत बढ गया है और इन बातो को लेकर आलोचना का भी अत नही है। वह आलोचना ऊचे दर्जे की दार्शनिक आलोचना नही है, बृहत्तर जीवन के न्याय-अन्याय को लेकर नही है। वह आलोचना है राह-बाट मे घटनेवाली घटनाओ को लेकर।

इसी बीच यह तय हुआ कि भारतवर्ष दो टुकडो मे बटकर स्वाधीन होगा। इसके साथ ही साथ मनुष्य का जीवन मानो पूर्णिमा के समुद्र की तरह उछलने लगा और इसीके बीच एक दिन उसने आजाद हिन्द फौज के एक सिपाही को देखा। वाग बाज़ार स्ट्रीट मे पडाल लगाकर सभा हुई थी। वक्ता थे हेमत बसु। अशुमान आजाद हिन्द फौज के उस सैनिक को देखने गया था। काला रग, निर्दोष सरल चेहरा, फौजी पोशाक पर फूल-माला पहने बैठा हुआ था। आज मन मे प्रश्न उठता है, क्या था

उस चेहरे मे ? आज उसका उत्तर भी मिलता है—कुछ नही था। नही, उसके चेहरे पर कुछ भी नही था। जो था, वह तरुण अंशुमान की दृष्टि मे था। उस दृष्टि से वह स्वाधीन भारत को देख पाता था। वह स्वाधीन भारत एक अजीब भारत था। आज जान पडता है, वह उसके अबोध और मूर्ख मन की एक अत्यत हास्यास्पद कल्पना थी। परियो की, पख फैलाकर उडते फिरने की कल्पना जैसी बेवकूफी-भरी और बचकानी कल्पना। वह स्वाधीन भारतवर्ष को देखता था—सत्यवादी मनुष्यो के देश भारतवर्ष को। अहिंसक मनुष्यो के देश भारतवर्ष को। ज्ञानी और तपस्वियो के देश भारतवर्ष को। कम्यूनिस्ट न होने पर भी एक आश्चर्य-जनक साम्यवाले देश भारतवर्ष को। वह एक अति विचित्र और सचमुच अति असभव सोने की पथलौटी जैसा भारतवर्ष था। लेकिन उस दिन वह बिलकुल असभव नही जान पडा था। एक तिल नही, केश-बराबर भी नही। बल्कि आखो के सामने वह भारतवर्ष रूपायित हो रहा था—यह उसने अपनी आखो से देखा था।

वह बेलघाटा मे गाधी जी को देखने गया था। गाधी जी उस समय बिहार से कलकत्ता आए हुए थे और बेलघाटा मे सकटग्रस्त मुसलमानो की रक्षा के लिए वही जाकर ठहरे थे। मुस्लिम लीग सरकार के मुख्य मत्री सुहरावर्दी साहब उस समय अपने को सकटग्रस्त समझ रहे थे। देश के लोग भी सोच रहे थे कि इस इतने बडे निष्ठुर और कुटिल राजनैतिक हत्याकाड के लिए जिम्मेदार इस आदमी को, प्रतिहिंसा-जर्जर देश के लोग किसी तरह छुटकारा न देगे। उधर भारतवर्ष का शासन-भार सौपने का दिन निश्चित हो गया था १५ अगस्त। सुहरावर्दी साहब भी बेलघाटा मे गाधी जी के पास बने रहे।

उस दिन अशुमान ने गाधी जी को देखा था। प्रार्थना-सभा मे सामने की ओर बैठकर वह सारे वक्त उस विचित्र मनुष्य की ओर देखता रहा था।

उसी दिन गाधी जी ने अनशन के अपने सकल्प की घोषणा की थी। यह हिंसा और रक्तपात बद न होगा तो अनशन करके वे प्राण-त्याग करेंगे।

'रघुपति राघव राजा राम' के बाद 'हिंसा से उन्मत्त धरा पर है नित निष्ठुर द्वद्व' यह गीत गाया गया था। उस गीत को सुनकर अशुमान रोया था। अकेला वही नही, और भी बहुत-से लोग रोए थे। बहुतो ने आखे पोछी थी और हृदय का अतरतम भाग मानो किसी अत्यत आश्चर्य-जनक, अत्यत शुद्ध वस्तु से कोने-कोने भर गया था। जीवन और मन उच्छ्‌वसित हो उठा था। मन को कुछ भी असभव नही जान पडा था और जीवनोच्छ्‌वास से शरीर की स्नायु-शिराए, रक्त-स्रोत के दबाव से परिपूर्ण हो उठी थी।

कलकत्ते मे बात की बात मे इसका प्रभाव पडा था। उसी रात को बहू बाज़ार के हिंसा-पथी और अपने दल के सबसे बडे नायक, और उत्तरी कलकत्ता के हिंसा-पथी वैसे ही एक और नायक ने गाधी जी के निवास पर जाकर टॉमी गन, पाइप गन, पिस्तौल, शॉट गन, छुरा, छुरी, तलवार, बर्छी, भाला वगैरह का बोझा गाधी जी के चरणो के पास डाल दिया था और वचन दिया था कि वे स्वय भी हिंसा न करेगे और दूसरो को भी न करने देगे। सारे देश मे इससे एक अद्‌भुत भाव-स्रोत प्रवाहित हो गया था, जिसकी बाढ मे सारी छोटी भावनाए, क्रूर भावनाए, कदर्य भावनाए दब गई थी। एक पकिल विषाक्त जीवाणु से दूषित पानी के ऊपर बहकर इस स्रोत ने सब कुछ को धो-बहा डाला था।

इसके बाद आया था क्लाइमेक्स।

शचीन मित्तिर, स्मृतीश बाडुज्जे और सुशील स्वाधीनता-दिवस से एक दिन पहले, नई हिंसा की आकस्मिक ज्वाला को बुझाने गए और वही छुरे से घायल हुए। घायल होकर वे अस्पताल आए, लेकिन उन्होने देश से कहा—यह उनकी बहुत बडी भूल है। यह हिंसा नही है। इसे भूल जाओ।

गाधी जी ने कहा—शचीन, स्मृतीश और सुशील अहिंसा के साथ एकाकार हो गए।

इसान मरता है। मरकर खत्म हो जाता है। परलोक नही है—जन्मातर भी नही है। फिर भी उस दिन गाधी जी की बात आश्चर्य-जनक रूप से सच मालूम हुई थी।

बहुरगी रोशनी की झलमलाहट है, यह कभी, किसी दिन न बुझेगी। यही है स्वाधीन भारतवर्ष का स्वरूप।

रात के दस बजे अचानक··।

शाम से ही वह स्वाधीनता का उत्सव देखने के लिए बाहर निकला था। उसके पिता-माता ने उसे घर आने को कहा था। इसका कारण था। कारण यह था कि उस दिन देवग्राम मे स्वाधीनता-उत्सव का केंद्र-स्थल था निरजन चौधरी की छोटी-सी गृहस्थी, शोभा चौधरी का घर। सन् १९२४ से निरजन चौधरी ने जिस तिरगे का पल्ला पकडा था, उस दिन वही उसे फहराकर घोषित करेगा कि भारतवर्ष के साथ ही साथ देवग्राम भी स्वाधीन हो गया और देवग्राम के सबसे बड़े कार्य-कर्ता है निरजन चौधरी और उनकी स्त्री शोभा चौधरी।

दो दिन पहले घर का नायब आकर बाजार से सामान खरीद ले गया और अशुमान से कह गया था—बाबू ने आने को कहा है, छोटी मा ने आने को कहा है। बाजार से उसने जो कुछ खरीदा था, उसमे ढेर के ढेर मिट्टी के दिये और रुई की वत्ती थी—इसके अलावा बारूद का सामान था।

उसने और भी सुना था, इस उपलक्ष्य मे विशेष भोग-राग होगा। उस भोग-राग मे इस बार छोटी मा भी शामिल होगी। इस बीच स्वाधीनता उत्सव के उद्योग-आयोजन मे बडी मा ने आकर हाथ बटाया है।

१४ तारीख की शाम से ही सब लोग आकर थाने के अहाते मे जमा होगे। शाम से वहा गाना-बजाना होगा। राष्ट्रीय गीत गाए जाएगे। रात को एक बजे शख बजना शुरू होगा। आतिशबाजी छूटेगी। अगले दिन सवेरे निरजन चौधरी झडोत्तोलन करेगे। सभा का सभापतित्व करेगे। उस दिन शाम को नाटक होगा। किताब होगी 'चित्तौड का उद्धार'। यह नाटक निरजन चौधरी का लिखा नाटक है। इतने दिनों तक राजद्रोह के डर से इसका अभिनय नही हुआ था।

अशुमान इतने पर भी प्रलुब्ध नही हुआ था।

अंशुमान के भीतर का इसान शायद उस दिन जागा था। नही तो

वह जरूर जाता । अथवा···।

आज, सन् १९६७ मे जान पडता है, शायद वह 'भाग्य' था । उस समय वह भाग्य नही मानता था । कल शाम तक, यही क्यो, आज सुबह तक उसने भाग्य को नही माना था । इस क्षण मे जान पडता है, भाग्य है । भाग्य ने ही उसे जाने नही दिया था । कलकत्ते मे रोके रक्खा था ।

१४वी अगस्त, भाग्य···। नही, वह भाग्य न कहेगा । कहेगा, वास्तव । शाम को वह सज-धजकर ही उत्सव-भरे स्वाधीन कलकत्ता को देखने निकला था । मौसी-मौसा ने खुशी-खुशी उसे इसकी इजाजत दी थी । उन्होने कहा था—जरूर जाओ । जाकर देख आओ । रात चाहे जितनी हो जाए, कोई बात नही—अच्छी तरह घूम-फिरकर देखो । सिर्फ इतनी सावधानी रखना कि अचानक अगर हगामा हो यानी सिचुएशन रायट्स हो जाए तो वहा से खिसक आना । समझे ?

खद्दर की धोती पर सिल्क का कुर्ता और काबुली चप्पल पहनकर वह बाहर निकला था । उसके शरीर मे ताकत की कमी न थी । शरीर उसका बलिष्ठ और समर्थ था—उसके साथ लबा वह तभी से था । आजकल की तरह चौडा नही हो पाया था । चौडा कहने का अभिप्राय है कलेजे की चौडाई, हाथो के मसल् और हड्डियो की मोटाई । उस समय वह छरहरा लबा था, लेकिन मज़बूत भी कम नही था । अपनी उम्र से कुछ बडा ही जान पडता था ।

रोशनी से जगमगा रहा था कलकत्ता । सजे-धजे फाटको, मालाओं और रोशनी से वह द्विजेंद्रलाल राय के चद्रगुप्त की 'विवाह की उस कन्या के समान' सजा हुआ था । सब ओर लाउडस्पीकर पर गाने बज रहे थे ।

'धन धान्ये पुष्पे भरा आमादेर एइ बसुधरा ।' कुछ आगे बज रहा है—'अयि भुवन मनमोहिनी ।' कुछ और आगे बजता है—'वदे मातरम् ।' कुछ और बढने पर 'बाग्ला देशेर हृदय हते कखन आपनि एइ अपरूप रूपे बाहिर हले जननी ।' हरिसन रोड पार करके उसने तीन जगहो पर विचित्र रूप से एक ही गीत बजता सुना था—'उठ गो भारत लक्ष्मी उठ आदि जगज्जन पूज्या ।' फायर बिग्रेड, मुहम्मद अली पार्क के परले

पार उस समय बज रहा था—'छाडो गो छाडो सुख-शय्या—करो सज्जा पुण्य कमल कनक धन धान्ये । जननी गो लह् तूले वक्षे । सात्वना-वास देह् तूले चक्षे । कादिछे तव चरणतले त्रिशति कोटि नरनारी गो !' एक अपरूप स्वप्नाच्छन्नता ने उसके मन, चित्त यहा तक कि उसकी वास्तविक सत्ता को भी अभिभूत कर दिया था । जनसमूह के बीच मानो वह उस समय बहता हुआ चला जा रहा था । उस समय मेडिकल कॉलेज की सीमा पार करके, ईडन हॉस्पिटल रोड के सामने बज रहा था—'दु:ख दैन्य सब नाशि करो दूरित भारत लज्जा ।'

एक ही गीत तीन जगह बजने के कारण एक विचित्र स्वप्नाविष्टता की स्थिति उत्पन्न हो गई थी । दूसरो के मन मे उस स्वप्न का स्पर्श हुआ था कि नही, वह नही जानता; लेकिन उसके मन मे हुआ था । अचानक वह स्वप्नाविष्टता हाथ से छूट-गिरे काच के बर्तन की तरह टूट गई । जाने किस कारण से हलचल का एक दबाव चारो ओर फैल गया था, कुछ टूट जाने के धमाके की तरह, उसी दबाव मे वह भी पड गया था । पीछे से कोई आदमी उसके ऊपर आ गिरा । वह चारो खाने चित्त गिर ही जाता, लेकिन मज़बूत और सबल युवक होने के कारण ही गिरते-गिरते भी वह सभलकर खडा ही रहा । लेकिन धक्कम-धक्के मे उसके हाथ की घडी बैंड से खुलकर शायद उसीके पैरो तले जा गिरी अथवा किसी और के हाथ मे चली गई । उसकी स्वप्नाविष्टता जाती रही । वह सावधान हो गया । ज़रा आगे बढकर, ईडन हॉस्पिटल रोड मे जाकर, वह खडा हो गया और देख लिया कि और क्या गया है । और भी गया था—लाल रूबी-जडे सोने के बटन किसीने चेन-सहित खीच लिए थे । लेकिन आश्चर्यजनक रूप से उसका मनीबैग बच गया था । ठीक आश्चर्य-जनक रूप से नही । बटन और घड़ी के बारे मे तो सावधान रहने का कोई उपाय नही था । बैग के बारे मे उपाय था । बैग उसने कुर्ते के नीचे ट्विल की गंजी की भीतरी जेब मे रखा था । इसी कारण वह बच गया था । बैग मे साठ रुपये थे, कुछ कागज़ थे, हाथ के बटन थे और एक छिपे खाने मे, अलग एक सौ रुपये का एक नोट था । उसके पिता-माता ने उसे वक्त-बेवक्त के लिए रखने को कहा था । यह सब नही

गया। वह निश्चित भी हुआ था और अजीब-सी हसी हसकर सावधान भी हो गया था। उसे लगा था कि बेशक, वास्तविक स्वाधीन भारत यही है।

ठीक इसी समय पीछे से उसके कधे पर हाथ रखकर किसीने मीठी महीन आवाज मे कहा था—अच्छा लडका है भाई! इस तरह हाथ छोड दिया—अब अगर मुझे तेरा पता न चलता तो?

चौककर और पीछे फिरकर उसने एक सुदर और मधुर चेहरा देखा था। उम्र मे उससे बडी थी, लेकिन ज्यादा बडी नही, मगर अत्यत सप्रतिभ। उस दिन की उस रोशनी मे वह अत्यत गोरी प्रतीत हुई थी, नही तो अतसी इतनी गोरी थी नही।

अतसी उसका नाम था। नही। अतसी को वह नही पहचानता था। वह अवाक् होकर उसके चेहरे की ओर देखता रहा था। बड़ा अच्छा लगा था। उसका सारा देह-मन आनद और चचलता से डोल उठा था। सब कुछ उसे विचित्र रूप से अच्छा लगा था। उसके बाद ही जीभ काटकर अतसी ने कहा था—नही तो! तुम कौन हो? तुम तो बादल नही हो। बादल कहां गया? मैंने तुम्हे बादल समझ लिया था—अपना भाई बादल। इस भीड मे मेरा हाथ छोडकर वह जाने कहा चला गया!

अशुमान तब किशोर था। यही उसका पहला रोमांस था। कलकत्ता के राजपथ पर, ऐसे आनदोत्सव के बीच, एक युवती के साथ पहली बातचीत। वह जानबूझकर बाते कर रही है। पृथ्वी का सब कुछ मिथ्या बनकर केवल वही परम सत्य बन गया था। वह भी मुहचोर नही था। उसने पूछा था—कहां जाइएगा?

अतसी ने कहा—देखने निकली थी। सोचा था, खूब घूमूगी, लेकिन बादल का साथ छूट गया।

उसने थोडी घबराहट जाहिर की थी। अंशुमान उस दिन नही समझ सका, लेकिन कुछ समय बाद समझ सका था कि उसमे अतसी की तिरछी हंसी छिपी हुई थी। उसके बाद ही अतसी ने कहा—घर लौट

जाऊगी। तुम मुझे घर तक पहुचा दोगे ?

अशुमान ने कहा था—चलिए।

उसका हाथ खीचकर अपने हाथो मे दबाते हुए अतसी ने कहा था—तुम मेरा हाथ पकड लो। दबाकर पकडो। अच्छा !

सचमुच उसने अतसी का हाथ दबाकर पकड लिया था। अतसी का हाथ गर्म था, साथ ही उसे अपूर्व प्रकार का कोमल लगा था।

कई कदम उत्तर की ओर चलकर वह थमकर खडी हो गई थी। उसने पूछा था—तुम्हारा नाम क्या है ?

उसने कहा था—अशुमान चौधरी।

—वाह ! नाम तो खासा है ! अशुमान माने सूर्य। है न ?

—आपने ठीक ही कहा है।

—कहूगी नही ? मैं मूर्ख थोड़े ही हू। अच्छा अशु···?

—कहिए ?

—तुम मुझे घर पहुचा दोगे न ?

—पहुचाने ही तो जा रहा हू।

—तो चलो न, हम दोनो थोडा और घूम-फिर ले। उसके बाद मुझे पहुचाकर तुम चले जाना। तुम भी देख लोगे, मैं भी देख लूगी।

अशुमान खूब उत्साहित हो उठा था। उसने कहा था—ठीक तो है। बडा अच्छा होगा। मैं भी तो राजभवन तक जाना चाहता हू। चलिए !

वे फिर दक्खिन की ओर लौट पड़े थे। अतसी ने खुद ही अपना परिचय दिया था—वह अतसी है। उसने कहा था—तुम ठीक बादल की तरह दीखते हो। बादल तुमसे जरा छोटा है। तुम्हारी उम्र क्या है ?

अशु ने कहा था—सोलह।

अतसी ने कहा था—अरे लड़के ! तू तो बालिग हो गया है। लगभग मेरी ही उम्र का है। मैं सत्रह की हू—तुमसे सिर्फ एक साल बडी। तुम मुझे दीदी कहना। कहकर उसने अपनी तर्जनी उसके मुह के सामने हिला दी थी।

विचित्र है वह स्मृति। आज भी याद करने पर उसके मन मे मानो अचरज की एक झलक दिखाकर गायब हो जाती है।

अतसी उसे राजभवन से लौटाकर बिडन स्ट्रीट के पास के एक मकान मे ले आई थी। —आओ ! कहकर उसका हाथ पकडे, ऊपर के एक कमरे मे जाकर उसने झपटकर उसे अपने सीने से चिपटा लिया था। उसने एक बात कही थी—सोच-समझकर नही कही थी, लेकिन अशुमान उस बात को आज भी सोचता है। उसने कहा था—आओ, आज हम भी स्वाधीन है।

नही, इसके लिए वह अनुताप नही करता। अतसी ने जो कुछ कहा था, उसके लिए वह भी स्वाभाविक है। दु ख यही है कि वह छला गया था; अतसी के ज़रिये उसे ऐसे फदे मे डालकर उस शिवकिंकर गुप्त ने मज़ा लेना चाहा था।

उसके गाव के गुप्त लोगो के घर का लडका शिवकिंकर बी० ए० पास था। सपत्ति उन लोगो के पास भी खासी अच्छी थी। अवस्थापन्न लोग थे। शिवकिंकर की उम्र सत्ताईस-अट्ठाईस थी। कलकत्ते मे दलाली करता था—पाट की दलाली। नाटक का नशा खूब था। अभिनय तो अच्छा नही कर पाता था, फिर भी अमेचर क्लब को लेवर जमीन-आसमान एक करने मे उसके मुकाबले के बहुत लोग नही मिलते। नाटक के बदोबस्त-व्यवस्था मे कमाल रखता था। शराब पीता था। ये बाते गाव के लोग भी जानते थे। उसके गाव मे भी अमेचर क्लब है। शिवकिंकर ही वहा उस्ताद है। गाव के बड़े घर के लडके, उसके सौतेले भाई, उसके चचेरे भाई अभिनय करते है। एक ज़माने मे उसके पिता को भी शौक था। शौक उसकी मा को नही था। वे नाटक-थियेटर के खिलाफ थी। इसी वजह से उसके पिता अब अभिनय नही करते थे। अशुमान की मा ने उसे बड़े यत्नपूर्वक, पागल बना देनेवाले इस शौक से अलग रखा था।

शिवकिंकर को वे ज़रा ज्यादा कड़ी नज़रो से देखती थी। उस ज़माने में शिवकिंकर उनके नाम कम व्यग्य-विद्रूप नही करता था—यानी अंशुमान की मां के नाम पर।

उस दिन शिवकिंकर भी अतसी को लेकर स्वाधीनता-दिवस देखने

गया था । अतसी एक अमेचर थियेटर मे अभिनय करनेवाली अभिनेत्री थी—अतसी मुकर्जी । अतसी कुछ ही दिन पहले उसके गाव के थियेटर मे जाकर अभिनय कर आई है और अशुमान का घर भी देख आई है। शिवकिकर ने अशुमान को रास्ते मे देखा था । उसने अतसी को उसे दिखाकर कहा था—अगर आज के दिन तुम उसे झूठा कर दे सको तो तुम्हे स्वर्ण-मृगी का खिताब दूगा ।

अतसी उस जात की लडकी थी, जिन्हे सोना-रुपयो के लोभ से रोमास का लोभ कम नही, अधिक ही होता है । जो लडकिया सचमुच जीवन मे कई बार प्रेम मे पडती है और बार-बार खुद ही उसे तोड देती है, नया प्रेम करती है और करना पसद करती है, वह उन्हीमे से है । उस दिन १५ अगस्त जैसे समारोह के प्रकाश से प्रकाशित, गीत से सगीतमय और उल्लास से उच्छ्वसित रात मे उसका मन उत्कठित ही था। शिव-किंकर के कहते न कहते उसने इस खेल मे उतरने और मदहोश हो जाने के लिए कमर बाध ली और अशुमान को जरा पास से देखने पर तो उसके मन ने तनिक भी दुविधा नही की, छप्प से छलाग लगा दी थी ।

अशुमान की दोनो आखे अत्यत सुन्दर और बडी-बडी थी । वे आखें कोमल नही, दीप्त और उग्र थी । वे आखें जब हसती तो बिजली की तरह चमक उठती थी । क्रोधित होने पर उनसे डर लगता था। रोने पर जो उन आखो को देखता था, उसका कलेजा फट जाता था । नाक की नोक जरा मोटी थी । ललाट चौडा था और उसके बाये तरफ केशों मे जरा घुमाव था—जैसे माग निकालने की जगह पर निशान बन गया हो ।

इसके अलावा अतसी ने देवग्राम के चौधरियो के घर का खयाल करके कुछ और आकर्षण अनुभव किया था। उस बार क्लब के उत्सव मे निरजन चौधरी और शोभा चौधरी, पति-पत्नी ने ही सभापति और प्रधान अतिथि का आसन ग्रहण किया था। तब देश स्वाधीन होने-होने को हो रहा था । एकसाथ जमीदार, महाजन, जोतदार और काग्रेसी—यह एकदम दुर्लभ बात थी, अत उन लोगो की खातिरदारी का अन्त नही था । पर्दे की आड मे खडी अतसी ने उन लोगो का आदर-सत्कार देखा

था। उसने स्वयं भी थोडे आदर और थोडी ईर्ष्या का मिश्रित भाव अनुभव किया था। इस बात ने भी इस खेल के लिए उसे उद्दीपित किया था।

ये सारी बातें अशुमान से अतसी ने ही कही थी—दूसरे दिन सवेरे। उस रात वह स्तब्ध होकर अतसी के बाहु-बधन मे बध गया था और फिर जाने कब, उसीने उसको अर्थात् अतसी को अपने बाहु-बधन मे बाध लिया था। उसकी वे दोनो बाहे दुर्बल नही थी। देह उसकी कसरती थी। दैहिक भूख के उन्मत्त आवेग की प्रचडता से उसकी पेशिया कठोर हो गई थी। अतसी निर्वाक् होकर, लता की तरह उसपर ढल पड़ी थी।

कैसे सारी रात बीत गई, इसका उसे खयाल ही न रहा। उसे भी नही, अतसी को भी नही। जब नीद खुली, धूप चढ आई थी। पन्द्रहवी अगस्त का सूर्योदय हो गया था। अतसी ने ही चौककर कहा था—गज़ब हो गया। यह तो धूप निकल आई। उठो, उठो, नही तो तुम मुश्किल मे पडोगे। तुम्हारी जान-पहचान के लोग मिल जाएगे।

उसीने उसे घर से बाहर लाकर, घर मे ताला बद करके, बाहर आकर कहा था—यह मेरा रात का आस्ताना है। मैं भले घर की लडकी हू। मेरे मा-बाप है, छोटे-छोटे भाई है। लिखना-पढ़ना भी जानती हूं। नवें दर्जे तक पढी हू। उसके बाद विचित्र हसी-हसकर उसने कहा था—लडाई के वक्त बाप की नौकरी छूट गई। तब मेरे एक बडे भाई थे। वे मुझे होटल मे ले जाते थे। भैया दलाली करते, मैं अपने को बेचती। उसके बाद इस अमेचर थियेटर मे पार्ट करने लगी। भैया की मृत्यु हो गई। अब खुद ही घूमती-फिरती हूं। जरा देर चुप रहकर उसने फिर कहा था—देखो, मैं देह का कारबार करती हू। गरीब घर की उन लड़कियो मे से अधिकाश के भाग्य मे यही है, जिनका विवाह नही होता।

बातें करते हुए ही वे चल रहे थे। चल रहे थे बिडन स्ट्रीट सेट्रल एवेन्यू से कार्नवालिस स्ट्रीट की तरफ। अतसी का घर कार्नवालिस स्ट्रीट से निकली एक सकरी गली मे था। अतसी जिस कमरे मे रात को रही थी, उसे आफिस कहती थी। हंसकर कहती थी—वह मेरा आफिस है।

राह के एक रेस्तरां में दोनो ने चाय पी ली थी। वही उसने शिवकिंकर की बात कही थी। शिवकिंकर गुप्त को पहचानते हो?

चौककर उसने कहा था—शिवकिंकर गुप्त?

—तुम्हारे ही गाव का है।

—तुम उसे कैसे पहचानती हो?

हसकर अतसी ने कहा था—कल उसीने तुम्हारी पहचान करा दी थी। उसने कहा था—अगर उसे भुलावे मे डाल सको तो जानूगा, तुम सचमुच स्वर्ण-मृगी हो। तुमको भुलावे मे डालने के लिए ही मैंने तुम्हारे गले मे हाथ डालकर 'बादल' कहकर तुम्हे पुकारा था। लेकिन अब देखती हू कि तुम नही भूले, मैं ही भुलावे मे पड गई।

चौककर वह अतसी के चेहरे की ओर ताकता रहा था। डर, पछतावा, पाप का खयाल, सबने एकसाथ मिलकर पल-भर मे उसे अधीर बना दिया था।

अतसी ने कहा था—डरने की कोई बात नही है। मैं उसके हाथ तुम्हे पकडवा नही दूगी। फिर बडी मीठी आवाज़ मे कहा था—ऐसा होता तो मै उसकी बात तुम्हे कहती ही नही। तुम्हे मैंने प्यार किया है अशु! विश्वास करो।

अतसी की तरह सहज भाव से सीधी बात करते उसने किसीको सुना ही नही था। नही तो, "जैसे पेट की भूख है, वैसे ही शरीर की भी एक भूख है अशु! पुरुष के लिए इस भूख को मिटा लेना बडा सहज है, लेकिन औरतो के लिए बडा कठिन है। लज्जा उनमे जन्म से होती है—वे मुह खोलकर कुछ कह नही सकती। इसके अलावा उनपर समाज की कडाई का अत नही रहता। चोर-चकार का छुटकारा है, लेकिन औरतों के इस अपराध की माफी नही है। मेरा सब चला गया है। अपना सब कुछ खोकर आज मैं लापरवाह हो गई हूं, इसीसे कह सकती हूं। जो नही कह पाती, वे कैसी आग मे जलती है•••"

अशुमान अपनी बात सोच रहा था। बहुत सारी बातें उसके मन मे एक के बाद एक उठ रही और उससे पूछ रही थी—तुमने यह क्या किया? तुम्हें शर्म नही आई? डर नही लगा? तुमने सोचा है, तुम्हारा

क्या होगा ? मा के सामने तुम कैसे खड़े होओगे, बोलो तो ? पिता के सामने ? अपने सामने ? भगवान के सामने ? बताओ तो, यह कितना बड़ा पाप है ?

सोचते-सोचते दोनो हाथो के बीच अपना मुह छिपाकर एक बार वह चाय की टेबुल पर लुढक गया था। भाग्यवश वह लकडी के पार्टिशन से घिरे एक कैबिन मे बैठा था, यही खैरियत थी । अतसी·· अजीब है अतसी। सीधी और सहज बातो से उसे सांत्वना देकर उसने कहा था—छि:, ऐसा नही करते। तब तो मुझे जहर खा लेना चाहिए। नही ? तुम्ही कहो।

वह इस बात का जवाब नही दे सका था। जवाब वह जानता भी नही था। उस दिन उसको समझा-बुझाकर, अपने आचल से उसकी आखे पोछकर, आदर-दुलार से वह उसे सात्वना दे सकी थी । युक्ति से नही। याद आता है, अतसी ने कहा था—मैं तुम्हारी हू । एक ही दिन मे मै तुम्हारी हो गई हू । तुम रोओगे तो मैं क्या करूगी, बताओ तो ? मैं तो तुम्हारी आखो के पानी मे बह जाऊगी। नही, तुम सिर उठाओ, हसो । देखो, दुनिया की नजरो मे शायद यह पाप हो; लेकिन आज से अगर मैं किसी दूसरे पुरुष के पास न जाऊं और तुम किसी दूसरी औरत को प्यार न करो तो ? तब पाप क्यो होगा, बताओ। मैं तुम्हे ज़बान देती हूं। तुम्हारी देह छूकर कहती हू। भगवान का नाम लेकर कहती हू। आज से मैं तुम्हारे सिवा और किसीकी नही हू, किसीकी नही हूं, किसीकी नही। अब तुम कहो—मेरी देह छूकर कहो।

अशु बोल नही सका था—हस पडा था।

अतसी ने कहा था—वाह वा ! तुम्हारे चेहरे पर हसी देखकर मेरा हृदय भर आया। मैं तो डूब मरने जा रही थी। तुम मेरे नागर हो, मेरे दूल्हे हो, मेरे सर्वस्व हो।

वहा से निकलकर दोनो जब कार्नवालिस स्ट्रीट पर आकर अलग होने लगे तो अतसी ने कहा था—आज ठीक शाम को आना। मैं तुम्हारी राह देखती रहूंगी, समझे ? और अगर तुम न आए तो मैं तुम्हारे डेरे तक आ पहुचूगी।

बातचीत के सिलसिले मे अशु ने उसे अपने घर का पता बता दिया था।

दु ख और पछतावे के बीच ही वह घर पहुचा था और सहज ही मौसी-मौसा से झूठ बोल गया था। उस शिवकिंकर का ही नाम लेकर कहा था कि रास्ते मे शिवकिंकर से भेट हो गई। हमारे गाव के कविराज महाशय का लडका है। रोजगार करता है, बी० ए० पास है। जबर्दस्ती वह मुझे अपने डेरे पर पकड ले गया।

मौसा इसके लिए नाराज नही हुए—मौसी भी नही। सन् १९४७ के १५ अगस्त को जहा पिछली रात कोई दगा नही हुआ, कोई खून नहीं हुआ, कोई बम नही फटा, वहा अगर वह सारी रात घर न लौटकर कलकत्ता की सडको पर घूमता ही रह गया हो तो इसमे कोई बुराई नही है—और सचमुच उन लोगो ने उसके लिए कोई चिन्ता नहीं की थी।

घर मे वह नौ-साढे नौ बजे के लगभग सो गया था और गहरी नीद मे डूब गया था। बीच-बीच मे नीद कुछ पतली हो जाने पर चार बार उसने सपने देखे थे। एक बार मा को देखा था सपने मे। एक बार शिवकिंकर को। दो बार अतसी को। अतिम बार सपने मे अतसी को देखने के बाद उसकी आखो से नीद जाती रही थी, वह तख्तपोश पर उठ बैठा था, फिर सोया नही। बैठा-बैठा अतसी की ही बात सोचता रहा था।

अतसी! अतसी! अतसी!

वह नही जानता कि सारा पछतावा, सारा दु ख, सारी ग्लानि किस तरह किसने एकदम मिटा दी थी, मन मे जो काटे गडकर बेचैनी और पीडा उत्पन्न कर रहे थे, उन्हे उसके अनजाने ही किसने अपने निपुण हाथो से चुन-चुनकर निकाल बाहर किया था। लेकिन उसके मन ने किसी उत्ताप अथवा काटे की नोक का स्पर्श नही अनुभव किया; मन ही मन अतसी के घर की ओर पैर बढाते हुए, पैर मे गड़े किसी काटे की वजह से उसे लगड़ाना नही पड़ा। समय बीतने के साथ ही उसके

हृदय मे एक प्रकार के उल्लास का आवेग इकट्ठा होने लगा था। घडी का कांटा ज्यो-ज्यो आगे की ओर बढ रहा था, त्यो-त्यो ही वह उल्लास पश्चिमी आकाश के बादलो की तरह, परिधि मे फैलता जा रहा था। तीन बजे से ही वह एक बार सोता था फिर उठता था, कुछ देर बैठा रहता था, टाइमपीस घडी की टिक्-टिक् आवाज़ सुनता था, फिर लेट जाता था। उसे जान पडा, जैसे वह बहुत देर तक सोता रह गया हो, इसलिए घबराकर उठ बैठा है, लेकिन घडी देखने पर जान पडा है कि दस मिनट से ज्यादा समय नही हुआ। तब वह उठकर खिडकी के पास आ खडा हुआ है। वह बाहर की ओर देखता जा रहा है और अतसी को लेकर कल्पना का जाल बुनता जा रहा है। अचानक बड़ी घडी मे चार बजने की आवाज़ सुनकर उसका वह जाल फट गया था और उत्साह-सहित उठकर वह सूटकेस खोलकर बैठ गया था। उसने सिल्क का पजाबी कुर्ता निकाला था, नई गजी निकाली थी। नई धुली धोती और रूमाल। उसके सूटकेस मे इत्र की भी एक शीशी थी। उसके घर में उसकी मा के अमल मे यह अमीरी स्वदेशी ढग से चलती थी। वहा खद्दर के कुर्ते से तसर और मूगा सिल्क के कुर्ते का ज्यादा चलन था। निरंजन चौधरी सभा-समिति मे तो खद्दर पहनते थे, लेकिन दूसरी जगह उनकी रुचि तसर मे ज्यादा थी। रूमाल तो सिल्क के सिवा और इस्तेमाल करते ही न थे। सुगध मे भी इत्र के सिवा और कुछ नही। एक शीशी इत्र अशुमान के सूटकेस मे था—वह उसे बाहर निकालकर प्रतीक्षा कर रहा था कि कब शाम हो। उस दिन सध्या ने उसके मन में अतसी का रूप धारण करके झाका था।

उस दिन छ बजे थे उस समय। श्रावण के दिन का प्रकाश प्रायः तब भी झलमल कर रहा था। आसमान के पच्छिमी हिस्से मे बादल थे। वे आसमान मे रग पकडने-पकडने को हो रहे थे। इसी बीच वह कार्नवालिस स्ट्रीट की उस तग गली के नुक्कड पर आ खडा हुआ था। राह मे भीड की सीमा न थी। घर-घर मे झडा फहरा रहा था—घर-घर को लोगो ने अपनी शक्ति के मुताबिक फूल-पत्तो और रोशनी से सजाया था। लोग-बाग भी वैसे ही थे—उल्लास से उच्छ्वसित। अप्रीति नही थी, विद्वेष

नही था, कही लडाई-झगडा नही था। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से बराबर मात्रा मे, बराबर वज़न मे ग्लानि थी, कलुष था, अधकार और अपवित्रता थी। अचानक ही उसकी नज़र उनपर पडी थी। घर के भीतर से ही उसने उसके आने की बात जान ली थी। उसने एक बार झाककर अपनी शक्ल दिखलाई थी, ज़रा हसकर इशारे से इतज़ार करने को कहा था और फिर मुह अदर कर लिया था। लगभग आध घटे के बाद वह सज-सवरकर बाहर निकली थी।

अशुमान के कलेजे की धडकन बढने लगी थी। पहले दिन यह बात नही हुई थी। उस दिन हुई। चलते-चलते जैसे वह हाफने लगा था—गला सूखा जा रहा था। अतसी ने हसकर उससे कहा था—देखो तो, स्वर्ण-मृगी की तरह लग रही हू कि नही। सोने की हरिणी—मनोहारिणी। अत के कई अक्षर वह स्वर मे बोली थी।

अशुमान इस बात का जवाब दे सके, ऐसी उसकी हालत नही थी।

अतसी ने पूछा था—क्या हुआ तुम्हे ?

उसका हाथ अतसी ने अपने हाथ की मुट्ठी मे दबा रखा था और साथ ही साथ उसके चेहरे की ओर देखकर कहा था—बाप रे ! हाथ तो जैसे जला जा रहा है !

जिस मकान मे अतसी का गुप्त कमरा था, पिछले दिन वहा लगभग सन्नाटा था, लेकिन उस दिन घुघरुओ की आवाज़ से, गाने-बजाने के स्वर से टूटती-बिखरती आवाजो की बातचीत से, उस जगह ने एक दूसरी ही शक्ल अख्तियार कर रखी थी। अशुमान ने जरा चौककर, चचल होकर और थोडा शकित होकर अतसी के चेहरे की ओर देखा था। अतसी ने हंसकर कहा था—उन लोगो का आठ पहर, चौबीस घटो का अड्डा जमा है। यहा सारे अड्डे बधे हुए बाबुओ के अड्डे है। देश स्वाधीन हो गया, उन लोगो ने अड्डा जमाया है। इस मकान मे ज्यादा शोर-गुल नही होता। आज जैसा दिन होने की वजह से ऐसा हो रहा है। लेकिन इस घर मे पुलिस को आने की इजाज़त नही है। हर महीने थाने को बंधी हुई रकम दे दी जाती है। वे लोग पेशगी ले जाते है।

ताला खोलकर कमरे मे घुसते ही उसने उसे हृदय से लगा लिया

था। कहा था—सारा दिन किसी तरह बीतने को ही न आता था। मां कहने लगी, तुझे हो क्या गया है ? मैं उनसे क्या कहती, बोलो ? "राधार कि हइलो अतरे व्यथा।" उसे समझता कौन है ?

अशुमान उस समय गूगा हो गया था।

जीवन उस समय केवल जीवन था, वही आदिम जीवन, उससे अधिक और कुछ नही—जिसका सिर्फ ग्रास ही है, और कुछ नही है। उसके हाथ-पाव कापना चाहते थे। बीच-बीच मे काप भी उठते थे। फिर भी पल-पल वह अधीर हो रहा था।

उस दिन अतसी ने आठ बजे ही उसे छुट्टी दे दी थी। उसने कहा था—आज, लेकिन हे मेरे नवीन नटवर, हे मेरे नये प्यार, मेरे मजनू, बादी को छुट्टी का हुक्म दिया जाए। आज छुट्टी देनी होगी। समझे ? शिवकिंकर कब आ जाएगा, इसका कोई ठिकाना नही है। वह अभी तक क्यो नही आया, मैं यही नही समझ पा रही।

छुट्टी देने की अशुमान की इच्छा नही थी। अशुमान के हृदय में प्रतिक्रिया का एक आघात लगा था, वह उसे बीच-बीच मे उसीके सम्मुख सकुचित बना देता था। प्रश्न भी करता था—मैं क्या कर रहा हू ? उत्तर मे प्रतिवाद करने का न कठस्वर था, न भाषा ही थी। लेकिन एक प्रकार की लोलुपता ने उसे उस बाघ की तरह बना दिया था जिसने शिकार पकड रखा हो। फिर भी अतसी की बात मानकर वह नौ बजे के भीतर ही लौट गया था।

उसे याद है, लौटते हुए उसने सिगरेट पीकर अपने को घायल बना लिया था। वह सिगरेट नही पीता, यह सुनकर अतसी ने कहा था—नही, तुम सिगरेट न पीना। वह अच्छी चीज़ नही है। खबरदार, पियोगे तो मैं झगडा करूगी। तुम अतसी के 'उम्र मे छोटे दूल्हे' हो। समझे ?

राह मे निकलकर, उसने सिगरेट पीकर सचमुच युवक बनना चाहा था। सिगरेट पीने पर उसे ऐसी खासी आई थी कि अतसी के यहा उसने जो कुछ खाया था, वह सब कै हो गया था—साथ ही अचानक माथे में जाने किस तरह का दर्द होने लगा था। मौसा का घर उत्तर कलकत्ता में, ग्रे स्ट्रीट की एक गली मे था। बिडन स्ट्रीट से रास्ता थोडी ही दूर

का था, लेकिन यह थोडा-सा रास्ता चलने मे भी उसे बहुत तकलीफ हुई थी। किसी न किसी तरह घर पहुचकर वह चुपचाप अपने कमरे मे जाकर सो गया था। मौसा-मौसी के सामने नही गया था। उसे डर लगा था कि शायद उन्हे सिगरेट की गध लग जाए। उसने नौकर से कह दिया था—देखो, मेरी तबीयत ठीक नही जान पडती। मैं सोने जा रहा हूं। कुछ खाऊंगा नही। देखना, मुझे कोई पुकारे-बुलावे नही। समझे ?

नीद आते देर नही लगी। अतसी के बारे मे तरह-तरह की विचित्र कल्पनाए करते हुए, जाने कब वह सो गया था। उस समय उसके मन का सकल्प स्थिर हो गया था। अतसी उम्र मे उससे बडी है। लाचार होकर, अपने परिवार की जीवन-रक्षा के लिए उसे इस राह मे उतरना पडा है, तो वह उतरे। उसने उसे दूल्हा कहा है। कहा है कि इसके बाद वह इस रास्ते पर पैर न रखेगी। उसे पति के रूप मे ग्रहण करेगी। उसने भी उसे स्त्री के रूप मे ग्रहण किया है। हा, अतसी ही उसकी स्त्री है—भले ही मत्र पढकर उसके साथ विवाह नही हुआ, भले ही सामने शालग्राम की शिला नही रही। उसकी अपेक्षा उन दोनो का यह बधन और भी दृढ, और भी पवित्र है। वह किराये पर एक मकान लेगा। वहा वह अतसी को रखेगा। वह और अतसी। जब तक वह पढेगा, अतसी अज्ञातवास करेगी। उसके बाद वह ‥।

ओ. ! मन ही मन उसने कितने आकाश-कुसुमो की रचना की थी ! एक दिन वह स्वतत्र रूप से अपने पैरो पर खडा होगा। वह प्रसिद्ध व्यक्ति होगा। एक बहुत बडा सरकारी अफसर—आई० ए० एस०। नही, वह एक प्रसिद्ध नेता होगा। पडित जवाहरलाल के बाद का नेता। अचानक उसे नेताजी सुभाषचन्द्र की याद आ गई थी। नेताजी के साथ अचानक उसकी भेट होगी। वही उन्हे पहचान लेगा और कहेगा—नेताजी ! नेताजी कहेगे—चुप रहो। मेरी सहायता करो। नेताजी प्रतिष्ठित होगे—भारतवर्ष डगमगा उठेगा। वह नेताजी का पी० ए० बनेगा। अतसी को साथ लेकर वह नेताजी के सामने नतजानु होकर बैठेगा—

यही उसे नीद आ गई थी।

अचानक उसे पुकारा गया था। पुकारा था उसके देवग्राम के घर के एक गुमाश्ते ने।—छोटे बाबू! छोटे बाबू! छोटे बाबू!

नीद खुल जाने पर वह उठ बैठा था। उसने कहा था—कौन है? क्या है?

उसकी झुझलाहट की सीमा न थी।

गुमाश्ता प्राणकृष्ण चट्टराज ने कहा था—आपको घर चलना होगा छोटे बाबू। पिताजी बहुत बीमार है।

—पिताजी बीमार है?

—हा, बहुत बीमार है। बेहोश हो गए थे। मैं दवा लेने और आपको बुलाने के लिए आया हू।

निरजन चौधरी ने १४ अगस्त को दिन-भर स्वाधीनता-दिवस मनाने का उद्योग-आयोजन किया था। मध्य रात्रि यानी १५ अगस्त को शख-ध्वनि के समय से वे लगातार चीखते रहे थे। चिल्ला-चिल्लाकर गुज़रे ज़माने की घटनाए बतलाते रहे थे। अचानक उसी समय उन्हे पहली बार खयाल आया था कि सन् १९२१ से स्वाधीनता आदोलन का कौन-सा काम और कौन-सी घटना कहा घटी थी, उन स्थानो को चिह्नित करेंगे। छिले बासो पर कागज़ का बोर्ड लगाकर लिख देंगे—सन् १९२४ की बारहवी पौष को इसी घर मे प्रथम काग्रेस कमेटी का उद्‌बोधन हुआ। सभापति थे निरंजन चौधरी। सन् १९२५ मे इसी वृक्ष के नीचे प्रथम जनसभा हुई—प्रसिद्ध नेता स्व० जितेंद्रलाल बद्योपाध्याय ने उसमे भाषण किया था। गाव के अदर कही सभा नही करने दी गई थी। सन् १९३० मे, रथयात्रा के दिन, इसी जगह सभापति निरजन चौधरी १४४ धारा अमान्य करके गिरफ्तार हुए।

सारी रात परिश्रम करके इस ऐतिहासिक घटना-विन्यास को समाप्त करने के बाद, सवेरे काग्रेस-मैदान मे और फिर थाने मे राष्ट्रीय झडा फहराने की बात थी। लेकिन काग्रेस-मैदान मे झंडा फहराने के बाद ही वे थककर कुर्सी पर बैठ गए—उसके बाद बेहोश हो गए। उन्हें धर-पकड़कर बिस्तर पर सुलाया गया। डॉक्टर आया। उसके बाद

बहुतेरी घटनाए घटी ।

पति जो काम करते थे, अशुमान की मा ने उन्हे पूरा किया। सभी लोगो ने यही चाहा था । उन्होने भी इसे अपना कर्तव्य समझा था; लेकिन जब वे थाने मे झडा फहराने आई थी, उसी समय निरजन चौधरी की पहली स्त्री और उनके लडके रमा रजन और राधा रजन उन्हे धर-पकडकर अपने घर ले गए थे ।

वे लोग अशु की मा को पति के बिस्तरे पर बैठकर उनकी सेवा तक नही करने देते । सेवा कर रही है रमा रजन और राधा रजन की पत्निया—सिरहाने, सिर की तरफ बैठी हैं महामाया, यानी रमा रजन की मा । शोभा को केवल कमरे मे जाकर खड़े-खडे देखने-भर देते है। खडे रहने पर कहते है—आप बाहर के काम-काज देखिए ।

अशुमान जैसे किसी प्रचड आघात से अभिभूत हो गया था । अचानक किसी समय घने गहरे अपराह्न मे, पश्चिमी आकाश मे, राशि-राशि घने काले बादलो को फाडकर बिजली चमक जाने की तरह ही एक प्रश्न उसके समस्त अतरमन को चौकाकर जाग उठा था—ऐसा क्यो हुआ ? उसके पाप से ? अतसी…।

उस दिन वह नही समझ सका था । उसे उत्तर नही मिला था। आज उत्तर मिलता है ।

पछतावे की कोई बात नही है । नही, उसका कोई कसूर नही है । शर्म की कोई बात नही है । बीसवी शती के उत्तरार्ध मे—यही क्यो—द्वितीय विश्वयुद्ध से ही ससार के, समाज के, यात्रा दल के, नाटक के सजे-सवरे अड्डे टूट गए है । अतीत काल के पौराणिक-ऐतिहासिक नाटको का अमल हमेशा के लिए खत्म हो गया है । ग्रीन रूम से रग-रोगन धो-पोछकर सब लोग खुले मैदान मे निकल पडे है । पैसा बदलकर नया पैसा हो गया है । मनुष्य के ज्ञान-राज्य मे पारमाणविक विस्फोट हुआ है। परमाणु बम के विस्फोट से सिर्फ नागासाकी-हिरोशिमा के लोग ही नही मरे, वहा के सभी पगोडा और उसके अदर के देवता भी टूट गए हैं । दुनिया मे काला बाज़ार नाम का एक नया विराट् और विशाल बाज़ार, अपने-आप ही, राह-किनारे के हाट की तरह जम गया है । उस

बाज़ार मे जिस किसीने पैसा लगाया है, वही फेरीवाले से महाजन बन गया है। लाख रुपये का दाम गिर गया है—आजकल करोडो की बात ही हर जबान पर रहती है। पिछले महायुद्ध मे जब काले बाजार की नीव पड रही थी, उसका कारबार शुरू हो रहा था, उस समय आदमी हजार बहानो से बिना खाए, अथवा अखाद्य खाकर राह-किनारे मरता रहा है, सडकर फूलता रहा है। चोर बाजार के आस-पास ही, रात के पहले-दूसरे पहर मे औरतो ने काले रुपयो के बदले अपना शरीर बेचा है। बेचा है ज्यादातर पेट के चलते, लेकिन युद्ध विभाग की फौजी कामार्तता मिटाने की चाह भी उससे बहुत कम नही थी। और शरीर की खरीद-बिक्री का नशा भी कोई कम नशा नही है; क्योकि लडाई बद हो जाने के बाद भी यह कारबार फैलता जा रहा है। वह इस नशे की खुमारी मे ही ज्यादा चल रहा है।

और बाते भी है। एक के बाद दूसरी लडाई जीतकर भी साम्राज्यवादियो का गिल्टी का जुलूस (नकली शोभा) समय की हवा के केमिकल ऐक्शन से काला और मलिन हो गया है और फट-चिटकर बिगड भी गया है। पूर्वी यूरोप और चीन मे कम्यूनिस्ट विप्लव हो गया है। इडोनेशिया स्वाधीन हो गया, उस समय वहा भी कम्यूनिज्म की छूत लगी थी। बर्मा और भारत स्वाधीन हो गए है। स्वाधीन होने के लिए भारतवर्ष को भारत और पाकिस्तान, इन दो भागो मे बटना पडा है। पाकिस्तान से हिन्दू और भारत से मुसलमान अपने बाप-दादो का घर छोडकर भाग गए हैं। कुछ तो भागने की राह मे मरे है और बाकी जो कही जा पहुचे है, स्टेशन के किनारे पडे रहे है, कैंप मे रहे है, उन्होने भीख मागी है, लडकी बेची हैं, लडके बेचे हैं। वे मरे है, राजनैतिक नेताओ ने इनको लेकर खेल खेले हैं। भुनाकर रुपये कमाए है। कैरम की गोटियो की तरह बाप इस पॉकेट मे गया, मा उस पॉकेट मे गई—लडके-लडकिया बोर्ड पर पडी गोलियो की तरह राह-बाट मे पडी रही।

रूस और अमेरिका ने अतरिक्ष यान उडाए है। एक के बाद दूसरा रॉकेट उडा है अतरिक्ष मे—धरती के चारो ओर घूमा है, चाद पर जा पहुचा है। एटम बम के बाद हाइड्रोजन बम तैयार हुए हैं। मनुष्य ने

बैलगाडी, घोडागाडी को लाघकर, रेल-मोटर के युग मे आकर दो-दो लडाइया खत्म करने के बाद, अत मे हवाई जहाज पर उडना शुरू किया है। उसकी गति एक सौ मील प्रतिघटा से बढते-बढते आज का जेट प्लेन पाच सौ मील प्रतिघटा की रफ्तार से उडने लगा है। पुराने वक्त मे जहाज पर चढकर समुद्र मे तैरती हुई आई थी यूरोप की विद्या, यूरोप का फैशन, उसके साथ ही बाइबिल का उपदेश और आदर्श। आज हवाई जहाज पर चढकर सुबह-शाम पहुच रही है इग्लैड की डेमोक्रेसी, अमेरिका का अमेरिकनिज्म, सोशलिज्म, कम्यूनिज्म—उसके साथ और भी अनेक इज्म। भारतवर्ष का गाधीवाद अचल हो गया है, इसी देश के एक आदमी ने गांधीजी को गोली मार दी है। गाधीजी गए, रूजवेल्ट गए, विंस्टन चर्चिल गए, जोसेफ स्टालिन भी चले गए। स्टालिन एक बार नही गए, दो-दो बार गए। एक बार क्रेमलिन से लेनिन के समाधि-मदिर मे, लेनिन के काफिन के पास ही उनका काफिन रखा गया था। दूसरी बार लेनिन के समाधि-मदिर से उन्हे क्रेमलिन की दीवार के पास दफनाया गया।

इसमे किसीका अपराध होने की गुजायश कहा है और हो भी तो किसके कानून से होगा? ईश्वर तो मर चुका है।

अशुमान कहता है—जिसके पास आखे हैं, मन है, अनुभूति है, वह निश्चय ही समझ सकता है कि यह सारी पृथ्वी ही एक बहुत बडी कब्र बन गई है, उस कब्र मे ईश्वर की कब्र दफन कर दी गई है। लडाई के मुर्दों के साथ वहा ईश्वर के शव को डालकर उसे मिट्टी से दबा दिया गया है और लिख दिया गया है—अभागे, अज्ञात-परिचय, धिक्कृतों की समाधि।

यह बात अशुमान ही कह सकता है। आज सब लोग ईश्वर की कब्र के ऊपर खडे है—उनमे पुरोहित, पादरी, गुरु से लेकर साधारण लोग तक सभी है, सभी एक तरह की छटपटाहट का अनुभव कर रहे है, लग-भग एक ही तरह की छटपटाहट, लेकिन वे कह नही सकते। कह सकता है अशुमान ही जैसा आदमी।

बहुत-से लोग अशुमान की निन्दा करते है। बहु-वदित न भी हो, फिर भी काफी अभिनन्दन भी उसने पाया है। शिवकिंकर गुप्त कहते

है —हा, हैट्स ऑफ तुम्हारे लिए अंशुमान । भैया, मैं शिवकिकर हूं, मैंने बहुत-से तरुण मस्तक चबाए है, उन्हे चुपचाप हज़म भी कर गया हू, लेकिन तुम्हारे माथे पर मेरे दात ही नही गडे । गडने की कौन कहे, सारी बत्तीसी हिल गई और ज़िन्दगी-भर के लिए डिसपेप्सिया ने पकड लिया । शिवकिकर गुप्त उसके गाव का आदमी है । वह भी इस विचित्र युग का एक विचित्र आदमी है । वह मूर्ख नही है—एम० ए० पास है । वह अक्षम भी नही है—सक्षम, कमानेवाला, कारबारी आदमी है । वह साहित्य रसिक है, नाटच रसिक है । वह चतुर है, राजनीतिज्ञ है । किसी वक्त वह पार्टी सिंपैथाइज़र था, अब कागजी राजनीति करता है । लडाई के ज़माने मे मिलिटरी कांट्रैक्ट लिया था उसने । मेजर-कर्नल लोगो को सलाम करता था, डाली देता था, गार्डन पार्टी देता था, घुघरू पहनकर वहां नटराज नृत्य करता था और मन ही मन फारवर्ड ब्लॉक से सहानुभूति रखता था । स्वाधीनता के बाद उसने कांग्रेसी बनना चाहा था, लेकिन तब कांग्रेस ने उसे स्वीकार नही किया । लाचार उसने एक लेफ्टिस्ट पार्टी मे नाम लिखा लिया था । आजकल कांग्रेसवालो ने अपने दरवाज़े के दोनो पल्ले खोल रखे है । शिवकिकर वहा जमा बैठा है । उसने मडल कांग्रेस ग्राम पचायत से शुरुआत की है । धीरे-धीरे ऊपर आ रहा है ।

शिवकिकर सिर्फ चित्रकला की दुनिया मे दादागिरी नही करता । कला की समझ-बूझ उसे नही है । वह उसका दावा भी नही करता । लेकिन साहित्य मे उसका दावा ज़ोरदार है । एक समय वह भी साहित्य-रचना करता था । अशुमान जीवन मे जब कभी ऐसे सकट मे पडकर उसका लेखा-जोखा लेने बैठता है, उसे शिवकिकर की याद आती है । शिवकिकर के प्रति उसके मन मे जितनी कृतज्ञता है, उतना ही क्रोध और घृणा भी है । शिवकिकर ने उसे शराब पीना सिखाया है । शिवकिकर ने उसे अतसी के पजे मे डाल दिया है । नारी-देह का पहला स्वाद उसने अतसी से ही पाया था । तब उसकी उम्र पन्द्रह साल की थी । अजीब बात है—तारीख भी थी १५ अगस्त, १९४७, और शिवकिकर उसके पिता की नाटक-मंडली का ही एक सदस्य था ।

तीन

उस समय उसकी इच्छा हुई थी कि वह गाधी जी से प्रश्न करेगा। यह क्या उसके पाप का फल है ?

उसके पिता बचे नही। दो दिन के बाद, यानी जिस दिन वह घर पहुचा था, उसी दिन उनकी मृत्यु हो गई। उसके बाद पूरा एक साल। वह एक तरह का अपव्यय था। उसके जीवन से एक साल गिरकर धूल-मिट्टी मे मिल गया था।

बडी मा, बडे भाई, मझले भाई, सब मिलकर (बेशक वे हमेशा मिलकर एक थे) उसके और उसकी मा के विरोध मे उठ खडे हुए थे। वह एक कुत्सित काड था। पहला झगडा उनमे देवोत्तर की सपत्ति और अधिकार को लेकर शुरू हुआ था। पहले तो बडी मा, बडे भाई और मझले भाई ने यह साबित करना चाहा था कि उसकी मा के साथ उसके पिता का विवाह ही नही हुआ था। झगडा शुरू हुआ देवोत्तर का अधिकार लेकर। उसकी मा अब पहली बार पूजा-अर्चा का हिस्सा लेने के लिए मदिर मे गईं। सपत्ति का बटवारा हो रहा था। उसके झमेलो का अत नही था। जायदाद का फर्द, उसकी जाच (यानी कही कोई जायदाद छूट तो नही गई), उसके बाद उसकी कीमत का फैसला। फिर जायदाद को तीन हिस्सो मे बांटना। यही सब चलता रहा था।

अशुमान फिर कॉलेज नही जा सका। उसके मौसाजी ने ही उसकी मां से कहा था—नही, जब बटवारा हो रहा है तो उसे खुद यहा रहना

चाहिए। देखना चाहिए कि जमीन-जायदाद कहा क्या है—कौन-सी चीज़ क्या है, इसे पहचानना चाहिए।

इसी बीच एक दिन शिवकिंकर आया था। अर्थपूर्ण हसी हसकर उसने कहा था—पढाई छोड दोगे? कलकत्ता नही जाओगे? रह सकोगे?

अशुमान टकटकी लगाकर उसकी ओर देखता रहा था। देखकर समझना चाहा था कि वह क्या कह रहा है। शिवकिंकर ने कहा—तुम्हारे एक मित्र से भेट हुई थी। उसे बहुत दुख था। उसने कहा था, शायद मुझे भूल ही जाएगे। बताओ, उसे क्या कहूगा?

अतसी की बात वह भूला नही था। प्राय रोज़ ही उसकी याद आती थी। उसकी बडी मा, उसके बडे भाई याद दिलाते थे।

वे उसकी मा से कहते—उसीके पाप से हुआ है यह सब। सब कुछ हुआ उसीके चलते। देवता को देवता नही कहा, गोसाई नही कहा। उस दिन सवेरे-सवेरे मैं कपडा बदलकर मदिर मे खड़ी थी—माला गूथ रक्खी थी, कहा था, सवेरे मदिर मे आकर भगवान को माला पहनाकर प्रणाम कर जाना। पहले ईश्वर है, तब है देश—स्वाधीनता। लेकिन नही। सुना, देरी हो जाएगी, इसलिए उस नास्तिक, अहिन्दू लडकी ने उसे आने ही नही दिया। दो-तीन मिनट की देर हो जाने से महाभारत न अशुद्ध हो जाता।

जान पडता है, इस मामले मे उसकी मा भी विचलित हो गई थी। श्राद्ध के दिन से वे नियमपूर्वक मदिर मे जाने लगी थी। पहले-पहल निस्तब्ध दोपहरी मे मदिर के बद दरवाज़े के सामने घुटनो के बल आखे मूदकर बैठी रहती थी। श्राद्ध के कई दिन बाद अशुमान ने ही इस बात का पता लगाया था। उसके मन मे भी इसी तरह का एक प्रश्न उमड़-घुमडकर भाफ से ठोस वस्तु बन गया था।

उसका अपराध क्या है?

अतसी का प्रसग उस समय विचित्र रूप से उसके मन मे चक्कर काटने लगा था। दिनोदिन उसका अनुताप जितना ही उत्तप्त होता गया था, उतना ही उसका चित्त अशान्त और अधीर हो उठा था। वह

भी सान्त्वना ढूढता फिर रहा था। एक दिन वह भी अपना सवाल पेश करने ठाकुरबाडी मे आया था—"मेरा अपराध क्या है? क्या उस अतसी के लिए ही यह सब हुआ है?" निर्जन दुपहरी मे वह यही प्रश्न करने आया था। आकर उसने देखा, मन्दिर का दरवाज़ा खोलकर, सामने घुटनो के बल उसकी मा बैठी है।

उनकी कुछ बाते भी उसके कानो मे पडी थी।—मेरे ही पाप से यह सब हुआ?

वह चुपचाप आया था, चुपचाप ही वापस लौट गया। लेकिन उसी दिन से उसकी मा के साथ झगडा शुरू हुआ था—अथवा उन लोगो के साथ भाइयो का। शाम को बडी मा चीखने लगी थी—दोपहर को ठाकुर-घर क्यो खोला था? ठाकुरजी आराम कर रहे थे। भात खाकर, भात खाए कपडे से मन्दिर मे क्यो घुस गई। जो नास्तिक है, जो अविश्वासी है, वह ठाकुर-घर क्यो खोलेगा? उसके अदर क्यो जाएगा?

मा ने युक्ति का सहारा लेकर कहा था—शोर मत करो दीदी! ठाकुरजी कभी सोते नही है अथवा सोकर भी जागे ही रहते है। उनकी निद्रा भी जागरण है—जागरण भी निद्रा है। भात-खाए कपड़े को मैं अशुद्ध नही मानती और मै नास्तिक भी नही हू।

दो-एक बातो के बाद ही बडी मा ने घोषणा कर दी थी कि ठाकुर-बाडी मे उन लोगो का कोई अधिकार नही है। ठाकुरबाडी और देवोत्तर उनकी अपनी सम्पत्ति है—निरजन चौधरी के पहले घर की। हमेशा से वे ही लोग भोग करते आ रहे हैं। नास्तिक शोभा चौधरी को या उसके पेट-जनमे लडके को वे लोग ठाकुरबाडी मे न घुसने देगे।

साथ ही साथ उसकी मा ने ठाकुरबाडी मे हुक्म जारी किया कि ठाकुरजी के प्रसाद मे छोटे हिस्से का आधा (अशुमान के ताऊजी का हिस्सा छोडकर) पहले की तरह तीन हिस्सो मे बटेगा और अशुमान का हिस्सा इस घर मे आएगा।

लेकिन छोडो, ठाकुरदेवता का प्रसग यही रहने दो।

ठाकुरजी को लेकर उस मामले की बात अप्रासगिक है। ठाकुर देवता मे उसका विश्वास अथवा अविश्वास एक जैसा धुधला है। किसीका

रग गहरा न था। वह जब तक गीला रहता, जान पडता कि कोई रंग है। सूखते ही सादा हो जाता। उसका रग भी नही था, आकार-अवयव भी नही था। क्रमश: पढने और बढ़ने के साथ-साथ, अब गीले मे भी कोई रग नही दीखता। शायद बिलकुल ही खत्म हो गया है। दुर्गा-पूजा के उत्सव मे, उल्लास मे, जीवन मे एक पार्वण आता है, लेकिन किसी देवता या ईश्वर का उससे कोई सम्बन्ध नही है—न गन्ध, न स्पर्श, न कोई क्षीण शब्द ही। इसके लिए उसे न तो अफसोस है, न खुशी। बीच-बीच मे, कठोरतम घडियो मे 'भगवान' अथवा 'हे ईश्वर' के रूप मे एक शब्द की जरूरत पडती है—वह हृदय से अपने-आप निकल पड़ता है—बस इतना ही। इससे ज्यादा कुछ नही। ईश्वर नही है। होने पर भी वे अपराध का खयाल नही करते अथवा अपराध के लिए किसीको कोई दंड नही देते। वह इस बात को निश्चित रूप से जान गया है।

उसकी मा का अपराध तो निश्चय ही नही था। उसका भी नहीं था। नही—नही था, नही था। बात उसके अपने ही मन मे उठती है और अपने ही मन से वह 'नही-नही' करके चीख उठता है। अतसी के साथ उसके जीवन का योग चाहे जिस तरह देखा जाए, उससे उसका कुछ बनता-बिगडता नही। अतसी के साथ उसके जीवन का, उसके शरीर का मिलन जिस दिन हुआ था उसी दिन उसके पिता की मृत्यु हुई थी, इसके लिए उसके कलेजे से गहरी सांस आज भी निकल जाती है। आज भी उसका मन उदास हो जाता है—दोनों आखे मानो अपने-आप झुक जाती हैं और जैसे किसी अनचाही घटना के याद आ जाने पर मनुष्य अकारण और अनजाने ही एक तरह की चचलता प्रकाशित करता है, वह वैसी ही चंचलता से चचल हो उठता है। एक लम्बी सास निकल पडती है, वह उसे किसी तरह रोक नही पाता। मन के अंदर युक्ति चाहे जो भी कहे और वह युक्ति चाहे जितनी सच हो, उससे उसका गतिरोध नहीं हो पाता।

शायद यही उसकी आखिरी दुर्बलता हो।

हे भगवान्!

इस क्षण—आज, सन् १९६७ के इस सवेरे, पिता की मृत्यु की याद से अचानक आखो के सामने तैर गई कल शाम की स्मृति। उसने अपनी बाहो पर एक बच्चे की खून से लथपथ देह उठा रखी है। जिस गाडी से ऐक्सीडेंट हुआ था, उससे उसीने बच्चे को बाहर निकाला था। बच्चे का एक हाथ बुरी तरह कुचलकर वीभत्स रूप से झूल रहा था। सारी राह टैक्सी पर बैठा वह उसे हाथों पर लिए हुए ही मेडिकल कॉलेज तक आया था। उसीने उसे एमर्जेंसी वार्ड की मेज पर लिटा दिया था। उसके पास ही उसने घायल और बेहोश सीता को सुला दिया था।

उसने कई बार बच्चे के चेहरे की ओर ताककर देखा था। बच्चे के माथे की बाईं ओर, जहा से केश आरम्भ होते थे, एक भवर पर उसकी नजर पडी थी। ऐसी ही भवर उसके माथे पर भी है।

नही, फिर भी उसे ऐसा नही जान पडा कि यह उसकी सन्तान है।

उसे जान पडना चाहिए था। बेशक जान पडना चाहिए था।

वह भगवान को नही मानता। कम से कम इस बात को लेकर मग्ज़-पच्ची नही करता। विपत्ति से उद्धार करने के लिए उनको नही पुकारता; कोई कामना पूरी करने के लिए नही पुकारता; पूजन करूगा, कहकर भी नही पुकारता। बीच-बीच मे रवीन्द्रनाथ का गीत गाने के लिए, उसी गीत मे पुकारता है, पूजा निवेदित करता है। वह भी बिलकुल अर्थहीन भाव से करता है। लेकिन आज इन थोड़े-से क्षणो मे ही उसने फिर पुकारा। 'हे भगवान्!' और बैठे ही बैठे उसने तकिये पर अपना माथा टेक दिया।

कुछ देर तक वह इसी तरह मुह छिपाए बैठा रहा। वह अपने को सभाल रहा था। अचानक हरी ने आकर कहा—शिवकिंकर बाबू आए है। बाहर बैठे हैं।

शिवकिंकर! शिवकिंकर गुप्त! शिवकिंकर के साथ उसका अजीब सबध है। दरिद्र और प्रतिष्ठाहीन आत्मीय जैसे अनचाहा होकर भी धनी और प्रतिष्ठित आदमी से लगा रहता है, पीछे छोड आए घर की वशावली के साथ बार-बार, ज़बर्दस्ती उसे जोड़े रखता है, शिवकिंकर ने भी उसी तरह उसे जकड रक्खा है।

सीता को वही ले आया था।

उसे फिर अतसी की याद आ गई। अतसी को दुबारा फिर यह शिवकिंकर ही उसके सामने ले आया था और उसके सारे जीवन-स्रोत की गति को उसीने आज की दशा की ओर मोड दिया था।

पिता की मृत्यु के बाद, उस समय उन लोगो के बटवारे का काम चल रहा था। देवोत्तर के अधिकार का झगडा अदालत तक पहुचा था। आखिर अदालत की राय से उन लोगो ने पच मुकर्रर करने की बात स्वीकार कर ली थी। ताऊजी के लडके, बनर्जियो के शिवदास ऋषि, गुप्त घराने के हरिकिंकर कविराज और डॉक्टर को पच बनाया गया था। कर्मचारी कागज तैयार कर रहे थे। जायदाद की सूची, लेन-देन की सूची, देवोत्तर का मामला सुलझाने का तरीका तैयार किया जा रहा था। मौसा हरिचरण बाबू की सलाह के मुताबिक वह कॉलेज न जाकर जमीन-जायदाद का मामला देखता और समझने की कोशिश करता रहा था। उसके पीछे उसकी मा थी। अदालत ने मां को उसका गार्जियन बनाया था। उसके पास थोडी-सी जमीदारी है, इसलिए वह इक्कीस साल की उम्र मे बालिग माना जाएगा। मा बहुत पहले से ही जायदाद का काम-धधा समझती थी। वे कभी पूरी तरह से घर के अंदर रहनेवाली औरत भी नही थी। पति की मृत्यु के बाद तो उन्हे और ज्यादा बाहर आना-जाना पडा था। निरजन चौधरी की मृत्यु के बाद देवग्राम काग्रेस की प्रेसिडेंट वे ही हुई। निरजन चौधरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मेम्बर थे—उस सूने आसन पर भी वे ही गई थी। बिना मुकाबले उन्हे चुन लिया गया था। किसीने खडे होने का साहस नही किया। वे जिला काग्रेस की भी मेम्बर थी। इसके अलावा उस समय चारो ओर काम था, चारो ओर उनकी पुकार थी। वह एक अद्‌भुत समय था—उस समय के दिन और थे, क्षण और थे—इन्सान और थे, उनके मन भी और ही

स्वाधीन भारत मे साम्प्रदायिक तनातनी, निष्ठुर रक्तपात, घोर कुटिल
द्वन्द्व के बीच भारत मानो बोधि-वृक्ष के नीचे बैठा है—
और ध्यानमग्न की तरह। सारी दुनिया इसी देश की ओर
इसी बीच फैनेटिक हिन्दू गोडसे के हाथो गाधीजी की

हत्या हुई। 'हे राम' कहकर उन्होने अन्तिम सास ली। गाधीजी का लौकिक जीवन समाप्त हो गया, लेकिन उनकी अहिंसा, भारत की साधना, मानो अशेष होकर उच्छ्वसित हो उठी। हर ओर उसकी पुकार मच गई। सभा, सभा और सभा। देवग्राम के चारो ओर के गावो से उसकी मा की बुलाहट होती। अपनी मा के दो-तीन भाषण उसे याद हो गए हैं। वे तीनो भाषण उसीने लिखे थे—मा ने उनमे सशोधन कर लिया था। ओः! वह कैसा जगमग ज़माना था!

आज उसे लगता है कि गाधीजी की अहिंसा, गाधीजी के जीवन-दर्शन, उनके राजनैतिक विचारो और मार्गों के लिए वे ही कुछ महीने अथवा एक वर्ष का समय ही शुक्ल पक्ष की पूर्ण तिथि था। उसके बाद ही उनका क्षय होने लगा। आज जाने दो। आज गाधीजी चित्रो में हैं। एकदम असहाय—बिलकुल। क्या कहू? दया के पात्र कहने का जी होता है। लालबहादुर शास्त्री के निधन के बाद भी—वही। सचमुच वे वही है। रहने दो, रहने दो, आज की बात रहने दो। उस दिन से गाधीजी की चिता-भस्म अनगिनत पात्रो में भरकर सारे भारत की नदियों के घाट-घाट पर गाधीघाट तीर्थ बनाया जा रहा है।

बगाल का प्रधान गाधीघाट तीर्थ हुआ है बारकपुर। इसके अलावा हर ज़िले मे, बडे-बडे गावो मे, शहरो मे, जहा भी नदी है, उन सब जगहो मे चिता-भस्म भेजी गई है और विशिष्ट गाधीवादी व्यक्तियो ने उस पात्र को माथे पर रखकर स्थानीय घाट पर उसे विसर्जित करके स्नान किया है और उस घाट को तीर्थ बना दिया है। देश के लोगो को बुलाना नही पडा। बुलाहट दी ही हुई थी। हर दिशा मे क्रमशः उसकी प्रतिध्वनि गूजती रही है। हृदय की पुकार—कार्यकर्ताओ की सयत्न और सचेतन परिकल्पना की पुकार; बुद्धिमान लोगो के सजग मन की पुकार; पोलिटिकल पार्टियो की पुकार—रहने दो, रहने दो। आज मन कडवा हो गया है, लेकिन भूल जो नही पाता। उस दिन गाधीजी के प्रभाव से आच्छन्न मन लिए ही वह शिवकिंकर और अतसी के सामने आ खडा हुआ था। कैसा था वह समय!

मनुष्य मे स्पर्धा है। वह स्पर्धा जीवन-प्रकृति को तोड-चूरकर, हिला-

हुलाकर, बहुत अदल-बदल करके अपने को प्रतिष्ठित भी कर चुकी है। जीव-जन्तुओ और पशुओ से वह बिलकुल अलग है। वह मनुष्य है। यही क्यो, जीव-जगत् मे भी वह स्वतन्त्र विशेषण लेकर, सबसे अलग हटकर खडा है। लेकिन बीच-बीच मे जब इस स्पर्धा को वह अशेष और असभव बना देना चाहता है, तब जितनी लाछना भोग करता है उतना ही जर्जर हो जाता है प्रहारो से। परिणाम यह होता है कि उसका जीवन ही अशाति से असार्थक हो उठता है और जीवन ही उसका प्रतिवाद करता है।

उसे वह बात याद आती है। उसकी मा ने अजय के घाट पर गांधीजी की चिता-भस्म प्रवाहित की थी। अशुमान अपनी मा के पास ही था। उस समय पास ही रहा करता था—बिलकुल पास-पास। शिव-किंकर और अतसी जिस दिन उसके सामने आए और वह उन लोगो के सामने जाकर असीम स्पर्धा के साथ उनके आमने-सामने खडा हुआ था, उस दिन भी एक समारोह के अवसर पर वह अपनी मा के पास ही था। उस गाधीघाट पर ही स्मृति-स्तभ की प्रतिष्ठा का समारोह हो रहा था। एक सुन्दर स्तभ बनवाकर उसमे सगमर्मर का एक पत्थर लगवाया गया था। पत्थर पर लिखा था—"देवग्राम महात्मा गाधीघाट। महात्माजी के आदर्शों के उपासक स्वर्गीय निरजन चौधरी की स्मृति मे समर्पित।"

सभा की अध्यक्षता कर रही थी उसकी मा। सभा मे भाषण देने के लिए प्रसिद्ध गाधीवादी नेता, ज़िला काग्रेस के सभापति आए थे।

वह मा के पास ही था। स्वागत-भाषण उसीने किया था। वह छात्र-जीवन से ही लिखने लगा था।

बेशक बगाल का कौन-सा लडका नही लिखता ? वह भी लिखता था। इसके लिए उसकी मा को अभिमान था—पिता प्रसन्न होते थे। उस दिन का स्वागत-भाषण उसने लिखकर ही पढा था। उसे याद है, उसमे भावावेग कुछ अधिक होने पर भी भाषण अच्छा ही हुआ था। भाषण के अन्त मे तालियो की गडगडाहट से वह जान सका था कि उसका भाषण अच्छा बन पडा था। एक अहकारपूर्ण आत्मतृप्ति के साथ कुर्सी पर बैठकर वह रूमाल से चेहरा पोछ रहा था। अचानक उसने

देखा, सजे हुए शामियाने से बाहर जो लोग खडे हैं, उन्हीकी पहली पक्ति मे, मच के दाहिनी ओर, लगभग बीस हाथ की दूरी पर खडे हैं शिवकिंकर और अतसी। पल-भर मे उसके सारे शरीर मे एक ठडा प्रवाह बह गया था। पुतली की तरह वह आखे गडाए उनकी ओर देखता रह गया था एकटक। हाथ का रूमाल हाथ मे ही पडा रहा। याद है, उसके मन मे आ रहा था कि अगर अतसी इस सभा मे आगे बढकर कहे···। दूसरे ही क्षण उसके मन ने कहा था—कहे क्या, कहेगी ही। उससे यही कहलवाने के लिए उसके भाइयो ने ही इसे बुलवाया है। शिवकिंकर नाम के लिए उसके भाइयो का मित्र है—काम के लिए है एजेंट। अतसी यहा के नाटक मे पार्ट करती है—उस नाटक के प्रबधकर्ता उसके बडे भाई लोग ही है।

लेकिन अतसी के चेहरे पर एक अजीब हसी खिल रही थी। जिस हंसी से मनुष्य का चेहरा प्रसन्न नही दीखता, वह नकली हसी है—झूठी हसी। अतसी अभिनय करती थी। लेकिन उसकी उस दिन की हसी अभिनय की नकली हसी नही थी, यह बात उसका डरा हुआ मन भी समझ सका था।

अतसी उस समय भी मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी और उसके होठो की हसी से, शरत्काल के शुक्ल पक्ष की ज्योत्स्ना के समान प्रसन्नता झरी पड रही थी। फिर भी उसके मन का डर नही गया था। वह गाधीजी को याद करके धीरे-धीरे शक्ति सचित कर रहा था। ठीक है, वह सत्य को ही···।

उसकी जरूरत नही पडी। शिवकिंकर भीड को चीरता-हटाता उसके पास आ खडा हुआ था और मौका देखकर उसके कानो मे फुस-फुसाकर बोला था—वह तुम्हे देखने आई है। डरो नही, किसीको कुछ न मालूम होगा।

बात सच थी। अतसी सचमुच उसे देखने और कहने आई थी—तुम मुझे माफ करो। शायद उस दिन मुझको छूने से ही तुम्हारी इतनी क्षति हुई—तुम्हारे पिता उसी रात जाते रहे।

अशुमान ने कहा था—नही अतसी, तुम ऐसा न सोचो। ऐसा सोचना गलत है। किसीके लिए कुछ नही होता। खास करके मेरे पाप करने से मेरी मां का अनिष्ट कभी नही हो सकता। यह बीसवी शती है। जानती हो, गाधीजी जैसे मनुष्य ने इसी तरह की बात कही थी—किसीने उनका विश्वास नही किया।

हंसकर उसने कहा था—ऐसा हो तो अग्रेज इतना अधर्म करके इतनी बडी जाति न बन जाते।

उस दिन उसके सारे मन को जिस प्रकाश ने, जिस हवा ने व्याप्त कर रखा था, वह राजनैतिक ऋतु का प्रकाश था, हवा थी। इसके सिवा दूसरी उपमा मन मे नही आती।

शाम के बाद शिवकिकर उसको अपने घर बुला ले गया था। शिव-किंकर के घर उसकी मा और विधवा बहन के सिवा और कोई नही था। अतसी इससे पहले भी उसके घर आ चुकी थी। मित्र की बहन के रूप मे वह परिचित थी। शिवकिकर के घर पर ही उनकी बाते हुई थी।

अतसी ने कहा—मेरे तो अफसोस और आक्षेप का अत नही था अंशु!

पल-भर के लिए वह रुक गई थी। उसके बाद बोली थी—कहने का लोभ होता है, फिर भी कहूंगी नही। उम्र मे मैं तुमसे सिर्फ कुछ महीने नही, दो-तीन साल बडी हू। तुम्हे बच्चा-दूल्हा मैंने झूठ नही कहा था। लेकिन अब न कहूगी। नही, तुम बहुत बडे बनोगे। आज तुमने सभा मे कितना सुन्दर भाषण किया। और वे तुम्हारी मा···।

अशुमान चुपचाप बैठा था। उसे ढूढे कोई बात न मिल रही थी। छाती के अन्दर हृत्पिड उछल रहा था, बहुत-सी बातें उठ-पडकर मानो आंधी की तरह कुछ प्रचड और प्रबल सिरजना चाह रही थी।

शिवकिकर उन दोनो के पास ही था और नही भी था—यानी वह लगातार बाहर जाता और भीतर आता था। बीच-बीच मे जरा देर के लिए बैठकर दो-चार बाते कर लेता और फिर किसी काम के बहाने बाहर चला जाता। अतसी अकेली ही बातें करती जा रही थी।

इन कई महीनो मे बहुतेरी घटनाए घट चुकी हैं। उनमे से प्रधान घटना है—उसने रात्रिकालीन अपना किराये का कमरा छोड दिया है। उसने केवल घर ही नही छोडा, उसके साथ उस जीवन के सब ससपर्शों और सम्बन्धो को भी धो-पोछकर मिटा दिया है।

—तुमको लेकर मन मे एक साध जम बैठी थी। तुम्हारे ऊपर यह आपत्ति आई, इससे और ज्यादा आक्षेप हुआ। उसी झोक मे सब कुछ छोड दिया। जानते हो, मैं रोज गगा-स्नान करती थी। इस आदमी को भी भगा दिया था। कह दिया, अब मेरी परछाईं भी न छूना। सिर्फ अभिनय नही छोड सकी। उसे छोड देती तो भाई-बहनो की पढाई बन्द हो जाती। घर के लोग उपवास करते। अमेचर छोडकर पब्लिक थियेटर मे काम मिल गया था। वहा से फिल्मो मे चास मिल गया। एक फिल्म मे सेकेंड हिरोइन का पार्ट मिल गया है। जरा तसल्ली हुई है, लेकिन तुम्हारे लिए मन मे दिन-रात अशान्ति बनी थी। यह आदमी···

उसने शिवकिंकर को दिखाकर कहा था—इस आदमी को मैंने छोड़ दिया, उसने भी दूसरी जगह अड्डा जमाया था, लेकिन मुझे छोडा नही—यानी बराबर थियेटर मे आता, बक-बक किया करता और तुम्हारी बातें कहता था। बुरी नही, अच्छी बातें ही कहता था।

हसकर अतसी ने कहा था—क्या कहता था, जानते हो ? अशु एक दिन लीडर हो जाएगा। बडा अच्छा लडका है। उसका अनिष्ट करना हम लोगो के लिए उचित नही हुआ। तुम्हारे भाषणो की बात कहता था—तुम्हारे साहस की बात कहता था। तुम्हारे यहा जब हिन्दू-मुसलमानो मे दगा हुआ था, तब तुमने मुसलमानो को बचाने में जो साहस दिखलाया था, उसकी तुलना नही हो सकती। जाने और भी कितनी बातें कहता था। सुन-सुनकर इच्छा होती थी कि एक बार तुम्हें देखकर कह आऊगी, मैंने तुम्हारा अनिष्ट किया है, मुझे क्षमा करो। यही, लगभग पन्द्रह दिन हुए, मैं उससे हार गई। निश्चय किया कि उससे ब्याह कर लूगी। बात पक्की हो गई। अचानक कल आकर उसने कहा—अतसी, अशु को देखने देवग्राम चलोगी ? जाने-जाने को कहती हो, चलोगी तो चलो। देवग्राम मे अंशु के पिता के नाम, अजय के तट पर

स्मृति-स्तम्भ की स्थापना होगी। वहा अशु को देख सकोगी। मैंने कहा—चलूगी। चली आई।

बात खत्म करके हसती हुई वह उसके चेहरे की ओर देखती रही थी। अशुमान खुद भी टकटकी लगाकर उसकी ओर देख रहा था। उसके मन मे मानो एक उद्वेग उच्छ्वसित हो रहा था। ऐसा जान पडता था, जैसे कहानी मे, उपन्यास मे, काव्य मे, पुराण मे शायद अतसी के समान स्त्री नही हुई। वह अतुलनीया है, अपरूपा है।

हा, उसके रूप की तुलना भी न होने के कारण, उस दिन उसके मन के भीतर से उसकी अतरात्मा ने कहना चाहा था—नही, नही, नही। मैं अतसी को नही छोड सकूगा। नही छोड़ सकूगा।

उसके ठीक आस-पास एक और आवेग, आधी आने पर नदी के हृदय की तरह, वन के माथे की तरह, आन्दोलन हो रहा था। वह आवेग सन् १९४८-४९ के अशुमान के आदर्शवाद का आवेग था। उस दिन वह अपने को इस तरह अलग-अलग हिस्सो मे बाटकर नही देख सका था। उस दिन दोनो मिलकर एक हो गए थे। उस दिन सोलह सत्रह साल के अशुमान के तरुण चित्त को केवल अतसी के आकर्षण ने ही आकृष्ट नही किया था—उस आकर्षण को और भी प्रबल बना दिया था उस दिन के सत्यनिष्ठा के उसके आदर्श ने।

मनुष्य का मन सदा ही सत्यनिष्ठ है। सत्यनिष्ठ तो नही, सत्य को प्रकट करना ही तो स्वाभाविक है—उचित है। लोग उसे केवल लज्जा के कारण, सकोच के कारण, अपराध-बोध के कारण प्रकट नही करते। मनुष्य की चालाकी की प्रथम शिक्षा होती है झूठ बोलना सीखने के क्रम मे।

इस दुर्बलता को जीतकर मनुष्य जिस दिन फिर माथा ओडकर अवश्यभावी को स्वीकार करेगा, और मिथ्या के बदले निर्भय सत्य को ही प्रकट करेगा, उसी दिन मनुष्य की चरम विजय होगी। इस विजय से बडी विजय दूसरी नही होती। इसके लिए प्राणदण्ड पाकर भी मनुष्य मरता नही, सब कुछ खोकर शरीर मे राख लपेटकर भी राजा से बडा जाता है। इसकी एक अद्भुत शक्ति है, विचित्र मोह है। उस दिन

यह शक्ति मानो इस देश के आकाश मे, वायु मे, जल मे घुली-मिली थी। अशुमान ने देवग्राम के चौधरियो के घर मे जन्म लेकर मा-बाप से इसीकी दीक्षा पाई थी। बचपन मे खेल ही खेल मे उसने इसकी कुछ साधना भी की थी। अपने मित्रो के बीच इसके लिए वह थोडा अहकार भी करता था और उस दिन अतसी ने उसे डर दिखाया होता और शिवकिंकर ने ब्लैकमेल करना चाहा होता तो वह क्या करता, यह आज नही कह सकता, लेकिन उन दोनो ही ने जब उसे देवता बनाकर, प्रशसा करके उसे मुक्ति देनी चाही तो वह चौककर पीछे हट गया था, क्योकि उसे ऐसा लगा था कि उसे छोटा बनाकर अतसी और शिवकिंकर ही बडे हो गए। यही क्यो, वह खुद अपने निकट भी छोटा होता जा रहा था।

उसने कहा था—नही।

अतसी ने चौककर कहा था—क्या नही ?

—यह नही हो सकता।

—अशु !

—नही, मैं तुमसे ही ब्याह करूगा।

शिवकिंकर ने कहा था—चुप रहो अशु, चुप रहो।

—नही। मैं चुप नही रह सकता शिवकिंकर दा !

"एक इमोशनल फू–ल।"

यह बात कही थी उसके मौसा हरिचरण बाबू वकील ने।—"इसका कोई मतलब है कि सिर-पैर है ? बे-वक्त पका आवारा लडका—ए प्रिक्शस चाइल्ड ! उससे पाच-छह बरस बडी एक फालेन गर्ल, उससे ब्याह करेगा ! जिद तो देखो !"

अशुमान सचमुच अविश्वसनीय काड कर बैठा था। वह उसी रात को देवग्राम से कलकत्ता चला आया था और कलकत्ते से एक लम्बे पत्र मे शुरू से आखीर तक सारी बाते प्रकट करके अपनी मा को लिखा था कि मैं इस अतसी से ही विवाह करना चाहता हूं। यह बात भी सत्य है कि मैं उसे प्यार करता हूं और लोभ अथवा मोह अथवा वह भ्रान्ति ही

हो तो उस भ्रान्ति के बीच जो कुछ घटित हो गया है, उसके बाद उससे विवाह करने के सिवा मेरे लिए दूसरा रास्ता नही है।

कलकत्ता आकर इस बार वह मौसाजी के यहा नही टिका। टिका था एक अच्छे बोर्डिंग हाउस मे। घर से आने के समय वह दो सेट सोने के बटन, पाच नग अगूठी, बिछुआ अनत, अन्नप्राशन के समय मिला एक हार, यज्ञोपवीत के समय मिला एक और हार और दस गिन्नियां साथ ले आया था। वह अपने घर को समझता था, अपनी मा को पहचानता था और जानता था कि इसके लिए उसे झगडना पडेगा। वह झगडा सहज न होगा। धनी घर का लडका है, बचपन से बाप के साथ ही साथ रहा है और बाप की मृत्यु के बाद, सौतेली मा और सौतेले भाइयो के साथ पार्टीशन का काम देखते हुए, इन सारी बातों से अनजान नही रह गया है। वह जानता था कि उसकी सौतेली मा और सौतेले भाई चीख-चीखकर कहेगे—उसकी जात चली गई। इस सपत्ति मे उसका कोई अधिकार नही हो सकता। होने को कुछ होगा नही, लेकिन शोर-गुल तो वे करेंगे ही। डर उसे अपनी मा से है। वे क्या करेंगी, इसका वह ठीक अन्दाज नही लगा सका। यह सच है कि उसकी मा गाधीवादी है; लेकिन क्या सत्य होने के कारण ही वे इस समाज-विद्रोही सत्य को स्वीकार कर लेगी ?

सन् १९४८-४९ की घटना है।

आज है सन् १९६७। १८-१९ साल पहले वह जिस दिन अपना साज-सामान लेकर कलकत्ता चला आया था और एक होटल मे टिक गया था, उस समय वे सारे प्रश्न या समस्याए इतनी साफ और स्वच्छ नही थी। मन ही मन आशका के बीच वह सब कुछ अनुभव कर पाया था—लेकिन आज की तरह, मुकदमे की अर्जी के दावे की युक्तियो के समान, वह अनुभव इतना स्पष्ट नही था।

उसने तीन साल कानून भी पढा है, लेकिन परीक्षा नही दी। जीवन मे अगर साहित्य और नाटक ने उसे न जकड लिया होता तो शायद वह वकील ही होता।

जाने दो, वकील न होने के लिए उसे कोई अफसोस नही है।

कहानी-लेखक, उपन्यासकार, नाट्यकार होने के कारण उसे जीवन मे कभी ज़रा-सा भी अफसोस नही करना पडा। वकील होने पर शायद वह इस तरह सत्य को जकडकर भी नही रह सकता था, जिसे वह सत्य के रूप मे जानता है, उसकी वह इस तरह रक्षा न कर पाता।

जीवन के उस काल मे वह सत्य से एक पाव पीछे नही हटा था।

उसके मौसा हरिचरण बाबू वकील ही पहले-पहल उसके पास आए थे। बोर्डिंग मे आते ही उसने अपनी मा को पत्र लिखा था। उसने विस्तार से सारी बाते लिखी थी। एक दूसरा पत्र उसने अतसी को लिखा था।

अतसी और शिवकिंकर को देवग्राम मे छोडकर ही वह कलकत्ता चला आया था। उन्हे पता भी नही था कि अशुमान इस तरह कलकत्ता चला जाएगा। लेकिन इतने दिनो मे, यानी उसके कलकत्ता चले आने के बाद, वे लोग भी निश्चय ही देवग्राम से चले आए होगे, ऐसा अनुमान करके उसने अतसी को उसके घर के पते पर ही पत्र लिखा था। उसने लिखा था—"मैं तुम्हे मुक्ति नही दे सकता अतसी।"

तब जवानी की उम्र थी। साहित्य की दुनिया मे उसने अभी-अभी ही पाव रखा था—बडी कवित्वमयी भाषा मे उसने लिखा था—"तुम्हे मुक्ति देने के लिए मुझे अपने हृदय को विदीर्ण करना पडेगा; क्योकि मेरा हृदय सीप है, जिसके अन्दर मोती के रूप मे तुम हो। किसी दिन एक बालुका-कण की तरह तुमने मेरे हृदय मे प्रवेश किया था—उसकी यन्त्रणा से जीवन-रस के द्वारा, बालुका-कण को मुक्ता बना देने के समान ही, मैंने ही तुम्हे अपरूप बना दिया है और अपने देह-मन के साथ एक कर लिया है। अपने को खत्म किए बिना मैं कैसे तुम्हे मुक्ति दे सकूगा ? इसके अलावा मेरे धर्म का, मेरे न्याय का, मेरे सत्य का क्या होगा ? मेरा सब कुछ तो आज तुम्हीको जकडकर बना है। तुम्हे मुक्ति देने से तो पल-भर मे ये सभी मुह मैला करके धूल में लोट जाएगे। मेरा सत्य, मेरा न्याय ताश का घर नही है। पुराने ज़माने के सत्य और न्याय की तरह आधे को रखकर आधे को बहा नही दिया जा सकता। मेरा सत्य, मेरा न्यायधर्म महाभारत के कर्ण के समान वीर्यवान् और सहजात

कवच-कुडलधारी है। उसे फेक देने पर भी हाथ मे धनुष-बाण लिए वह लौट आता है।" खासी बडी चिट्ठी थी और वैसी ही दृप्त चिट्ठी। वह स्वय भी उस दिन दृप्त था। समझौता उसने किसीके साथ अथवा किसी चीज़ के साथ नही किया।

मा के साथ भी नही।

इसी बात पर हमेशा के लिए मा से उसका अलगाव हो गया। उसकी मा तेजस्विनी थी—उनकी ज़िद और उनका तेज उससे भी ज्यादा था। अशुमान के सत्य को वे स्वीकार नही कर सकी; लेकिन उन्होने कहा था—तुम्हारा सत्य तुम्हारा है और मेरा सत्य मेरा। दोनो के बीच समझौता नही हो सकता।

मा ने बडी कठोर बात कही थी। उन्होने लिखा था—एक दुराचारिणी लडकी को मैं अपनी पुत्रवधू के रूप मे ग्रहण न कर सकूगी। जैसे किसी काली लडकी को देखकर उसे नापसद करने का तुम्हारा अधिकार है, ठीक वैसा ही अधिकार मेरा भी है, मैं ऐसा मानती हू और उसी अधिकार से मैं 'ना' कह रही हू। तुमने महाभारत की सत्यवती का दृष्टात देकर लिखा है—"दैहिक रूप से अशुद्ध होने पर भी सत्यवती भारत की साम्राज्ञी हुई थी। चद्रवश के पहले राजा पुरुरवा ने उर्वशी नाम की अप्सरा से विवाह किया था—उर्वशी भी दैहिक रूप से शुद्ध नही थी। उत्तर मे मुझे यह कहना है कि इस दृष्टात को मैं आदर्श ही नही मानती। दुनिया मे ऐसा हुआ है और होता है, यह मैं स्वीकार करती हूं; लेकिन ऐसा ही होना उचित है, यह मै कभी स्वीकार नही करती—स्वीकार करूगी भी नही, यह तुम जान रक्खो।

अशुमान ने लिखा था—दुर्भाग्य की बात है कि गाधीजी आज जीवित नही है। होते तो मैंने जो कुछ किया है, उसके लिए वे मेरा तिरस्कार करते, यह ठीक है, लेकिन मेरे इस सकल्प का वे समर्थन करते।

मा ने लिखा था—ऐसा होता तो मैं गांधीजी के समर्थन को तुच्छ कर देती।

जाने दो, यह वाद-विवाद लबा है।

आज भी अशुमान को उस लबे वाद-विवाद की सारी बाते याद हैं। वह आज भी ऐसा नही मानता कि उससे अन्याय हुआ था। नही। लेकिन शायद उसने अपने पक्ष के न्याय का दावा बहुत अधिक रूढ भाव से किया था। उसकी मा दुखी हुई थी। वे भी अपने न्याय के दावे मे से एक बूद छोडने को राजी नही हुईं।

लेकिन न्याय-अन्याय का दावा और ज़ोर जिसका जो भी हो, उसकी उपेक्षा करके वस्तुत. जो होनेवाला होता है, वह हो ही जाता है। बात शायद ठीक नही बनी—दो पक्षो के न्याय-अन्याय और ज़ोर का जोड-घटाव करके जो बाकी बच रहता है, वही घटित होता है। मा और बेटे के दो पक्षो ने जब अपने-अपने न्याय को लेकर एक-दूसरे का मुह देखना बद कर दिया, तब तक अतसी और शिवकिंकर का विवाह हो चुका था। नव-विवाहित अतसी और शिवकिंकर ने एकसाथ उसके बोर्डिंग मे आकर यह खबर दी थी और कहा था—दुहाई है, अब तुम शात हो जाओ। बहुत हुआ। अब यह सब न करो।

अशु स्तभित हो गया था। उसने ऐसा नही सोचा था। फिर भी वह अतसी के प्रति अनुदार नही हुआ। पिता की दी हुई एक हीरे की अगूठी उसके पास थी, जब वह तेरह साल का था तब की उसकी अनामिका के नाम की अगूठी, अब उसकी कानी उगली मे आने लायक हो गई थी। उसे ही खोलकर उसने अतसी की उंगली मे पहना दिया था और कहा था—तुम्हारे प्रीति-भोज मे मैं नही आऊगा, माफ करना और भविष्य मे भी कोई सपर्क न रखने से मुझे खुशी होगी।

अतसी थोडा हसी भी थी, उसीके साथ उसकी दोनो आंखो में थोडा जल भी छलछला आया था। उसने कहा था—बाप रे! इतने गुस्से पर मैं क्या करू, कहो तो। मैं तुम्हे कैसे समझाऊ कि यह सब मैंने तुम्हारे भले के लिए ही किया है?

अंशु ने यह सब और नही सुनना चाहा था। उसने कहा था—देखो, अब यदि दया करके तुम लोग जा सको तो मुझे खुशी होगी।

वे दोनो हसते-हसते चले गए थे। उस हंसी की आवाज़ सुन पडी थी बोर्डिंग की सीढी के मोड के परे से। उस रोज़ दिन-भर अशु वजह-

बेवजह क्रोध से फट पडना चाहता था।

बोर्डिंग के नौकर को थप्पड मार दिया था। मैनेजर और मालिक से झगड पडा था। एक टैक्सी लेकर बारकपुर के गाधीघाट तक चला गया था। दिन का बाकी हिस्सा वही बैठकर बिता दिया था और रात को आठ बजे बोर्डिंग मे लौटकर कमरे का दरवाजा बद करके सो गया था। डेढ-दो घटे तक रोते-रोते थक जाने के बाद सो गया था।

अगले दिन सवेरे की डाक से ही मा का लिखा एक निष्ठुर पत्र आया था। उसमे शिवकिंकर और अतसी का उनके नाम लिखा एक पत्र था, जिसमे अपने विवाह की सूचना देकर उन लोगो ने अनुरोध किया था कि वे बालक अशु को क्षमा कर दे। मा ने लिखा था—"पत्र को पढ देखो। तुमने इसी लडकी से ब्याह करने को कहा था, जिसके लिए मेरी लज्जा का अत नही था, लेकिन आज लगता है कि माथा कट गया, क्योकि अहकारपूर्वक तुम्हारे यह कहने के बाद वह लडकी तुम्हारे मुह मे कालिख लगाकर चली गई। अब मैं सिर्फ एक शर्त पर तुम्हे क्षमा कर सकती हू। जबकि गाव के लोगो मे यह बात फैल गई है और देवोत्तर सपत्ति के लिए तुम्हारे सौतेले भाइयो से मुकदमा चल रहा है, ऐसी हालत मे तुम्हे शास्त्रीय विधि से प्रायश्चित्त करना पडेगा।"

उसने उसी समय पत्र का उत्तर लिखकर अपने हाथो डाक मे डाल दिया था।

उसने लिखा था—"प्रायश्चित्त मे उसका विश्वास नही है। वह भोजन और काचन मूल्य दक्षिणा देकर प्रायश्चित्त करने को राजी नही है। अतसी से विवाह करना ही उसके अपराध का एकमात्र प्रायश्चित्त था। उसके लिए वह तैयार भी था और एक प्रकार से खुलकर ही उसने इस बात की घोषणा कर दी थी। लेकिन अतसी ने अपनी मर्जी से शिवकिंकर से विवाह किया है, अतः उसे अब कुछ नही करना है। बचपन मे दूसरे के बगीचे से चुराकर खाए फलो से मिली पुष्टि की तरह जो अपराध उसकी देह और स्मृति मे रह गया है, उसे वह लाचार होकर जीवन के अतिम दिन तक वहन करता रहेगा।"

उत्तर मे उसकी मां ने लिखा था—"तुम्हारे साथ पत्र द्वारा बातें

करने मे भी मेरा शरीर और मन अपवित्र हो जाता है। इसके बाद फिर तुम मुझे कोई पत्र न लिखना। साथ ही यह भी समझ लो कि इस घर से और मुझसे तुम्हारा कोई सबध न रहा। इसके बाद तुम्हे जायदाद से रुपये-पैसे न मिलेगे।

अशुमान के माथे मे मानो आग जल उठी थी। उसने उसी समय पत्र का जवाब लिख डाला था। जमीदार-घर का लडका था—बचपन से इस सत्रह साल की उम्र तक उसने बाप से केवल देश की सेवा करना ही नही सीखा था, उन्हे जमीदारी का काम करते देखकर जमीदारी का काम और कायदा-कानून भी सीख लिया था। इधर जमीन-जायदाद के बटवारे के चलते उसकी जानकारी और भी तीखी तथा स्पष्ट हो गई थी। मा के उत्तर मे उसने एकदम कानूनी ढग से लिखा था—आपने मुझे जन्म दिया है, मेरे पिता स्वर्गीय निरजन चौधरी की मृत्यु के बाद, मेरे नाबालिग होने के कारण आप स्वाभाविक अभिभावक के रूप से अदालत के जरिये मेरी (अर्थात् श्री अशुमान चौधरी की) गार्जियन नियुक्त हुई है और उसी अधिकार से आप मेरे हिस्से के इस्टेट का काम-धन्धा देख रही है। अदालत से मेरी गार्जियन नियुक्त होते समय आपने इस बात का वादा किया है कि आप इस्टेट के तमाम आमद-खर्च का हिसाब रखेगी। साथ ही आपने यह भी वादा किया है कि मेरी उच्च शिक्षा के खर्च के लिए जरूरत होने पर आप सम्पत्ति को बेच भी सकती हैं यानी जो कुछ होगा, वह मेरे ही लिए होगा। मुझे छोड़कर किसी तरह का कोई खर्च करने का आपका अधिकार नही है। यदि कीजिएगा तो इसके लिए बाद मे आपको जिम्मेदार होना पडेगा। आपने सन्······ की · तारीख के अपने पत्र मे लिखा है कि "इस घर से और मुझसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही रहा। इसके बाद इस्टेट से तुम्हें रुपये-पैसे न मिलेंगे।" इसके उत्तर मे मैं आपको बतला देना चाहता हूं कि मेरे साथ कोई सपर्क न रहने अथवा न रखने पर आप मेरी गार्जियन नही रह सकती। अपने पिता के परलोकगमन के क्षण से ही मैं अपने पिता की सपत्ति के एक-तिहाई हिस्से का (क्योकि अपने पिता के हम तीन पुत्र हैं) मालिक बना हू। मुझे उस अधिकार से कोई, किसी तरह

वचित नही कर सकता।"

देवग्राम से बहुत ज्यादा दूर नही, कई मील पच्छिम, अजय के किनारे ही, दुर्गापुर फॉरेस्ट मे, लड़ाई के जमाने मे बनाए गए मिलिटरी बेस का कुछ हिस्सा था। पानागढ से पच्छिम अडाल उखरा और उत्तर की ओर पानागढ इलाम बाज़ार रोड के पच्छिम सटा हुआ, अजय के किनारे, श्याम रूपा के गढ तक फैला हुआ मिलिटरी बेस, द्वितीय महा-युद्ध मे भारतवर्ष के सैकडो फ्रट के रूप मे बनाया गया था। इसका कुछ हिस्सा आज भी पानागढ मे है—मिलिटरी बेस के रूप मे ही है।

अंशुमान ने यही एक विस्फोट देखा था।

वह आतिशबाज़ी का विस्फोट नही था। बमबाज़ी की आवाज नही थी—चरखी-फुलझडी, रग-मशाल की रगीन रोशनी का उच्छ्वास भी नही था। वह विस्फोट विचित्र था, विस्मयजनक था, भयावह था।

सन् १९४७ के मार्च का महीना था। बरसात के बाद शरद् की धूप के समान स्वाधीनता के आगमन की हवा बहने लगी थी, रग भर रहा था, भार बाबा उस समय काग्रेस के छोटे-मोटे नेता के रूप मे चारों ओर घूमते फिर रहे थे। उस दिन पानागढ इलाम बाज़ार रोड के पास ही, मुसलमानों की एक बस्ती मे, वह अपने पिता के साथ गया था। गांव मे एक धनी हो रहे मिया जी रहते थे। उन्हीके दरवाज़े पर बैठकर बातें हो रही थी। सामने थोड़ी-सी खुली जगह के दूसरी ओर किसी गरीब का एक टूटा-फूटा घर था। अचानक वही घर एक भयानक आवाज़ के साथ ज़मीन पर भहरा पड़ा। उसके बाद धूल और धुएं का अबार उठा। सारी जगह ढक गई। इसके बाद ही एक औरत छाती पीटती-कूटती दौडकर भाग गई। घर मे उसका पति और दो लड़के दब गए थे। औरत का पति जंगल मे लकडी काटने गया था। वहा उसे लोहे की एक बहुत बडी चीज़ मिली। उसे घर लाकर उसने खोलने की कोशिश की। खोल नही सका। कुछ हुआ भी नही। उसे घर के एक कोने मे डाल रखा था। आज शाम को चूल्हे पर खाना चढाकर वह घर मे गई तो अचानक उस चीज़ पर उसकी नज़र पड़ी। उसने सोचा, देखू,

इसे लकडी की आग मे तपाने से क्या होता है। उसने वैसा ही किया था, उसपर लकडी की आग बोझकर वह खिडकी के घाट पर गई थी—इसी बीच वह फट पडा। वह सचमुच का एक शक्तिशाली बम था। उसके पति और दो लडको को दबाकर घर चूर-चूर हो गया था।

अशुमान उस विस्फोट का धडाका, धूल और धुए के उस पुज की याद न भूल सकेगा। बीच-बीच मे वह दृश्य उसकी आखो के सामने ज्यों का त्यो मूर्त हो जाता है।

सन् १९६७ की इस प्रभात-वेला मे जीवन की पुरानी बातो की याद आते-आते, अचानक उनके बीच यह सपर्क-रहित चित्र जाने कैसे आ खडा हुआ।

अशुमान ने एक गहरी सास ली।

अपनी मां के साथ हुए पत्र-व्यवहार की याद आते ही उसे इस विस्फोट की घटना का स्मरण हो आता है। एक बार उपमा ढूढते हुए उसने उस विस्फोट की घटना को चुन-चुनकर सजाया था। और जगहो मे समानता हो या न हो, उस औरत के दौड भागने के साथ, सब कुछ छोडकर उसकी मा के चले जाने की बडी गहरी समानता है। उसकी मा इन दिनो आश्रम-वासिनी है।

मा ने फिर उसके पत्र का उत्तर नही दिया था। अदालत मे दरखास्त देकर, नाबालिग का अभिभावकत्व छोडकर वे काशी चली गई थी। उसकी सपत्ति मे से उन्होने अपने लिए मासिक खर्च भी नहीं मागा था।

उसकी मा आज भी जीवित हैं। वह भी उनकी खोज-खबर नहीं लेता,—वे भी उसकी पूछताछ नहीं करती। अपने सौतेले भाइयो से उसका पत्र-व्यवहार चलता है। उसकी बडी मा भी आजकल उसकी मां के पास जाकर रहा करती है। बेटे के साथ विरोध होने के बाद सौत और सौत के लड़को से उनका मेल हो गया है। उनके अपने नाम से जो सपत्ति है, उसे वे गृह-देवता के नाम लिख जाएंगी। उनकी ओर से सेवायत रमारजन और राधारंजन होगे, अशुमान नही। उसकी मां ने खुद मुद्दई के रूप मे नालिश करके अदालत से यह इन्तज़ाम करा लिया है:

निरजन चौधरी की सतान होने के कारण उनकी सम्पत्ति के एक तिहाई हिस्से पर अशुमान के अधिकार मे कोई व्यक्ति हस्तक्षेप नही कर सकता —यहा तक कि अतसी-जैसी दुराचारिणी स्त्री के सपर्क का अपराध होने पर भी नही कर सकता, लेकिन अतसी नाम की स्त्री के साथ अपने जीवन के ससर्ग-दोष की अपने ही मुह से घोषणा करने के बाद भी जिसने प्रायश्चित्त नही किया, देवता पर अथवा देवोत्तर सम्पत्ति पर उसका कोई अधिकार नही हो सकता।

उसकी मा मूर्तिमती है पुराने ज़माने की। उनसे जितना हो सका, वे इस ज़माने पर चोट कर गई हैं—इसे शाप दे गई है। वे जो चाहे सो करे, उसमे उसने किसी दिन बाधा नही दी। देगा भी नही। पुराना ज़माना हमेशा पुराना ही ज़माना रहता है, सब कुछ खोकर विदा होने के समय वह हमेशा इसी तरह शाप दे जाया करता है। अजीब बात है, सब कुछ छोड जाना पडता है, इसीलिए जितना भी हो सकता है, अपने साथ नष्ट कर जाता है। जितना भी हो सकता है, कलेजे से चिपटाए रखता है—उसे खोलकर अलग नही किया जा सकता। आखिर वह सब उसके मृत शरीर के साथ या तो जल जाता है या कब्र मे दफना दिया जाता है। परवर्तीकाल मे वह प्रत्न तत्व की सामग्री बन जाता है। उसकी मा देवोत्तर अपने साथ ले गई है। उसे वे उसके सौतेले भाइयो को दे जाएगी। वे भी पुराने ज़माने के हैं।

अतसी ने उसको पकडकर छोड दिया था। शिवकिंकर के साथ· ·। छोडो उसे। वह चली गई, उसे मुक्ति दे गई है। इसके लिए उसे धन्यवाद। अतसी उस दिन की सडी हुई और दूषित वर्तमान है। जो भविष्य की ओर अग्रसर होगा, उसे पकडकर वह उसके साथ कैसे चल सकेगी ? नही चल सकी। उसे छोडकर शिवकिंकर के साथ चली गई।

जाए—

उसके सामने का रास्ता खुला है। आश्चर्यजनक रूप से सामने का दिगंत स्वच्छ था। आकाश था नील-निर्मल। वह अकेला है।

चार

निर्मल नील आकाश के नीचे एक अद्भुत सुन्दर और समृद्ध पृथ्वी है। वहा कितना सुख है! जितना सुख है, उतनी ही समृद्धि है। उज्ज्वल पृथ्वी। न चुकनेवाला भाडार। आनद का ससार। अधीनता का सकुचन नही है, अपराध की अर्गला नही है, अबाध गति से मनुष्य, सामने के मार्ग से मिट्टी पर, जल पर, आकाश मे चलता है।

सन् १६४८ के बाद सन् १६४६ मे फिर वह कॉलेज मे दाखिल हुआ था। सन् १६५८ मे उसने यूनिवर्सिटी छोडी थी। आठ वर्षों तक ऐसी ही पृथ्वी की कल्पना करके सामने, दिगंत की ओर लगातार चलता रहा है।

उसकी मा ने उसका अभिभावकत्व छोड दिया। अदालत से एक वकील के अभिभावक नियुक्त होने की बात थी, लेकिन विचित्र है ससार···उसके बडे सौतेले भाई ने आगे बढकर उससे कहा—मैं गार्जियन बनू तो तुम्हे आपत्ति होगी ?

अशुमान अवाक् हो गया था। उसने कहा था—मुझे आपत्ति नही है। आपत्ति क्यो होगी ? जो काम वकील देखता, न होगा उसे तुम देखोगे। तुम तो वकील भी हो, भाई भी हो। लेकिन बाद मे मेरी जायदाद का हिसाब-किताब समझा देने मे गडबड तो नही करोगे ?

एक साल के अदर ही, घटनाओ के विचित्र सयोग से। भारतवर्ष के सद्य स्वाधीन आदमियो मे से, नेताओ को छोडकर, शायद सबसे

अधिक स्वाधीन वही हो गया था।

शायद वह और अधिक स्वाधीन हो सकता था—जैसा होना शायद उसके लिए उचित भी था। लेकिन उतना वह हो नही सका। अगर वह देवग्राम मे लौट जा सकता और गाव के लोगो के सामने बातो की सफाई कर सकता तभी शायद ठीक होता। लेकिन उतना उससे हो नही सका। बाते हुई थी कलकत्ते के बोर्डिग हाउस मे बैठकर। बोर्डिग खासा साफ-सुथरा था। सिंगल सीटेड रूम। आज सन् १९६७ मे जब चावल का भाव साठ रुपये मन है तो बोर्डिग के उस समय के चार्ज की याद करके मन मे अचरज होता है। बोर्डिग का चार्ज था पचपन-साठ रुपया। चाय की एक प्याली का दाम छ पैसे से कम था। उसी बोर्डिग के कमरे मे आए थे उसके बडे भाई। उनके साथ भाभी भी आई थी। हिसाब की बात पर भाभी ने कहा था—मैं ज़मानतदार रहूगी देवर बाबू! हिसाब तुम्हें पैसा-कौडी समझाकर मिलेगा।

भाभी कलकत्ते की लडकी है और भले घर यानी धनी घर की लडकी है। उनके पिता जूट, कोयला और अभ्रक का रोज़गार करते है। बडे व्यवसायी हैं। और उसीके साथ उस ज़माने के प्रोग्रेसिव आदमी। अग्रेज़ों के ज़माने मे उन्हें राय साहब का खिताब भी मिला था। खासा बडा परिवार था। भाभी के पाच भाई, छ· बहने थी। उस समय तीन के विवाह हो चुके थे, तीन अभी कुमारी थी।

भाभी के पिता उस समय बूढे हो गए थे। उन्होने तीन लडकियों का विवाह किया है और साठ बरस के लम्बे जीवन मे जूट, कोयला और अभ्रक की खरीद-बिक्री करके, उस ज़माने के एक सत्य की उपलब्धि की है; उसी उपलब्धि के ज़रिये उन्होने उस दिन कह सुनकर बडी बेटी को इस काम के लिए भेजा था। अशुमान उस दिन नही जान सका था, बाद मे उसने जाना कि इसमे उनके दो मतलब थे। उनका पहला मतलब यह था कि वकील गार्जियन के रूप मे अशुमान के हिस्से की सपत्ति कब्जे मे करके दामाद यथेष्ट लाभ उठा सकेंगे। दूसरा मतलब और भी गूढ तथा विचित्र था। उनकी इच्छा थी कि अपनी तीन कुमारी कन्याओ मे से एक को अशुमान के जीवन के साथ बाध दें।

एक ज़माने मे वे खुद सोनागाछी इलाके मे आया-जाया करते थे। उनके दो सयाने लडके थे। वे सन् १९४८-४९ मे मैदान और होटलो के चक्कर काटा करते थे। वे रिपन स्ट्रीट इलाके मे ऐंग्लो इडियन मुहल्ले के शाम के साहब थे।

उन्हीसे सुने, अशुमान के इस अतसी-अध्याय ने ही उसे और आकर्षक बना दिया था। अशुमान ने अपनी मा को जो पत्र लिखा था, भाभी के पिता ने उसकी तारीफ की थी और कहा था—मज़बूत लडका है। पीट-गढकर उसे हथियार बनाया जा सकता है। इसके अलावा मर्द-बच्चा है। और हमारे घर उसका रिश्ता भी हो सकता है। इस लडके को कम से कम कब्ज़े मे तो कर ही लो।

अपने जीवन मे, वे लडकियो के विवाह-सबध पुराने ज़माने के कायदे से ही करते आए है। लडकिया सात-आठ की होती, तभी वे उनके विवाह की बातचीत पक्की कर लेते। जाने-बूझे, खाते-पीते, भिन्न गोत्र के लडके का पता पाते ही वे सबध पक्का कर लेते और बातचीत से, चिट्ठी-पत्री से उसको जिलाए रखते, फिर जितनी जल्दी हो सकता, लड़की की शादी करके निश्चित हो जाते।

उनके लडके इतनी कम उम्र मे विवाह कर देने के पक्ष मे नहीं हैं। लडकिया कम से कम एक बार मैट्रिक पास कर लें, अथवा फेल ही हो जाए, तब उनका विवाह होना चाहिए, उन लोगो की यही राय है। उधर लडको को तो ग्रेजुएट होना ही चाहिए। लेकिन वे नौकरीशुदा बाप के लडके पसद करते है।

अंशुमान नौकरीशुदा बाप का लडका न होने पर भी लीडर बाप का लड़का है और यह जो काड उसने कर डाला है, कुछ समझ-बूझकर चलने पर। उसके ज़रिये भविष्य मे वह अनायास ही लीडर हो जाएगा, इसमे उन्हे सदेह नही था। इसीसे लडको ने इसमें आपत्ति नही की, फिर भी उन्होने कहा था—कुछ और दिन बीत जाएं, उसकी मति-गति देख लें, तब आगे बढने की बात होगी।

उस ज़माने के अत और इस ज़माने की शुरुआत मे यही स्वाभाविक था। हिन्दू कोड बिल, इस्टेट एक्विज़ीशन ऐक्ट यानी ज़मीदारी-उन्मूलन

कानून, उस समय भी बहुत दूर की बात थी, उस समय तक तो स्वाधीन भारत का सविधान भी पास नही हुआ था। इसी कारण, उस ज़माने मे, इस बहन की बडी दीदी के रूप मे भाभी ने उसके पास आकर, पति की ओर से हिसाब-पत्र की ज़मानतदारी अनायास ही करनी चाही थी। वे सिर्फ ज़मानतदार होने की बात कहकर ही नही रह गई थी। उन्होने कहा था—सुनो देवर बाबू, मैं हसी-मजाक की बात नही करती, अपने बाल-बच्चो की सौगंध खाकर कहती हू, ये तुम्हारी पाई-पाई का हिसाब देंगे, देगे, देगे।

तीन बरस बाद अशुमान ने आई० ए० पास किया। उसने आइ० ए० अच्छे नबरो से ही पास किया था। उसकी जगह शुरू के पचीस लोगो मे ही थी।

उस समय उसकी मा काशी मे थी। देवोत्तर का मुकदमा उन्होने चलाया था, उन्होने अशुमान के सौतेले भाइयो की ओर से गवाही देकर उसे हराया था और काशी चली गई थी। गवाही मे उन्होने कहा था—वे और उनका पुत्र अंशुमान, यहा तक कि उनसे विवाह करने के बाद उनके पति निरजन चौधरी भी देवी-देवताओ मे विश्वास नही करते थे। इसी कारण वे पुराने घर से हटकर नये मकान मे रहते थे।

काशी मे वास करने के बाद भी उसकी मा सच्चे अर्थों मे काशी-वासिनी नही थी। विश्वनाथ, विश्वेश्वर, अन्नपूर्णा, दुर्गा, काली आदि की अपेक्षा उनका घनिष्ठ और गहरा सबध था खादी मडल से, वर्धा आश्रम से, कस्तूरबा ट्रस्ट से। काशी मे किराये का मकान लेकर रहती थी, लेकिन दिल्ली-वर्धा आदि अलग-अलग जगहो पर घूमती फिरती थी। वे विनोबाजी, जयप्रकाश नारायण आदि नेताओं के यहा जाती थी। तेलगाना हो आई थी। उसने अपने पास होने की सूचना देने के लिए मा को एक चिट्ठी लिखी थी—उसका जवाब उसे महीने-भर बाद मिला था। मा ने लिखा था—तुम्हारी परीक्षा की खबर पाकर खुशी हुई है। लेकिन परीक्षा मे अच्छे अक ले आना ही मनुष्यता नही है। तुम सच्चे मनुष्य बन सकोगे, तभी मैं खुश होऊगी। मैं दिल्ली मे थी, इसीलिए पत्र का उत्तर देने मे देर हुई। कल पटना जा रही हूं—वहा कुछ दिन सदाकत

आश्रम मे रहूगी।

इस चिट्ठी का फिर उसने कोई उत्तर नही दिया। उस समय वह छात्र-आदोलन मे शामिल होने का उद्योग कर रहा था और मा के काग्रेस मे होने के कारण उसने काग्रेस के तमाम आदर्शों को अलग रक्खा था। वह सिगरेट पीता और घटो कॉफी हाउस मे बैठा रहकर पाच-सात कप कॉफी पिया करता था।

तीन साल बाद, सन् १९५१ मे, उसकी परीक्षा का परिणाम मालूम होने पर, देवग्राम से उसकी भाभी और भैया ने उसे लिखा—एक बार गाव आओ।

वह गया था।

अचानक एक बडी उदास हसी आज उसके चेहरे पर फूट उठी। उसने एक गहरी, लबी सास ली।

सोलह साल पहले, सन् १९५१ के ज्येष्ठ महीने मे वह घर गया था। उस दिन उसे देखकर उसकी बडी मा रोई थी। रोई थी उसके पिता के लिए। उन्होने कहा था—आह! आज वे नही हैं। अशु को लेकर उनकी कितनी साध थी, कितनी आशाए थी! मैं अशु की सौतेली मा हू, अशु का आदर देखकर मुझे अपने लडको के लिए दुख होता था। उसी अशु ने आज अच्छे नबरो से परीक्षा पास की है—आज वे होते तो घर मे उत्सव मच गया होता।

छोटी-सी एक प्रक्षिप्त घटना। पिता की याद उसे भी आ रही थी। सिर्फ पिता की ही क्यो, मा की भी याद आ रही थी। मा की कोई खबर उसे तब तक भी नही मिली थी। अभी उसका ही पत्र काशी पहुचा होगा। फिर भी उसके मन मे छिपी-छिपी एक शिकायत जमा होने लगी थी।

सारे गाव के लडको ने उसका खूब उत्साह से अभिनन्दन किया था। गाव मे स्कूल था। उसी स्कूल से वह पास हुआ था। बूढे हेड मास्टर पुराने आदमी थे। उन्होने बडी गम्भीरता से कहा था—आएम ग्लैड दैट योर रिज़ल्ट इज़ नॉट बैड (मुझे खुशी है की तुम्हारा नतीजा

बुरा नहीं रहा)। बेशक, और अच्छा होना चाहिए था।

कुछ क्षणो बाद, अपनी ही बात का विरोध करते हुए उन्होने कहा था—फिर भी मैंने यह नही सोचा था कि रिज़ल्ट इतना अच्छा होगा।

वे फिर बोले थे—हा, मन लगाकर पढते चलो। फारगेट एवरी थिंग एल्स (और सब भूल जाओ)। उस आदमी के साथ कोई सपर्क न रखना। डॉण्ट (कभी मत रखना)।

यानी शिवकिंकर के साथ।

जाने दो। शिवकिंकर की बात जाने दो। उसके साथ अतसी की बात भी छोडो।

नही।

अतसी की बात आवेगी। देवग्राम जाकर अतसी की बात भूलने का कोई उपाय न था। गाव के लडको ने उसका जो मुग्ध अभिनन्दन किया था, वह अतसी के लिए ही किया था। ठीक अतसी के लिए नही, उन लोगो ने अतसी को जो मर्यादा और सम्मान देना चाहा था, उसके लिए। गाव-भर मे जहा पक्की दीवारें थी अथवा जहा राढ देश की बालूवाली और धान का छिलका-मिली पुख्ता मिट्टी की दीवारें थी, उन सभी जगहो को लडकों ने अशुमान जिदाबाद अथवा 'अशु-अतसी' जैसी तरह-तरह की बाते लिखकर भर दिया था। अत. 'अतसी की बात छोडो' कहकर बात दबा देने से काम न चलेगा।

लेकिन तब वह अतसी से घृणा करने लगा था। उस समय अतसी फिल्मो मे काम कर रही थी। एक के बाद एक उसे कई फिलमो मे मौका मिला था। पहली फिल्म मे उसने अच्छा काम किया था। उसकी शोहरत हो गई थी। एक फिलम मे हीरोइन का पार्ट पाकर अतसी उन दिनो आसमान का तारा बनकर चमकने-चमकने को हो रही थी। बीच-बीच मे वह अशु को याद करती थी; लेकिन अशु उधर ध्यान न देता था। अशु का खयाल करके ही वह होस्टल मे नही गई, क्योंकि शिवकिंकर और अतसी अगर होस्टल मे जाते तो मधुमक्खी के छत्ते मे ढेला मारने की तरह पल-भर मे सारे होस्टल के भनभना उठने की सम्भावना थी। इसके अलावा अशुमान आश्चर्यजनक रूप से मन

ही मन स्वाधीन हो उठा था उसकी उस स्वाधीनता को कॉलेज होस्टल मे किसी तरह नही बचाया जा सकता था। रोज ही किसी न किसी बाधा-निषेध की सीमा लाघकर, नीति-निर्देश का उल्लघन करके वह अपनी स्वाधीनता को बढाने और प्रगल्भ बनाने की चेष्टा करता था, लेकिन इसीलिए कोई हल्का काम करके उसने अपने को खिलवाड नही बनाया था। मोटी बात यह की जिस अशुमान ने सारे बचपन और किशोरावस्था मे, माता-पिता के स्नेह के बीच, गहरे विश्वास के साथ सत्य को प्रकट करना चाहा था, उसने उसी सत्य के निर्देश से अपने एक दिन के पद-स्खलन की उस घटना अथवा प्राप्ति को निहायत थोपी हुई एक आकस्मिक घटना नही समझा। उसने यह नही समझा कि यह उसके जीवन मे यो ही किसी ऐसी वस्तु का सस्पर्श है, जिसे एक चुल्लू पानी से धो-पोछ दिया जा सकता है। उसने ऐसा नही समझा अथवा नही समझ सका, इसीसे उसने उसको और उस घटना को सत्य की मर्यादा देनी चाही थी। साथ ही साथ इस देश की पद-स्खलिता स्त्री उस अतसी को अपने जीवन और गृह मे प्रतिष्ठा देकर वह स्वय भी आदर्शवाद की चरम सीमा पर पहुचना चाहता था। लेकिन अतसी ने भी यह स्वीकार नही किया। उसे स्वीकार न करके उसने स्वीकार किया शिवकिंकर को। और उसकी मा ! उसने अपनी मा से ही सबसे अधिक समर्थन और आशीर्वाद की आशा की थी। उनके सामने खडे होकर ये सारी बातें कहने मे उसे जाने कैसी एक लज्जा का बोध हुआ था, इसीसे अशुमान ने कलकत्ता आकर पत्र के द्वारा उन्हे इस बात की सूचना दी थी। उसकी आशा थी कि मा कुछ क्षणो अथवा कुछ घटो तक गुमसुम रहकर सारी स्थिति को समझ लेने के बाद उसे बुलाकर आशीर्वाद देगी और सारे देवग्राम इलाके मे सत्य-पालन के इस नये आदर्श की एक हवा बहा देंगी। इस सत्य-पालन की एक अलिखित प्रतिश्रुति उन्होने दे रखी थी, लेकिन वे उसका पालन न कर सकी।

वह सन् १९५१ का साल था। उस समय अशु की उम्र उन्नीस साल की थी। गाव के लडको ने आकर उससे कहा था—अशु दा, आप चुनाव मे खडे होइए। हम सभी आपके लिए काम करेंगे और निश्चय ही

आपको जिता देगे।

अशु ने हसकर कहा था—नही।

उन लोगो ने पूछा था क्यो ?

अशु ने कहा था—पहली बात यह कि मेरी उम्र नही हुई, और फिर मेरे पास समय भी नही है।

सचमुच, समय उसके पास नही था, क्योकि बडी भाभी उस समय घर मे जमाव करके जलसा मना रही थी। उस जलसे मे जुटकर, अभी-अभी थर्ड डिवीज़न मे पास हुई भाभी की चौथी बहन गाना गा रही थी। बडी भाभी की तीन-तीन कुमारी बहने, अमिता, नमिता और शमिता, आम खाने के लिए पहले से ही देवग्राम मे आकर जम बैठी थी।

अमिता वगैरह तीनो बहने गाना-बजाना सीखती थी। अमिता और शमिता गाना सीखती थी—नमिता सीखती थी सितार। अमिता रवीन्द्र सगीत सीखती थी, शमिता शास्त्रीय सगीत।

तीन बरस बाद, उस दिन शाम को देवग्राम आकर वह लगभग एक बजे तक जागता रहा था। मन मे जाने कितनी स्मृतिया गड्डमड्ड होकर आती-जाती रही थी। कितने ही लोग उससे मिलने आए थे। उन्होने कितनी ही बाते की थी। वे सारी बाते उसे याद नही है। याद है एक प्रगल्भ बुड्ढे की बात—हारु चाटुज्जे की। गाव के रिश्ते से उसके पिता के चाचा लगते थे। कटखने आदमी थे। उन्होने कहा था—"चलो, तुम आखिर घर लौट आए। यह भी अच्छा किया तुमने। अब ब्याह-शादी करके घर बसाओ। खूब बचे हो। उस औरत को तुमने सिर पर नही चढाया, नही चढा सके, यह तुम्हारा खासा बचाव हुआ। तिल को ताड बनाना! अरे यह सब किसके साथ नही होता ?" और मल-मूत्र त्याग का दृष्टात सामने रखकर वे उसे जीवन-दर्शन की एक विचित्र तत्त्व-शिक्षा दे गए। उन्होने कहा था—यही देखो भैया, मेरी उम्र बासठ की हुई, अब भी लोग कहते हैं कि मेरा स्वभाव खराब है।

अशुमान ने उनके साथ बातें नही की।

उनकी सोलह-सत्रह साल की एक नतिनी थी।

लडकी का नाम था रमला। हारु चाटुज्जे की बेटी ने विधवा होने

के बाद अपनी कन्या के साथ आकर बाप के घर मे आश्रय लिया था। भवानी बुआ सारे गाव मे विवाह-शादी के मौको पर लोगो के घर का काम-धधा कर दिया करती थी—रसोई-पानी और पूजा-पाठ का काम। और किताबे खूब पढती थी। इसी सिलसिले मे उसकी मा के पास आया करती थी। उसकी मा से मागकर किताबे ले जाया करती थी। उसकी मा गाव की लाइब्रेरी से लाकर पढने के लिए उसे किताबे देती थी। कुछ और भी करती थी—भवानी बुआ को सिलाई वगैरह सिखाती थी। मणीन्द्रलाल बोस का उपन्यास 'रमला' पढकर उन्होने अपनी बेटी का यही नाम रखा था।

दूसरे दिन सवेरे-सवेरे, भाभी की छोटी बहन शमिता के रियाज़ की आवाज़ से उसकी नीद खुल गई थी—आ · आ···आ। आ···आ·· आ। वह मन ही मन खीज उठा था। उस खीज को दूर करके उसकी भाभी ने आकर उसे बैठा देखा तो कहा—जाग उठे ? कल मैं पूछना भूल गई कि तुम कै बजे उठते हो। अमि, अमि, चाय ले आ।

भाभी की हाल ही मैट्रिक पास बहन अमिता, हाथो मे चाय का ट्रे लिए कमरे मे चली आई थी।

नही, अमिता मे उसे ज़रा भी आकर्षण नही प्रतीत हुआ था। शमिता की तो बात ही छोड देनी पडेगी—उस समय उसने तेरहवे साल मे प्रवेश किया था। लेकिन बीच की बहन नमिता ने उसे आर्काषित किया था। उस लडकी के रूप मे विचित्रता थी और साथ ही उसके मन मे एक दीप्ति भी थी। वह ज़रा गभीर थी—प्रगल्भ नही थी। सितार सचमुच अच्छा बजाती थी। पढने-लिखने मे भी अच्छी थी। अमिता गोरी थी—छोटी शमिता का रग उग्र रूप से साफ था—नमिता थी उज्ज्वल श्याम वर्ण की। दोनों आखे थी उदास और सुदर। हसती कम थी। लेकिन जब हसती तो उसकी हसी से आस-पास का सब कुछ हस उठता था और उस समय वह हसी उसकी आखों की उदासीनता मिटाकर उसे प्रदीप की तरह जला देती थी। अमिता से नमिता की उम्र मे भी बहुत ज़्यादा अतर नही था—सिर्फ डेढ़ साल के लगभग का था।

पहले दिन के सवेरे की चाय-गोष्ठी ही एक स्वयवर-सभा बन गई थी। उसमे लडकिया ही पुराने ज़माने के राजाओ की तरह आई थी और उसे राजकन्या की भूमिका निभानी पडी थी। वह जम भी गया था। सचमुच वह नमिता की ओर आकृष्ट हुआ था। दीदी के हुक्म से वह सितार बजाकर सुना रही थी और बजा भी अच्छा रही थी। अशुमान एकाग्र होकर उसके चेहरे की ओर देखता रहा था। नमिता के साथ उसकी आखे भी मिली थीं—इससे लज्जित होकर भी उसने, बडी होशियारी से अपना भाव छिपाकर, अन्त तक बजाना जारी रखा था। इसी बीच, गोष्ठी के अन्तिम क्षणो मे, रमला आ पहुची थी।

अशुमान अवाक् हो गया था।

उसे लगा, जैसे द्रौपदी की स्वयवर-सभा मे दीन ब्राह्मण के वेश मे अपराजेय अर्जुन आ घुसे हो और कह रहे हो कि मैं उस मत्स्य-व्यूह का लक्ष्यवेध करूगा। लडकी का जैसा अद्‌भुत यौवन था, वैसी ही मदिर निमत्रण था उसका। लेकिन उसके मुह खोलते ही अशुमान को होश आ गया था और लगा था कि यह एकदम यात्रा (नाटक) की मजलिस की द्रौपदी की स्वयवर-सभा है। और वह रमला अर्जुन के वेश मे फबती चाहे जितनी हो, अभिनय करने मे निहायत नौसिख है। रमला चीनी मिट्टी की एक तश्तरी मे कई बेल-फूल और एक खासा अच्छा आम लेकर कमरे के दरवाज़े पर आ खडी हुई थी। नमिता के सितार की झकार से उस समय सारा कमरा गूज रहा था—आदमी अपनी साँस की आवाज़ भी खुद नही सुन पा रहा था, ठीक इसी समय कमरे मे घुसकर उसने तश्तरी उसके सामने ला रखी थी और उससे बातचीत जमाने की कोशिश करने लगी थी।

—नानाजी ने यह सब भेजा है।

अशुमान ने उसके चेहरे की ओर देखा था। रमला ने फिक् से हसकर कहा था—मैं रमला हू। पहचानते हो मुझको? कहकर उसने उसके पैरो की ओर हाथ बढाया था।

अशुमान ने खीजकर कहा था—रहने दो। हुआ, हुआ।

—भैया रे! यह भी कोई बात हुई? तुम मेरे भैया नही लगते?

तुम्हारे बाबू मेरे नाना को काका कहते थे। मेरी मा तुम्हारे बाबू को भैया कहती थी ! तुम्हारी मा मेरी मा को भवानी बीबी जी कहती थी। नाना तुम्हारी बिरादरी के है। दसरात की बिरादरी के। चौधरी होने पर भी तुम लोग काश्यप गोत्र के हो।

वह लगातार बकती ही जा रही थी। उधर नमिता झल्लाई जा रही थी। इसी समय भाभी ने कमरे मे आकर सब कुछ संभाल लिया था। रमला का हाथ पकडकर वे उसे कुछ दूर खीच ले गई थी और उसे बैठाकर बोली थी—यही बैठ। बहुत बकबक मत कर।

ज़रा देर उदास होकर लडकी चुप रही थी; लेकिन उसके बाद फिर जैसी की तैसी। कुछ देर बाद नमिता ने सितार बजाना खत्म करके सितार नीचे रखा ही था कि इस मौके को पाते ही रमला बोल उठी—तुम कोई कविता सुनाओ न अशु दा ! स्कूल मे 'प्राइज़' के समय तुम कितना सुन्दर कविता-पाठ किया करते थे—सभी सभाओ मे करते थे।

हारू चाटुज्जे गरीब है। उनकी विधवा बेटी भवानी उनकी गर्दन का बोझ है। उन्हीकी बेटी है रमला। दरिद्रता के कारण उसका यौवन कुण्ठित नही था। अभाव को अग्राह्य करके भी, मिट्टी के नीचे के जल की तरह, वह उसके जीवन मे आया था। उसके साथ थोडा रूप भी था और उसने यही सीखा था कि किसी तरह, किसी दयालु व्यक्ति की रसना को यदि वह वर्ण अथवा गध के निमत्रण से सरस न बना सकेगी तो किसी दिन वृन्तच्युत होकर मिट्टी पर गिरकर मिट्टी मे ही मिल जाएगी। अतः उसने अशु का मनोरजन करने की कोशिश मे कुछ उठा नही रखा।

वह अगर ऐसा न करती तो अच्छा करती। शायद अशुमान किसी हृद तक उसके प्रति आकृष्ट होता। बीच-बीच मे रमला अपने आचल को गिराकर, अपने यौवन के लिए परेशान और शर्मिन्दा हो जाती थी और बार-बार कहती थी—बाबाः, बाबाः ! चूल्हे की आग, और क्या ! मर भी जाऊ तो मेरी रक्षा हो !

इस मामले मे गलती करने की उसकी बार-बार इच्छा हुई थी—मन मे गलती करने की एक प्रबल प्रवृत्ति होती है—वह तराजू के पलड़े

के उठने-गिरने की तरह स्वाभाविक होती है; लेकिन फिर भी अशु ने वह गलती नही की।

आज ऐसा जान पडता है कि अगर उसने उस दिन गलती की होती तो अच्छा होता, क्योकि आज वह जहा आ खडा हुआ है वहा न पहुच पाता।

अशु ने एक गहरी सास ली।

अतसी की शिक्षा ने उसे इस दिशा मे संयत बनाया था और हारू चाटुज्जे की कुत्सित दीनता और हीनता ने उसे लगातार उनकी नतिनी से दूर रहने को कहा था। नमिता ने उसकी सहायता की थी। उसने उसे पहले धीरे-धीरे आकर्षित किया था—फिर तेज़ी से और गहरे आकर्षण से।

उस बार वह देवग्राम मे बीस दिनो तक रहा था। बीस दिनो के बाद वह कलकत्ता लौटा था—बी० ए० मे प्रवेश पाने का तकाज़ा था। उसके साथ भाभी की बहने भी कलकत्ता लौट आई थी। उन्हे लिवाने के लिए अमिता-नमिता के बाद का उनका भाई आया था। वह शमिता से बडा था, पन्द्रह साल का, जाने कौन कुमार! भाभी के सभी भाई कुमार थे—अरुण, वरुण, तरुण। उसके बाद दो कौन कुमार थे, यह आज उसे याद नही रहा। बहुत पुरानी बात है। सन् १९५१ की—यह सन् १९६७ है। सोलह साल हो गए।

आने के दिन हारू चाटुज्जे ने उससे साफ-साफ कहा था—तुमसे एक बात कहू भैया? कुछ खयाल तो नही करोगे?

उसने कहा था—नही। कहिए। खयाल क्यो करूगा?

—रमला तुम्हे कैसी लगी?

—यह बात क्यो पूछते है? खासी अच्छी लडकी है रमला।

—खासी अच्छी, और भी अच्छी है रमला। यह तो बेचारी साज-सिंगार नही कर पाती। वह सब स्नो-पाउडर कहा से पाए, तुम्ही बताओ। इसके अलावा देहात की है न। उसे वह सब मिलता तो और भी भली लगती। इसके अलावा सेवा! क्या कहू तुमसे। माथे मे दर्द होने पर मैं कहता हू—रमि, मेरे माथे पर ज़रा हाथ तो फेर दे। क्या कहूं भाई,

उसका हाथ कितना नर्म और ठडा है। माथे पर हाथ रखते ही दर्द गायब हो जाता है और जब वह पैरो पर हाथ फेरती है तो बात की बात मे नीद आ जाती है। लेकिन तुमने तो यह सब करने ही नही दिया। मैंने उससे कह दिया था। लेकिन ··। रमि ने कहा—नाना, अशु दा वह सब नही चाहते।

थोडी देर चुप रहकर चाटुज्जे ने कहा था—तुमको वह प्यार करने लगी है। तुम उससे ब्याह कर लो न भाई!

इस बार कर्कश स्वर मे अशु ने कहा था—आप क्या इसीलिए उसको मेरे पास भेजते थे?

चाटुज्जे ने हुक्केवाला हाथ नीचे रखकर कहा था—हा भाई, ठीक है। भेजता इसीलिए था।

—छि.-छि.-छिः! बात के बीच मे ही उसने धिक्कार दिया था। लेकिन चाटुज्जे उससे लज्जित भी नही हुए, कुठित भी नही। हंसकर उन्होने कहा था—छि क्यो कहते हो भाई? आजकल तो कोर्टशिप का ज़माना आ गया है। तुम रमला के असगोत्र हो। रमला अच्छी लड़की है। शादी होने पर वह सुखी होगी—तुम्हे भी सुखी बनाएगी। तुम्हारा कोई दोष न देखेगी, माने उन पुरानी बातो की बखिया न उधेडेगी। इसके अलावा शादी के लिए हमारे पास रुपये नही है। तुम्हे तो किसी बात की कमी नही है। इसीसे मैंने उसे भेजा था। वे तो तुम्हारे भैया के श्वसुर है। सुनता हू, बहुत बडे आदमी हैं। उन्होने अपनी लड़कियो को भेजा था···।

बड़े कठोर ढंग से उसने कहा था—नही। वे यहा अपनी बहन के पास आई हैं।

इतना ही कहकर वह चला आया था। ठाकुरबाड़ी के सामने उस समय दो बैलगाड़िया सजी खडी थीं।

यदि वह रमला को अपने जीवन मे ग्रहण करता तो आज उसे यहा न आ खड़ा होना पडता।

अजीब लडकी है। उसने उसे सब देना चाहा था। अनावृत यौवन

सामने रखकर उसका आह्वान किया था। उसने कहा था—और शादी कर लेना तुम। मैं तुम लोगो की सेवा करूगी। दो शादिया तो तुम्हारे बाबू ने भी की थी।

उस दिन वह उसे ग्रहण नही कर सका। उस समय वह नमिता की ओर आकृष्ट था।

देवग्राम से लौटने के बाद टेलीफोन पर उनकी बाते होती थी।

पहली पुकार उधर से ही आई थी। नौकर उसे बोर्डिंग हाउस के आफिस मे बुला ले गया था। तरुण नारी के कठस्वर ने पहले उसे चौका दिया था।

चकित होकर उसने पूछा था—कौन ?

हल्की-सी हसी के साथ प्रश्न आया था—बताइए तो कौन हू ?

उसके मन मे दो नाम उभर आए थे। नमिता और अतसी। उसे मालूम हुआ था कि अतसी के यहा टेलीफोन लग गया है। उस समय भी अतसी मन से मिटी नही थी।

नमिता के कहा था—हार गए न ! मैं हूं नमिता।

—नमिता ?

—हा।

नमिता ने कहा था—एक सहेली के यहा से फोन कर रही हू। कैसे है ? आपने तो खबर भी नही ली।

अशुमान अप्रस्तुत हो गया था। बेवकूफो की तरह उसने कहा था—मैं कैसे खबर लेता बताओ ?

उधर से हसी की खिलखिलाहट सुन पडी थी। उसके बाद उसने कहा था—क्यो, टेलीफोन से या घर आकर···।

—तुम्हारे मा-बाप या भाई लोग अगर···

—कैसे नासमझ है आप ! ऐसा होता तो क्या वे हमे देवग्राम जाने देते ? बाबा, मा, भाई लोग कुछ खयाल न करेगे।

इसके कुछ दिन बाद सारी बातें और स्पष्ट हो गई थी। बडे भाई के श्वसुर ने उससे कहा था—मन लगाकर पढो। फार्गेट ऑल दोज़ पास्ट। समझे ? बीच-बीच मे आ जाया करो। समझे ? तुम बडे अच्छे

लग गए हो। वोल्ड यगमैन। यह और अच्छा लगता है कि तुमने दैट गाधीज्म की रस्मी खोल फेकी है।

इन्ही परिस्थितियो मे उस समय वह बालीगज जाता। उन लोगों के यहा चाय पीता। नामता, अमिता, शमिता और घर के दूसरे लोगो के साथ शोर-गुल करता। उनके गाने के साथ बासुरी वजाता। साहित्य की आलोचना करता। राजनीनि पर गर्मागर्म बहसे करता। भैया के श्वसुर ने उन्ही दिनो काग्रेस मे प्रवेश किया था। सन् १९५१ के जनवरी महीने मे भारतवर्ष का सविधान स्वीकृत हुआ। अतुल्य घोष बी० पी० सी० सी० के अध्यक्ष बने। डॉ० प्रफुल्ल घोष अपने दल-बल के साथ मत्रिमडल और काग्रेस, दोनो ही को छोडकर अलग हो गए। डॉ० विधानचन्द्र राय चीफ मिनिस्टर वने। दिल्ली मे आचार्य कृपलानी काग्रेस छोडकर निकल गए। उन्होने डॉ० प्रफुल्ल घोष आदि के साथ नया दल वनाया। बगाल मे सन् १९४८ मे कम्युनिस्ट पार्टी गैर-कानूनी घोषित हुई थी। चुनाव सामने था, इसलिए अभी-अभी उसपर से निषेधाज्ञा हटा ली गई थी। बाहर की दुनिया मे चीन मे कम्युनिस्ट क्रान्ति हो गई थी। च्याग काई शेक हटकर फारमोसा चले गए थे। अमेरिका सारी दुनिया को ऋण की एक के वाद एक लपेटन मे लपेटता जा रहा था। पाकिस्तान और भारत के मतभेदो की गर्मी का अत नही था। सन् १९४६ मे हिन्दू-मुसलमानो मे जो दगा हुआ था, उसका सिलसिला खत्म होकर भी खत्म नही होता। बगाल मे अन्न नही है, वस्त्र नही है, शासन नही है, शृखला नही है। समाज नही है, शास्त्र नही है।

इसी वीच नये सगठन के नाम से काग्रेस के दो तरफ दो दरवाजे खुल गए थे। एक ओर नये लोग आए है—दूसरी ओर के दरवाजे से पुराने लोग निकले जा रहे है। यह चर्चा भैया की ससुराल मे खासी सरगर्मी पैदा कर देती थी। वह आग की तरह जलने लगता था। उस समय वह काग्रेस से निकल आए लोगो के दल का हो गया था। बी० ए० मे प्रवेश लेकर वह छात्र-आन्दोलन के भीतरी घेरे के पास जा पहुचा था। वहा वह स्वतन्त्र था, लेकिन काग्रेस का विरोधी था।

× × ×

अजीब बात है। पृथ्वी की एक घटना के साथ एक और घटना, वह चाहे जितने दूर-दूरान्तर की हो, चाहे कितनी ही भिन्न जाति-जात्यतरो की हो, विचित्र रूप से अत्यन्त सूक्ष्म बन्धन से एक-दूसरे के साथ बधी होती है। नमिता के साथ उसका गोपन प्रीति का बन्धन न होता तो इन लोगो के साथ प्रचड विरोध हो जाता और स्टूडेट्स फ्रण्ट मे वह इडिपेडेट न रहता।

को-एजुकेशन का जमाना था। न तो गोरी-चिट्टी और तेज-तर्रार सहपाठिनियो की कमी थी, न सुकोमल और सलज्ज सहपाठिनियो की। फिर भी नमिता का आकर्षण उसके जीवन को नियन्त्रित कर रहा था। उस नमिता का आकर्षण ही उसे रमला के प्रलोभन से भी नही लुभा सका।

अजीब थी वह लडकी। आज के जैसे तीखी वेदना से भरे दिनो मे भी बार-बार उसकी याद आ जाती है। आज अगर वह उस सन्तान की जननी होती तो वह उसके पैरो पर लोटकर, दोनो पैरो को जकडे पडा रहता।

उसने उसे सब देना चाहा था। जीवन का सब कुछ।

जेठ के उस महीने से छ. महीने बाद। गणतान्त्रिक भारत का पहला चुनाव था। सारे देश मे हर उम्मीदवार को गाव-गाव मे, घर-घर मे, प्रत्येक व्यक्ति के पास जाना पडता था। भारतीय पुराणो मे वर्णित दस-बीस अश्वमेध या राजसूय यज्ञो मे भी इतना आयोजन-प्रयोजन नही हुआ था। और इतना पोलिटिकल मतभेद भी कहा था ?

देवग्राम काग्रेस से एक भिन्न भाषा-भाषी, धनी व्यवसायी खडे हुए थे। उनके खिलाफ तीन और आदमी खड़े हुए थे—प्रजा सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट और एक स्वतन्त्र।

उसके दोनो भाइयो ने काग्रेस का समर्थन किया था। ताऊ के लड़को ने भी। इसी बीच काशी से उसकी मा देवग्राम आ पहुची। वे भी काग्रेस का ही समर्थन कर रही थीं। वे सेठ जी स्वय काशी जाकर उन्हे ले आए थे। काग्रेस-अध्यक्ष का अनुरोध-पत्र लेकर गए थे। देवग्राम इलाके

के लोगो ने इसका विरोध किया था—काग्रेस का उम्मीदवार होने के कारण क्या हम लोगो को एक परदेशी का समर्थन करना पडेगा ? इसी कारण से मा आ खडी हुई। स्वर्गीय निरन्जन चौधरी की सहकर्मिणी और सहधर्मिणी। खबर पाकर पी० एस० पी० का समर्थन करने के लिए वह जा पहुचा था।

पहुचकर वह विपत्ति को समझ सका था। आने मे विपत्ति है, यह जानकर ही वह आया था, लेकिन विपत्ति कितनी बडी है, इसका अनुमान वह न कर सका था।

उसका जो मकान था, उसमे मा आकर ठहरी थी। उसके भाई भी काग्रेस के समर्थक थे। वह कहा ठहरेगा ? क्या वह मा से कहेगा, घर छोड दो ?

उसके उम्मीदवार ने कहा था—देवग्राम मे हम लोगो का एक आफिस है। वही आकर ठहरिए। न हो, चलकर मेरे घर पर रहिए। देवग्राम मे हारू चाटुज्जे के घर के बाहर वाले दो कमरे लेकर हम लोगो ने अपना आफिस बनाया है।

विचित्र है घटनाओ का जमाव। राजनीति और अर्थनीति के दो स्रोत जब मिल जाते है तो फिर खैरियत नही रहती। अर्थनीति चाहे जिस उपाय से पेट के अन्न का जोगाड करे, राजनीति बात की बात मे उस अन्न को ग्रहण करने अथवा देवता को निवेदित करने का मन्त्र तैयार कर देता है।

हारू चाटुज्जे एलेक्शन मे अपना मकान किराये पर देकर एकबारगी पी० एस० पी० के समर्थक हो गए है। ऐसा नही कि पहले चाटुज्जे की कोई राजनीति नही थी, इससे पहले तक वे हिन्दू महासभा के प्रबल समर्थक थे। इस बार यहा हिन्दू महासभा का कोई उम्मीदवार न होने से पहले की राजनीति बेकार हो गई थी। अचानक मकान किराये पर देकर पहले तो वे परोक्ष समर्थक थे, फिर प्रत्यक्ष समर्थक हो गए, क्योकि वहा जो कार्यकर्ता रहते थे, उनका खाना-पीना चाटुज्जे के घर मे, उन्हीकी रसोई मे बनता था। चाटुज्जे की स्त्री और बेटी भवानी खाना बनाती

थी। नतिनी रमला तो शायद पी० एस० पी० की पूरी-पूरी सदस्या ही बन गई थी। वह पलटकर खद्दर की साडी पहनने लगी थी और अत्याधुनिका की तरह देवग्राम की ध्वजाधारिणी हो गई थी। वह नारे लगाती थी। घर-घर मे औरतो के पास जाती थी—खास तौर से व्रात्य मुहल्ले की औरतो के पास।

विचित्र घटना-सयोग से उस दिन वह चाटुज्जे के घर जाकर ही रात-भर के लिए ठहरा था।

रमला का चेहरा चमक उठा था।

—अशु दा!

अशु को परेशानी हुई थी। रमला के मुह की दीप्ति ने उसे चैन की सास नही लेने दी। उद्धत यौवना रमला मानो उसी क्षण, आग के सामने जल उठनेवाली वस्तु के समान चचल हो उठी थी।

हारू चाटुज्जे उस दिन घर पर नही थे।

रमला ने उसे बाहर के कमरे मे नही रहने दिया। उसे अन्दर हारू चाटुज्जे के सोने के कमरे के बगल मे ठहराया था। पुराने ज़माने के टूटे दुतल्ले घर मे डेढ के लगभग कमरे रहने-बसने के लायक थे। उनमे भी वह आधावाला कमरा सबसे अच्छा था। पहले तो वह उस कमरे मे जाने को राजी नही हुआ, लेकिन बाहरवाले दो कमरो मे चुनावकार्य-कर्ताओ ने समाज-तान्त्रिक व्यवस्था की प्राथमिक अवस्था को ऐसे सार्थक रूप से स्थापित कर दिया था कि उसे बर्दाश्त करना उसके लिए सम्भव नही हुआ। बीडी के टुकडे और एक गुमस-भरी गध, उसके बाद चौकी बजाकर किया जाता शोर देखकर, वह कमरे मे घुसते-घुसते थमककर खडा हो गया था। इसी समय घर के अन्दर से रमला दौड आई। अशु दा!

उसके बाद उसने कोई बात नही सुनी, कुछ कहने नही दिया, खुद भी कुछ नही कहा, अपने-आप सूटकेस उठाकर सोलह-सत्रह साल के एक लडके से कहा—ले, तू विस्तर उठा ले।

उसके बडे भाई बुलाने आए थे।

छोडो उन बातो को ।

एकदम से धकापेल करती याद आ रही है उस रात की बात । गहरी रात होने पर भी वह जागा ही हुआ था । जाने कैसे एक अनजान आतक ने दु स्वप्न की तरह उसे घेर रखा था । वह सोच रहा था—वह क्यो आया ? बार-बार नमिता की याद आ रही थी ।

शैपू किए केश, चेहरे पर पाउडर की धूसरता, आखो मे काजल की रेखा और होठो पर लिपस्टिक का आभास । तन्वी तरुणी नमिता सिर्फ सितार ही अच्छा नही बजाती, नाचती भी खासा अच्छा है । पूजा से पहले अपने स्कूल के सोशल मे, 'श्यामा' नृत्य-नाटिका मे उसने श्यामा का अभिनय किया था । अशुमान ने वह अभिनय देखा था और उसके बाद किसी दिन नमिता को चित्रागदा की भूमिका देकर स्वय अर्जुन की भूमिका मे अभिनय करने की कल्पना उसने कितने दिनो तक की, इसका कोई हिसाब नही है । नमिता यह बात जानती है । नमिता के साथ उसकी अन्तरगता धीरे-धीरे प्रेम के घेरे मे जा पहुंची है, पहली बार उसे इसका अनुभव उसी रात को हुआ था । एक-दूसरे के चेहरे की ओर देखते हुए अनुभूति का जाने कैसा एक स्पर्श लगता है, एक-दूसरे के हाथ से हाथ के छू जाने पर किस तरह उगलिया काप उठती है, बीच-बीच मे किसी मेज़ के आमने-सामने बैठकर बाते करते हुए अचानक पैरो से पैर के छू जाने पर अगूठा चचल हो जाता है—यही सारी बाते वह याद कर रहा था । इसी बीच, रात जब गहरा गई थी, बाहर सारा गाव निस्तब्ध था, केवल अग्रहायण की रात के अन्तिम प्रहर मे एकाध कुत्ता चौंक उठता था और आम के बगीचे से झिल्ली की झकार सुन पडती थी, अचानक उसके दरवाजे के बाहर आवाज़ हुई थी—ठक् । फिर ठक् । फिर ठक्-ठक् ।

ज़जीर दरवाजे से लग रही थी ।

उसका कलेजा धक्-धक् कर रहा था । सारे शरीर मे उत्तेजना का एक प्रवाह बह गया था ।

आज भी याद आता है । एक जैसी दो विरोधी शक्तिया उसके जीवन के दोनो छोरो को पकडकर खीच रही थी । एक के खिचाव से वह आखे फाडकर, पावो की आहट बचाता, दरवाज़ा खोल देने के लिए दरवाज़े

की ओर जाना चाहता था और दूसरी ओर उसी जैसी शक्ति ने उसे बिस्तरे पर निष्क्रिय करके डाल रखा था। उसका सारा अन्तर, सारा बाहर मानो बिलकुल लुप्त और शून्य हो गया था। बच रहा था उसके हृदय की धडकन के बीच एक असहनीय उद्वेग। जाडे की रात थी, फिर भी उसकी देह पसीने-पसीने हो उठी थी।

आखिर दबी आवाज मे रमला ने उसे पुकारा था—अ–शु–दा! अशु–दा! दबे गले की फैलाई हुई सावधान आवाज़।

फिर भी उसने दरवाज़ा नही खोला।

क्यो नही खोला, यह प्रश्न उसने उस दिन नही किया था। उस दिन वह प्रचड शका से शकित था कि दरवाजा खोल देने पर वह आत्म-सवरण न कर पाएगा। रमला उसके कलेजे पर लोट पडेगी और समुद्र की लहरो के बीच कूद पडने पर समुद्र जैसे उसको निबिड भाव से आत्म-सात् कर लेता है, ठीक उसी तरह उसको आत्मसात् करने से वह किसी तरह अपने को रोक न पाएगा, यह वह अच्छी तरह जानता था। वह यह भी जानता था कि उसके बाद रमला से विवाह किए बिना किसी तरह उसका छुटकारा न होगा। हो सकता है कि तुरत ही रमला की मा और उसकी नानी आकर दरवाज़े पर धक्का देने लगे अथवा कमरे के दरवाज़े की ज़जीर लगाकर गाव के लोगो को इकट्ठा कर दे।

सारी रात वह काठ होकर खडा रहा था। कह नही सकता कितनी देर, लेकिन वह रात जैसे एक युग थी अथवा अनतकाल की अन्तहीन रात्रि की एक रात्रि थी। उस रात्रि का भी कोई अन्त नही था। और उसके एक टुकडे की लम्बाई की भी कोई माप-जोख नही थी। इसी बीच रमला कब वहा से चली गई थी, इसका पता भी न चला।

दूसरे दिन दोपहर को सिर्फ एक बार आकर वह उससे कुछ बातें कह गई थी।

—कल रात को दरवाज़ा क्यो नही खोला?

वह चुप रह गया था।

रमला ने कहा था—मैं तुमको ··

आगे वह कुछ न कह सकी थी। ज़रा देर बाद उसने कहा था—

अशु दा, तुम मुझसे शादी कर लो। दया करके शादी कर लो। मुझसे शादी करके तुम मुझे इसी गाव के घर मे छोडकर कलकत्ता से अमिता-नमिता या जिससे जी चाहे शादी करो, मैं कुछ न कहूंगी।

वह फिर भी चुप बना रहा था।

रमला ने कहा था—नाना मेरा ब्याह एक बूढे से कर देगे।

उसने फिर भी कुछ नही कहा।

रमला ने कहा था—देखो, इस गांव मे तुम्हारे भाइयो से लेकर सब छोकरे तक जानवरो की तरह मेरे पीछे लगे हुए है। वे मुझे फाड खाना चाहते है। तुम मुझे बचा लो।

इस बार उसने कहा था—नही, यह नही हो सकता।

—नही हो सकता? अच्छा! कहकर जाते-जाते वह लौट पडी थी। उसने कहा था—फिर भी आज रात को दरवाज़ा खोल देना। अगर मुझे डूबना ही है तो पहले मैं तुम्हीमे डुबकी लगाऊगी। डरो मत, उसके लिए कोई कीमत न चाहूगी।

किसी औरत से ऐसा दुस्साहसपूर्ण आत्मदान का प्रस्ताव उसने नही सुना था। अजीब औरत थी वह!

लेकिन उस रात अशु वहा नही ठहरा। शाम को मीटिंग के लिए निकला तो उसी उम्मीदवार के साथ, उसकी जीप से रात दस बजे वह वर्धमान जा पहुचा। रात को वर्धमान मे रुककर वह सवेरे की लोकल से कलकत्ता लौट आया था। एलेक्शन की पूरी अवधि मे वह फिर देवग्राम नही गया।

इसी बीच अचानक उसे एक निमन्त्रण-पत्र मिला था। हारू चाटुज्जे ने रमला के विवाह का निमन्त्रण-पत्र भेजा था। रमला का विवाह गोपग्राम के हरिधन घोषाल के साथ हो रहा है—कुछ ही दिनो बाद, माघ महीने के दूसरे सप्ताह मे।

भाभी ने पत्र लिखा था—रमला की शादी हो गई, गोपगाव के हरि घोषाल के साथ। हालत काफी अच्छी है। डेढ-दो सौ बीघा जमीन है, पोखरा है, अच्छी सम्पत्ति है। सिर्फ उसकी उम्र जरा कडी है। बावन-चौवन तो होगी ही, कुछ लोग कहते है, ज्यादा होगी। होगी तो

हो। उसने रमला को बहुत गहने दिए है। भर देह पुराने जमाने के भारी-भारी गहने पहनकर रमला ठाकुरबाडी मे प्रणाम करने आई थी। बडी खुश थी। उसने कहा—भाभी, अशु दा को लिख तो देना कि मैंने कितने गहने पाए है। इसके अलावा पहले घर के लडके बहुओ को अलग करके मुझे अलहदा सम्पत्ति दे रहा है। लडकी तुम्हे बहुत तग किया करती थी, इसीलिए तुम्हे लिख रही हू। लेकिन तुम मन लगाकर पढो। 'लिखा-पढी मे जो मन लावे, नमि को शायद वह ही पावे।' समझे? बाबा ने कहा है।

तब सन् १९५२ शुरू ही हुआ था।

किसी अध्यापक विद्वान के द्वारा 'धर्षिता' शब्द को लेकर सीता के चरित्र की अद्भुत व्याख्या के चलते उसके जीवन का एक मोड घूम गया। उसका प्रतिवाद करके वह प्रसिद्ध हो गया। कविता और गीत वह लिखा करता था—इस बार इस प्रसिद्धि का सूत्र पकडकर कागज़ के पन्नो पर आत्मप्रकाश करने लगा।

उन दिनो उसकी सारी कविताए नमिता को लेकर लिखी जाती थीं। उसे याद है, एक कविता मे पुराने ढर्रे पर, ऊपर से नीचे की ओर प्रत्येक पक्ति के पहले अक्षर को जोडकर 'नमिता मेरी नमिता' लिखा गया था।

'नदी दौड जाती है सागर के प्रेम मे विभोर
मित-जैसा तट पास-पास ही रहता उसकी ओर
ताकत हो, वह भी बध जाए किसी प्रेम की डोर
मेरे ये तट बाध रखेंगे उसको अपनी ओर।'

इसी तरह लिखा गया था 'नमिता मेरी नमिता।' उसने टेलीफोन पर नमिता से कहा था—कविता को पढ देखो। उसमे क्या है, यह तुमको बतलाना पडेगा।

नमिता ने ठीक पहचान लिया था।

उसने उसे झिडकी दी थी। कहा था—यह सब क्या हो रहा है?

—क्या?

—जाओ, मैं नही जानती। लेकिन फिर भी यह सब मत करना।

—क्यो?

—देखना, हमारे भाई लोग लाठी लेकर निकल पडेगे। नमिता हस पडी थी। हसी रोककर उसने कहा था—छोटी दी जान गई है। 'नमिता मेरी नमिता'। समझे?

—कोई कुछ कह रहा था क्या?

—कहा नहीं, लेकिन कहेगे। अब यह सब न करना।

जिसको जो कहना है, कहे; अशु रुका नही। उसने गीत लिखा था।

लम्बे चार बरसो के बाद अचानक एक दिन शिवकिंकर आ पहुचा था। जिस पत्रिका मे उसका गीत छपा था, वह उसके हाथ मे थी।

उसने बहुत नाराज होकर कहा था—तुम?

वह हसकर बोला था—हा, मैं।

—तुम क्यो आए?

—ओ! तेरा गुस्सा अभी तक नहीं गया?

वह चुपचाप दूसरी ओर देखता रहा था—कुछ बोला नही था।

—अतसी ने तुझे बुलाया है।

—नही, तुम यहा से चले जाओ।

शिवकिंकर कभी नाराज नही होता। उसने कहा था—जाऊगा; लेकिन अतसी ने एक मकान के लिए भेजा है। मैं लौट जाऊगा तो वह खुद आएगी।

इस बार उसे पूछना पडा था—क्या काम है?

—यही गीत। यह तेरा लिखा हुआ है?

—हा, मेरा ही है। एक बात और—तेरा नही, तुम्हारा, तू नही तुम कहकर बाते किया करो।

—अच्छा, ऐसा ही कहूगा। इस गीत का 'राइट' अतसी खरीदेगी। क्या लोगे तुम?

वह अवाक् हो गया था। गीत के राइट के लिए रुपये?

शिवकिंकर ने कहा था—अतसी एक फिल्म बनाएगी, यानी प्रोड्यूस

करेगी। गीत खरीदेगी। और भी कुछ गीत लिख देने को कहा है।

उस समय कॉलेज का चौथा साल था। अतसी ने एक बार फिर जीवन को एक मोड दिया। उसने अतसी को प्यार किया था—उस प्यार के उच्छ्वास को उसने अपने काव्य मे अभिव्यक्ति दी थी, इसीसे अतसी ने आदरपूर्वक उन गीतो को खरीद लिया। चार गीत लिखकर उसने चार सौ रुपये पाए थे। किसी कवि की आरम्भिक रचनाओ के खयाल से यह कीमत कम नही थी। उसके साथ उसे प्रतिष्ठा मिली थी, प्रसिद्धि मिली थी।

उदर आहार चाहता है, भरपेट भोजन; उसके साथ रसना चाहती है रस का आस्वाद। देह को देह की निकटता की ज़रूरत होती है; उसके साथ हृदय चाहता है प्रेम का स्पर्श। नही तो भोजन भी सत्य नही होता, देह के मिलन से भी तृप्ति नही होती। उसके बदले होता है क्षोभ।

अतसी की देह के स्वाद ने किसी समय उसे पागल बना दिया था; लेकिन अतसी की प्रेमहीनता ने उसके निकट उस स्वाद को कडवा बना दिया था।

उस कडवाहट की याद ने ही उसे रमला की देह का स्वाद नही लेने दिया। अपनी ओर से लोभ उसे था। उसके शरीर के स्नायु, शिराएं, रक्त चचल हो उठे थे, लेकिन उसके हृदय और मन ने उसे पकड रखा था, बाध रखा था।

उस समय वह नमिता के प्रेम मे भूला हुआ था। विचित्र था उसका स्वाद। देह के स्वाद से भी शायद उसका स्वाद मीठा था।

इस समय उसे पुराण के दो नाम याद आ गए।

दैत्यराज की कन्या शर्मिष्ठा और दैत्य गुरु की कन्या देवयानी। देवयानी ने शर्मिष्ठा को खरीदी हुई लौंडी बनाया था। राजा ययाति से विवाह करके देवयानी राजपुरी मे आई थी—साथ आई थी शर्मिष्ठा, उसकी क्रीतदासी होकर। लेकिन शर्मिष्ठा ने प्रेम के बल से राजा को जीत लिया था। देवयानी ने धर्मपत्नी होकर भी उन्हे नही पाया।

शर्मिष्ठा प्रेम थी—देवयानी मानवी देह। विवाह तो मनुष्य एक मानुषी से उसकी देह के लिए ही करता है। उसका रूप, उसका यौवन ही तो उसे आकर्षित करता है।

सन् १९५२ का अन्त था। उसके चारो गीतो के रेकार्ड बन गए थे

प्रातरश्मि मे विकसित सुमन समान
जो जन होगा धन्य प्रेम से मेरे।
अग अग से रत्नाभूषण देगा सभी उतार
बढकर मेरी माला लेगा निज ग्रीवा मे धार।

—यह गीत हिट् हो गया था।

नमिता के घरवालो के बीच इस गीत की बडी प्रशसा हुई थी। प्रशसा और भी बहुत-से घरो मे हुई थी, लेकिन नमिता के यहा जो प्रशसा हुई थी, उसकी कीमत अलग थी। अमिता, शमिता और उनके साथ नमिता ने भी, सितार रखकर, इस गीत का रेकार्ड बजाकर गाना सीख लिया था।

उस घर की बहुओ मे भी उसकी ख्याति आश्चर्यजनक रूप से बढी थी। बड़े भाई की सास बहुत गम्भीर थी। खूब हिसाबी महिला। उन्होने भी कहा था—हा अशु, लोग तो तुम्हारी बडी तारीफ कर रहे है। मेरी एक फुफेरी बहन है, मुझसे छोटी। उसे इन सब बातो का बडा शौक है। जानते हो, कालिदास राय, कुमुद मल्लिक, प्रेमेन मित्तिर, और भी जाने कितने लोगो को वह पत्र लिखती है। बीच-बीच मे काजी नजरुल इस्लाम के घर जाकर फूल वगैरह दे आती है। वह कह रही थी, गीत अच्छे बन पड़े है और रेकार्डों की बिक्री भी क्या खूब हो रही है। खूब! अच्छा तो तुम्हे क्या मिला? कह रही थी, उन्हे शायद सस्ते ही निबटा दिया गया है। कमीशन की बात होती तो ब···हू···त रुपये मिलते। तो अब से तुम बाबू की सलाह लेना। समझे? व्यवसायी आदमी है, उनको फाकी देना आसान नही है।

दुनिया अजीब है।

किसी एक आदमी के सम्बन्ध की किसी एक छोटी-सी घटना पर भी सारी दुनिया की घटनाओ की छाप पडती है ।

नमिता के पिता खुश नही हुए । ठीक इसी समय वे ऊपर से नीचे खिसक रहे थे । उसे देखकर उन्होने कहा था—अरे तुम ! कल से तुम्ही लोगो की बाते सोच रहा हू । तुम्हारी बात, तुम्हारे भैया की बात । तुम्हारे भैया तो वकील होकर भी कुछ नही कर सके । घर से चावल ले जाकर वर्धमान मे खाते हैं । तुम भी जाने क्या गीन-वीत लिखा करते हो । उधर काग्रेस ने जमीदारी खत्म करने का निर्णय किया है । किसी ओर कोई रास्त न पाकर उन्होने कहा, लो, ये जमीदार बेटा लोग तो है—निहायत पुराने जमाने के ब्याहे परिवार की तरह—उनके पास जो कुछ है, उसे छीन-झपटकर दिखला दो कि देशसेवा कैसी होती है । रविश ! जमीदारी चली जाएगी तो तुम लोगो का निर्वाह कैसे होगा ? यह सब गीत-वीत लिखना छोडो । अच्छी तरह इम्तहान पास करो । हाइ लेवेल के एक अफसर हो जाओ ।

काग्रेस जमीदारी खत्म कर रही है, यह खबर उसे नमिता के पिता से ही मिली थी । लेकिन उससे उसे यह प्रेरणा नही मिली थी कि सिर-तोड परिश्रम करके बी० ए० की परीक्षा मे अव्वल आए । उसके बदले एक विचित्र सूत्र से दो अति विचित्र घटनाओ की जानकारी पाकर पहले उसने एक कहानी लिखी थी—उससे जी नही भरा तो फिर उसीके आधार पर एक एकाकी नाटक लिख डाला ।

उसे एक घटना मालूम हुई थी डॉक्टर सेन से । नमिता की एक सहेली के चाचा थे वे । उत्तरी और दक्षिणी कोरिया के युद्ध मे भारतीय मेडिकल मिशन के साथ गए थे । नमिता ने उससे कहा था, उसकी सहेली उससे बाते करना चाहती है—उसी रेकार्ड के बारे मे । उसने चाय पर बुलाया था । वहा जाकर उसके डॉक्टर चाचा से मुलाकात हुई थी । दरिया-दिल आदमी थे । मतवाद की दृष्टि से या तो कम्युनिस्ट थे या अमेरिकी । मोटी बात, इस देश के आदमी किसी तरह नही थे । जो भी हो, बाते खूब करते थे । अशु कहानिया लिखता है, यह जानकर बातो-बातो मे फ्रायड का जिक्र आया और उससे डॉ० गिरीन्द्र शेखर बोस की

चर्चा चल पडी । डॉ० सेन ने अपनी निजी जानकारी मे डॉ० वोस की चिकित्सा से सम्बन्ध रखनेवाली एक विचित्र घटना सुनाई ।

अजीब है दुनिया का मकड-जाल । उसके गीत के सूत्र से उसे नमिता की सहेली ने बुलाया था और उसके चाचा के साथ उत्तरी-दक्षिणी कोरिया का सूत्र पकडकर उसको एक जमीदार के लडके और एक नर्स की विचित्र कहानी सुनने को मिली थी । नर्स को एक जमीदार के लडके की सेवा करनी पडी थी एक कठिन रोग मे । उसके साथ प्रेम का अभिनय करके उसे अपने प्रति आकृष्ट करना पडा था । लाभ उससे हुआ था, लेकिन नर्स उसके प्रेम मे पड गई थी । नर्स बडी प्रगल्भा और स्वैरिणी थी । यह अपवाद बिलकुल गलत भी नही था । तरुण डॉक्टरो के साथ प्रेम का खेल खेलना उसका एक प्रकार का विलास अथवा प्रकृति-धर्म था । काफी बडे पारिश्रमिक के बदले उसने यह काम स्वीकार किया था । लेकिन इस बार का उसका प्रेम खेल नही था, नर्सिग का अग था । यानी उस मानसिक व्याधिग्रस्त लडके को विश्वास दिलाना पडा था कि वह सचमुच उसके प्रेम मे पड गई है । घटना की विचित्रता यह थी कि उस मानसिक व्याधिग्रस्त तरुण के साथ प्रेम का नाटक खेलने जाकर इस बार वह सचमुच प्रेम मे पड गई । वह लडका अच्छा हो गया । नर्स ने अपना पारिश्रमिक तो लिया, लेकिन आसुओ मे डूबकर लिया । और उसके बाद वह कहा चली गई, यह किसीको मालूम न हो सका ।

उसने एक दूसरी कहानी सुनी थी नमिता के घर पर। उसीके दूर के रिश्तेदार के घर की एक मर्मातक कहानी ।

कलकत्ते से दक्खिन एक उन्नतिशील घर का एक लडका । एक लडका कहने मे ही सारी बात नही कही गई । वह उस घर का एक-मात्र उत्तराधिकारी था । जवानी की उम्र, गोरा रग, पढाई-लिखाई मे तो साधारण ही था, लेकिन बासुरी बजाना और गाना बहुत अच्छा था। घर मे एक विधवा बहन के सिवा और कोई न था । साल-भर पहले लडके की शादी हुई थी । शादी के बाद वर वधू नाव से आ रहे थे । लडके की बहन ने इन्तजाम किया था कि रोशनी जलाकर, बैंड और बैग पाइप के साथ बारात को गाव मे घुमाकर घर लाएगी और वरण

करेगी। उस दिन थी कालरात्रि। वर-वधू मे परस्पर देखा-देखी नही होनी चाहिए। इसलिए दो पालकियो का इन्तजाम किया गया था। लेकिन तीसरे पहर आधी-पानी आ जाने के कारण वर-वधू की नाव के पहुचने मे थोडी रात हो गई थी और आधी-पानी के चलते गाव का रास्ता ऐसा गडबड हो गया था कि कलकत्ते के दक्खिन के गगा-धार के किनारे-वाले गाव का रास्ता फिसलन-भरा हो गया था। इसलिए बहन ने यह इन्तजाम किया कि दो अलग-अलग नावो पर, सतर्क पहरे के बीच, वर-वधू घाट पर ही रहे, क्योकि वह रात कालरात्रि थी। उन्होने यह तय किया कि सवेरे रोशनी छोडकर गाजे-बाजे के साथ वर-वधू को गाव मे घुमाते और देवी-देवताओ के दरवाजे-दरवाजे प्रणाम कराते घर ले आएगी। लेकिन रात मे इस नाव पर वर और उस नाव पर वधू इस बीसवी शती के इक्यावनवे वर्ष मे कालरात्रि का विरह मानने को तैयार नही थे। उनकी आखो मे नीद नही थी—वे जागे बैठे थे। आसमान मे पूर्णिमा का चाद खिला हुआ था। नदी मे ज्वार आया हुआ था। नाव के और लोग जब सो गए तो दोनो नावो के किनारेवाले हिस्से पर दोनो आ खडे हुए। दूल्हा बासुरी बजा रहा था, बहू हल्की आवाज मे गाना गा रही थी। ज्वार की लहर-लहर पर दोनो नावे पास-पास हिलती-डुलती मानो ताल दे रही थी। एक बार दूल्हे ने उसे पुकारा था—मेरी नाव पर आ जाओ।

बहू की नाव कालरात्रि मे मिलन के लिए उपयुक्त नही थी। बहू के साथ उसके मायके की एक नौकरानी थी और दूल्हे के घर से आई दो औरते रात मे बहू को अगोर रही थी, जो रिश्ते मे दूल्हे की बहन होती थी। उनमे एक अधेड उम्र की थी।

'मेरी नाव पर आ जाओ' कहकर दूल्हे ने हाथ बढ़ा दिया था। दोनो नावे बिलकुल पास-पास थी। दोनो के दो किनारे एक-दूसरे से सटे हुए थे। लेकिन दुर्घटना होती है आश्चर्यजनक और अभावनीय रूप से। जिसे सोचा भी नही जा सकता, वही हो जाता है, इसीलिए अनिवार्य रूप से दुर्घटनाएं हो जाती है। बहू ने दूसरी नाव पर जाने के लिए जिस क्षण अपना एक पाव उठाया था, ठीक उसी क्षण एक बडी लहर आई।

दोनो नावे एक-दूसरे से टकराकर उलटी दिशा मे दूर हट गईं और बहू 'ओ जी !' कहकर एक भयानक चीख के साथ ज्वार के तूफान मे गिर गई। साथ ही साथ अपनी बासुरी फेककर वर भी पानी मे कूद पड़ा। उसके बाद माझी-मल्लाह भी पानी मे कूदे। शोर-गुल हुआ। हलचल मच गई। नतीजा यह हुआ कि दूल्हा तो बेहोश हालत मे मिल गया, लेकिन बहू को नही पाया जा सका। एक दिन बाद धारा के मोड पर उसकी लाश मिली।

दूल्हे को भी कलेजे मे गहरी चोट लगी थी, मगर वह बच गया। लेकिन वह बचना नाम के लिए ही था। उसका शरीर टूट गया था, मन अस्वस्थ था। उसका खयाल था कि उसकी बहू की आत्मा भटकती फिरती है और उसे पुकारती है। 'ओ जी, ओ जी' की वह पुकार वह सुन पाता है। वह कान लगाए रहता है। इसी तरह दिन बीत रहे थे। उस दिन अचानक वह मर गया। इस मृत्यु मे भी थोडी विचित्रता थी। विचित्रता न कहकर उसे दूल्हे के अस्वस्थ मन के सस्कारो की अनिवार्य परिणति कहना ही ठीक होगा। साल-भर पहले की उस कालरात्रि का एक बरस जिस दिन पूरा हुआ, उस दिन उसने बहन से कहा—आज रात को बहू जरूर आएगी। वह सज-सवरकर, वासर सजाकर, अपने शयन-कक्ष मे बैठा बासुरी बजाएगा। उसका दृढ विश्वास था कि उसकी बासुरी सुनकर उसकी बहू की आत्मा आएगी और सभवतः उसे साथ ले जाएगी।

किसीकी कोई मनाही उसने नही मानी। डॉक्टर के मना करने पर भी उसने बासुरी बजाई थी और उसके फलस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई।

आज हो या कल, यह घटना घटकर रहेगी, यह प्रायः निश्चित रूप से स्थिर था। लेकिन वह इस तरह घटेगी, ऐसा किसीने नही सोचा था। इसमे मानो अनिवार्यता के दुःख से कुछ अधिक था, जिसने ऐसी करुण घटना को भी सुन्दर बना दिया था।

ये दोनो घटनाए दिन-रात मन मे चक्कर काटती हुई एक-दूसरी से मिल गई थी। एक की याद आते ही, दूसरी याद आ जाती थी।

परिणामस्वरूप एक की जंजीर को दूसरी की डाल से बाधकर एक अपूर्व रोमाटिक कहानी बनाकर पहले उसने एक गल्प के रूप मे प्रकाशित कराया था—फिर उसीसे एक एकांकी नाटक लिख डाला था।

उससे एकाकी लिखवाया था शिवकिंकर ने।

उसके जीवन से वह आश्चर्यजनक रूप से जुडा हुआ है। वह उसे बुलाता नही, उसे पसन्द नही करता, फिर भी वह आता है, अपने-आप आता है। अतसी की खबर ले आता है, अतसी के अनुरोध की बात कहता है। अतसी उसके अतीत जीवन के बीते दिनो का पाप है। वह जितना ही उसे पीछे छोडकर आगे बढ जाना चाहता है, वह उतनी ही उसके पीछे लगी चली आती है और शिवकिंकर के जरिये उसे बुलाती है, उसे पकडती है। इधर नमिता उसका नया काल है। नही ··गलत। नमिता नया काल नही है, छद्मवेशी काल है, छिपा हुआ नया काल है। नये काल के रूप मे आकर वह उसे उसी पुराने काल मे ले जाती है। उसके बाप-भाई वगैरह लडाई के समय के काले बाजारिये थे। फिर स्वाधीनता के बाद कुछ दिन चुप रहकर, शक्ल बदलकर वे आज प्रगतिशील हो गए है।

अतसी ! अतसी पाप है। नही, पाप यानी 'सिन' नही। सिन मे उसका विश्वास नही है। विश्वास उसका 'क्राइम' (अपराध) नही है, लेकिन क्राइम को वह मानता है। अतसी क्राइम तो है ही, क्राइम से भी कुछ ज्यादा है। फिर भी पाप ही अतसी का एकमात्र विशेषण है। नमिता उससे भी ज्यादा है।

उसकी वह कहानी पढकर अतसी ने शिवकिंकर को भेजा था—कहानी को वह फिल्म के लिए खरीदेगी।

नमिता ने उससे कहा था—तुम उसका नाटक बनाओ। दूल्हे का पार्ट तुम करना और नर्स तथा बहू का पार्ट मैं करूगी। छिपाकर करूगी। समझे ? अपने घर के किसीको पता न चलने दूगी। एक छोटा-सा हॉल किराये पर लेकर ·।

लेकिन वह नही हुआ। उसके बदले जो कुछ हुआ, उसके परिणामस्वरूप उसका जीवन, सीधे ढाल के रास्ते मूल गगाधारा की तरह बह

गया था, जिसे देश के लोग 'कीर्तिनाशा की धारा' कहते है, लोक-परंपरा से जिस धारा के बारे मे कहा जाता है कि उसमे स्नान करने से पुण्य-क्षय होता है।

अचानक नमिता ने जीवन-धारा का सिलसिला बदल दिया। इधर नमिता के घर से बाहर भी दोनो की मुलाकात होती थी। वह जो डॉ सेन की भतीजी थी, नमिता की सहेली, उसीके घर पर मुलाकाते होती थी। बीच-बीच मे, दोपहर के शो मे, सिनेमा-हॉल मे भी होती थी। टेलीफोन रोज होता था, किसी दिन सुबह-शाम दोनो वक्त। अचानक एक दिन अशुमान को पता चला कि कल नमिता ने एक बार भी टेलीफोन नही किया। वह खुद टेलीफोन करे, इसका कोई ठीक उपाय नही था, क्योंकि वह किसको टेलीफोन करेगा ? क्या कहेगा ? इस आधुनिक धनी के घर का बन्धन वहा ज्यो का त्यो है।

टेलीफोन अगले दिन भी नही आया। तीसरे दिन शाम को किसी बहाने भाई की ससुराल जाकर उसने देखा था, लगभग सारा घर खाली है—प्राय. सभी लोग देश-भ्रमण के लिए चले गए है। उत्तरी सीमा के श्रीनगर से दिल्ली-आगरा के चारो ओर का सारा इलाका उनके भ्रमण के अन्दर आ जाएगा। हरद्वार, मथुरा, वृन्दावन, इन सब जगहो मे भी वे लोग जाएगे। उधर पुष्कर, कुरुक्षेत्र, सावित्री तक भी जा सकते है। एक अच्छा-सा सुयोग आ जुटा था। सारे भारत के रेल-विभाग के एक चित्रगुप्त-जातीय कर्मचारी सपरिवार भ्रमण करने जा रहे थे। नमिता के पिता उनके मित्र थे। ट्रक पर उनके साथ रोजी-रोजगार की बाते करते हुए, इस भ्रमण की बात जानकर उन्होने कहा था—हम लोगो से नही कहा। मैं भी आपके पीछे-पीछे चलता। साथ ही साथ उन्हेअ ग्राह-पूर्ण निमन्त्रण मिला था—"आइए, कल ही चले आइए। न हो सकेगा, उसके बाद का सारा इन्तज़ाम मैं कर लूगा।"

भैया के ससुर सेल्फमेड मैन है। उन्होने कहा—फ्राम ए सुखी किसान गृहस्थ परिवार टु दि हेड ऑफिस ऑफ ट्वेंटी थ्री लिमिटेड कपनीज़। फ्राम लाग केबिन टु ह्वाइट हाउस भी यदि किसी दिन हो तो उससे किसीको अचरज नही होगा। कम से कम मुझे तो नही ही होगा।

बट यू सी · । मुझे अच्छा नही लगता । नही तो असम्भव शब्द को मैंने अपनी डिक्शनरी से घिसकर मिटा दिया है ।

भैया के ससुर 'कल ही' नही जा सके, परसो ही रवाना हो गए । उनके साथ उनकी स्त्री, तीनो क्वारी बेटिया और मझला लडका, मझली बहू और छोटा लडका गया है । कब लौटेंगे, इसका कुछ ठीक नही है, लेकिन कम से कम दो महीने लगेगे, इसमे कोई सन्देह नही ।

भैया की बडी सलहज यानी बड़े साले की स्त्री, उस घर की भाभी, इस देश की उन्ही सब औरतो मे से एक है, जो तीस-एक साल की उम्र मे पाच-छः बच्चो की मा बन जाती है और आधा हाथ चौडी हाथीपजा-पाड की साडी पहनकर पुरानी और भारी-भरकम हो जाती है । उन्होने कहा था—अब दो-ढाई महीने मन लगाकर पढ़ो-लिखो, यह तो तुम्हारी परीक्षा का साल है ।

उस घर मे वही उसका आखिरी जाना था । इसके बाद फिर नही गया, क्योकि दो महीने बाद ही उसे खबर मिली थी कि देश लौटते ही भैया के ससुर अपनी दो बेटियो का विवाह करेंगे । अमिता और नमिता का—दोनो लडके दिल्ली के सरकारी दफ्तर मे नौकरी करते है, रेल-दफ्तर के उन्ही सज्जन के पुत्र और भाई के लडके । दोनो ही कुलीन है—विलायत से लौटे ।

नही । उसने शराब पीनी शुरू की नही, बात नही बनी । अतसी को लेकर मा के साथ प्रथम विद्रोह के समय से ही, उसने कभी-कभी शराब पी है । शराब पीना कोई गुनाह नही है, या गुनाह है, इसे वह नहीं मानता, यही साबित करने के लिए उसने शराब पी है । औरो के सामने उसने इसे नही प्रमाणित करना चाहा । अपने सामने ही प्रमाणित करना चाहा था । अचानक किसी-किसी दिन उसके मन मे एक सन्देह जागता है । उसे लगता है कि पुराने ज़माने के धर्म और गगाजल से धुले, राजनीति की गोबर-मिट्टी से लिपे-पुते, फूस के घर मे पले कबूतर की तरह ज़रा धान खाता फिर रहा है—आसमान मे उड़कर, चक्कर खाकर, कलाबाज़ी दिखाकर, गोता खाकर वह कसरत चाहे जितनी दिखाए, आम तौर पर

पंथी और सभी क्षेत्रो मे व्यर्थ भारतवर्ष के वर्तमान को। इसीके बीच उसके मन मे बार-बार मा का चेहरा याद आया था। याद आया था भैया के ससुर का चेहरा, नमिता का चेहरा, उसके साथ शायद अतसी का चेहरा भी याद आ गया था।

इस समारोह मे जो लोग गीत गाने के लिए आए थे, उन्हीमे मिस सेन भी थी। स्मृति सेन। रूखे केश, धूल-गर्द से भरा चेहरा। परिपाटी-हीन होने पर भी एक अपरिसीम आकर्षण था उसकी साज-सज्जा मे। वह प्रदीप्त जान पडती थी। ऐसा नही कि दूसरे लोग उसके सामने मलिन हो, फिर भी उसके परिचित चेहरे ने उसे अधिक आकृष्ट किया था। मिस सेन ने भी उस परिचय के आकर्षण से ही उसे देखा था। वह भी इस दल मे बहुत ज्यादा घुली-मिली नही थी। नई आई थी। अभी कलम पकड रही थी। विदेशी गीत का स्वर उसके गले से अच्छा लगता है, वह गाना जानती है, इसीलिए इस विशेष अवसर पर उसे रिक्रूट किया गया था। बहुत लोगो ने उसकी तारीफ की थी। उन्हीमे अशुमान भी था।

वक्तृता समाप्त करके वह बाहर निकल आया था और एकान्त मे सिगरेट सुलगाकर उसके कश ले रहा था, तभी स्मृति ने आकर उससे कहा था—आप तो बडा बढिया बोलते है अशु बाबू!

एक कडवी हसी हसकर उसने कहा था—अच्छा लगा?

—खूब अच्छा लगा।

उसने उत्तर नही दिया। स्मृति ने जैसे कोई बात ढूढकर कहा था—आप सुदर गीत लिखते है, सुदर कहानिया लिखते है, ऐसा भाषण देते है, ऐसा चेहरा है आपका—आपको छोडकर नमिता एक वाहियात-मार्क नौकरीपेशा आदमी से शादी करने गई! एम० ए० पास करके आप भी एक बडी नौकरी पा सकेंगे—भले ही सरकारी नौकरी न हो, राजनीतिक नेता तो हो सकते थे।

अशु ने कहा—आपसे किसने कहा कि उसने मुझे जकड रखा था?

—कहेगा कौन? ये बातें भी कही जाती है भला? लेकिन उसकी बात उसने खुद ही कही थी। क्या कहा था, जानते हैं?

—क्या ?

कहा था, अगर बाबा उसके साथ शादी न कर देंगे, तो मैं छिपाकर कर लूगी। और···।

—और क्या ?

—और क्या ? शादी से बड़ी खुश है।

—बहुत खुश है ?

—अरे बा···प रे ! मुझसे दूल्हे की बात करने लगती है तो बात खत्म ही होने को नही आती। इतने रुपये महीने हो जाएगे। तीन हजार तक। फॉरेन सर्विस के चासेज़ है। तब तो फिर क्या पूछना है ! दुनिया के देश-देश मे घूमना मिलेगा। मैंने यह भी कहा—तब अशु बाबू के साथ इतना लटपट क्यों किया था ? उसने कहा—लटपट ? लटपट मैंने कहा किया ? मैंने कहा—प्रेम तो किया था ? वह बोली—किया था, लेकिन ऐसा तो जाने कितना होता है। इसके अलावा, बाबा-मां की बात भी तो है। हज़ार कुछ हो, आखिर हमारा घर हिन्दू का घर है न।

इसी समय रमेश ने उसे पुकारा था—सुनो, पुकार रहे है।

—कौन ?

—बडे-बडे लोग।

सचमुच बडे-बड़े नेताओ ने उसे बुलाकर उसकी प्रशसा की थी और छात्र-आन्दोलन मे उनके दल का साथ देने को कहा था। शायद वह उनका आह्वान सुनकर आन्दोलन मे कूद ही पडता, लेकिन स्मृति नाम की उस लडकी और रामायण के प्रसंग को लेकर लिखे उसके निबन्ध ने उसे ऐसा नही करने दिया। स्मृति ने ही लेखक अशुमान चौधरी के रूप मे उसका परिचय कराया था। उसीने लोगो के कानो मे यह बात डाली थी कि वह बहुत अच्छा लिखता है और यही परिचय पाकर नेताओ ने पूछा था—ये कौन लेखक हैं अंशुमान चौधरी ? रामायण मे 'धर्षिताया सीताया' शब्द लेकर जो प्रोग्रेसिव रिसर्च हुआ है, जिसे युगान्तरकारी कहा जा सकता है, उसी रिसर्च के प्रतिवाद मे जिस लेखक अशुमान

चौधरी ने यह दिखलाया है कि सारी रामायण मे धर्षित शब्द का कितनी बार व्यवहार हुआ है और धर्षित अथवा धर्षण शब्द का कही भी बलात्कार के अर्थ में प्रयोग नही हुआ और उसके बाद, सुदर काड मे रावण पर ब्रह्मा के शाप की बात उठाकर सीता के देहगत सतीत्व को लेकर मग्जपच्ची की है, ये क्या वही अंशुमान चौधरी है ? तब तो अभी ये कच्ची उम्र के छोकरे ही है । एक दूसरे नेता ने आंखो के जरिये उसे सिर से पैर तक चाटकर पूछा था—इन सब बातो को लेकर तुम्हे इतना सिरदर्द क्यो है ?

उसने भौहे सिकोडकर कहा था—जो मिथ्या है, उसका प्रतिवाद न करूगा ?

—सत्य-मिथ्या तुम समझते हो ?

—समझता क्यो नही !

—नही, नही समझते ।

—माने ?

—माने इतने दिनो तक तुम जिसे सत्य के रूप मे जानते आए हो, उसमे से कुछ भी सत्य नही है। सत्य को फिर से जानना होगा, समझना होगा ।

—क्या कहते है आप ?

—बताता हू । समझा देता हू । तुम्ही बताओ, सूरज रथ पर चढकर, पूरब से निकलकर दिन-भर मे पश्चिम की ओर अस्त होता है या पृथ्वी सूर्य के चारो ओर घूमती है ? कहो न, वासुकी नाग के सिर हिलाने से भूकम्प होता है या किसी अन्य कारण से ? बोलो !

वह जरा भडक गया था। उसके बाद बोला था—तब मैं यह रिसर्च करने को कहूगा कि रावण दस सिर और बीस हाथ लेकर किस तरह करवट होकर सोता था या कितनी थालिया लेकर खाता था अथवा उसकी पाक स्थलियां कितनी थी ! विज्ञान का सत्य और दर्शन का सत्य एक नही होता । विज्ञान मे स्वर्ग नही है—दर्शन मे है। कल्पना ही यहां श्रेष्ठ सत्य है ।

वह चला आया था । अपने स्वभाव के अनुसार ही काम किया था

उसने। पार्टी ने पार्टी के मुताबिक काम किया था— कॉलेज यूनियन में उसे नामिनेशन नही मिला। लेकिन इससे उसने पाव पीछे नही हटाए। जिद करके छात्र-आन्दोलन मे कूद पडा था और स्वतन्त्र उम्मीदवार के रूप मे काफी अधिक वोटो से जीतकर निर्वाचित हुआ था।

उसके उत्तप्त चित्तलोक मे पूरे पांच बरसो तक लगातार आधिया चलती रही थी। बी० ए० मे और एक साल। यूनिवर्सिटी मे पूरे चार साल। सन् १९५८ तक। उस समय आकाश मे पृथ्वी की परिक्रमा करता हुआ स्पुतनिक पिप्-पिप् आवाज करता फिर रहा था। अमेरिका शर्म से सिर पीट रहा था। उधर बिकिनी मे एक के बाद दूसरा ऐटम बम फट रहा था। वर्षा के साथ पारमाणविक बम-विस्फोट का विष आकर पृथ्वी को विषाक्त बना रहा था। एकदम शुरू मे स्वेज को लेकर एक नाटकीय दृश्य हो गया था; नासिर ने इग्लैंड और फ्रास के गालो पर थप्पड मारकर स्वेज़ छीन लिया था। उस थप्पड की चोट से बूढे सिंह का एक मुट्ठी केसर झड गया था। रूस मे मेलेंकोव खत्म हुए, बेरिया खत्म हुए, (स्टालिन उसके पहले ही खत्म हो चुके थे), आए है बुलगानिन— उनके पीछे-पीछे ख्रुश्चोव। इस देश मे एक और चुनाव हो गया है। उसमे भी सब जगह काग्रेस की जीत हुई है। बी० पी० सी० सी० के प्रेसीडेंट हुए हैं अतुल्य घोष। लोग उन्हे लोहे या पत्थर का आदमी कहते है। इसके बीच धन्यवाद दूगा रफी अहमद किदवई को—खाद्य-मन्त्री होते ही उन्होने राशनिंग उठा दी है। लेकिन चावल का भाव नही गिरा। बगाल के खाद्य-मन्त्री प्रफुल्ल सेन किसी अश में बेकार हो गए हैं।

पुराने समय के नेता लोग पचाग-फल के ग्रहो की तरह, एक के बाद एक अस्त होते जा रहे है।

तिब्बत का अभिभावकत्व स्वीकार किया है चीन ने। सन् १९५४ के मई महीने मे दलाईलामा और पचेनलामा पहली नेशनल काग्रेस मे शामिल होने के लिए पीकिंग गए थे। दलाईलामा बुद्ध के अवतार के रूप मे नही, जनता के डिप्टी के रूप मे गए थे।

सन् १९५६ मे बाडुग कान्फ्रेन्स हो गई।

नेहरू पचशील ले आए। पचशील भारत का ही था, लेकिन नेहरू उसे इंदोनेशिया से उधार मांग लाए। आचार्य कृपलानी ने कहा—पांच दुर्बोध्य मूर्खताएं नही मूर्खपनाए। मोटी बात यह है कि इन कई बरसो मे सब कुछ का मतलब बदल गया जैसे। मानो सब कुछ का रग पलट गया।

अशुमान ने एक कविता लिखी थी—

आसमान के महाशून्य मे
स्पुतनिक घूम रहा है
ऐटम बम से धूल हो गए
और खो गए
—आसमान मे बिखर खो गए
प्रभु हो या कि पिता
अथवा कि सरासर धोखा
ईश्वर के कण की तलाश मे
पिप्-पिप् करता।

सिर्फ यही नही। और भी है। अशुमान ने इन पाच वर्षों मे कवि, नाट्यकार और गीतकार के रूप मे प्रतिष्ठा पा ली है।

दुनिया ने उसके लिए स्वय ही रास्ता दे दिया था।

उसमे शक्ति थी। लेकिन वही सब कुछ नहीं है। देश और काल ने उसकी सहायता की। बगाल मे जमीदारी-उन्मूलन बिल—असल मे ऐस्टेट एक्विजीशन ऐक्ट, पास हुआ। साथ ही साथ, उसी समय नमिता की ओर से चोट लगी। अचानक उसने निश्चय किया, जमीदारी का अपना हिस्सा वह बेच देगा। सिर्फ जमीदारी का हिस्सा ही क्यो, सब कुछ—घर-बार, बगीचा-पोखरा, जमीन-जायदाद, सब।

कारण और भी था। पहला यह कि वह सरकारी खाते मे दस्तखत करके जमीदारी कम्पेसेशन के रुपये लेने को तैयार नही था। दूसरा यह कि जमीदारी लेने के पहले एक सेटलमेट होगा। वहा, उसके अभिभावक के रूप मे बडे भाई उसका सर्वनाश करके सब कुछ पचा जा सकेंगे। इसीकी अधिक सभावना है। इसी बीच पुराना चेक काटकर खास महाल की जमीन अपने नाम बदोबस्त कराए ले रहे है।

उसका स्वार्थ कौन देखेगा ?

मा प्रतिदिन बदलती जा रही है। बदलते-बदलते वे एक विचित्र जीव हो उठी है। न सन्यासिती-तपस्विनी, न राजनैतिक नेत्री। राजनीति से हटकर अब उन्होने सर्वोदय को अपनाया है। जितनी गालिया देती है नेहरू को, भारत सरकार को, उतनी ही वामपथी दलो को भी। जितनी गालिया देती है प्राचीन समाज को, उससे अधिक देती हैं आधुनिकता को, आधुनिक समाज को। धर्म को कुसस्कार कहती है, लेकिन मानती भी है। उनके नाम जो कुछ जमीन-जायदाद थी, वह सब उन्होने भूदान मे दे दी। वे चाहती थी कि अशु भी सब कुछ भूदान मे दे दे। उसके बदले उसने सारी जायदाद बेच दी।

खरीदार हारू चाटुज्जे ने जुटा दिया था—रमला के नाना ने। अशुमान की ज़मीदारी का आयतन बहुत बडा नही था। आयतन और आय, दोनो ही कम थे। कीमत थी दूसरी ओर से। उसकी ज़मीदारी का सारा हिस्सा स्थानीय इलाके मे ही था। नतीजा बहुत कुछ वही था, जो पुराने ज़माने के किसी छोटे राजा के अपनी राजधानी मे रहने का होता था। सिर्फ खज़ाना और फल-मूल-फसल का नजराना ही रोज-रोज़ न मिलता था, सुबह-शाम लोगो से प्रणाम-नमस्कार भी मिलता था। ज़मीदारी चली जाने पर सबसे बडा नुकसान यही था। आमदनी पर हर्जाना मिलेगा पाच से बीस गुना तक। कम आमदनी होने से अशु का कपेसेशन होगा बीस गुना। उसे वर्धमान के एक सेठ ने बारह गुनी कीमत पर खरीदना चाहा। हज़ार रुपयो की आमदनी बारह हज़ार मे खरीद लेने पर सरकारी कम्पेसेशन मिलेगा बीस हज़ार, जिसका मतलब हुआ आठ हज़ार का मुनाफा। जो लोग परसेट का हिसाब जोडते है, वे कहेगे, चालीस परसेट।

वह १९५४ का साल था। बी० ए० की परीक्षा के बाद उसने निश्चय किया था कि सन् १९५७ के चुनाव मे खडा होगा और बाकी जीवन वह पॉलिटिक्स मे ही लगा देगा। कोई एक पार्टी ठीक कर लेगा, लेकिन वह न तो काग्रेस होगी, न कम्युनिस्ट पार्टी। उसने हिसाब करके देखा था,

बारह गुनी कीमत पर जमीदारी बेचने पर उसे अडतालीस हजार रुपये मिलेंगे। इसके अलावा खेती की जमीन, बगीचा, पोखरा, यह सब बेचने पर भी कम से कम बीस हजार रुपये और पा सकेगा।

हारू चाटुज्जे ने ही जमीन-बगीचा-पोखरा वगैरह का भी खरीदार जुटा दिया था। उसे रमला के बूढे पति ने खरीदना चाहा था। कारण यह था कि सभी लोग जानते थे कि उसकी पहली स्त्री के लडके गाव की सपत्ति मे रमला को नाखून भी न डुबाने देंगे। इसीसे नाना के गाव मे इस सपत्ति पर रमला का अधिक आकर्षण हुआ था। उसने ज़िद करके कहा था—यह जायदाद तुम मुझे खरीद दो। चौधरियो को बडा दिमाग है। उनके बाग-पोखरे के लिए मुझे बडा लोभ है। बचपन मे मैं उनके बगीचे मे कच्चा मीठा आम चोरी से तोडने जाया करती थी, उनके आदमी देखते तो खदेड लेते थे। उनके घर बहू-बेटिया हम लोगो को सख्त-सुस्त कहती। उनके पोखरो मे बडी-बडी मछलिया रहती थी—मछलिया अब भी है, बडी मीठी। तुम यह जायदाद मुझे खरीद दो।

जायदाद भाई लोगों ने भी खरीदनी चाही थी। उन्होने दावा भी किया था, पैत्रिक सपत्ति है, इसलिए उन्हे ही देना उचित है और कम दाम मे ही देना उचित है। सिर्फ इतना ही नही, जितनी कानूनी बाधाए हो सकती थी, उन्होने उन्हे भी खडा करना चाहा था, लेकिन उस दिन कोई बाधा उसके सामने की राह पर नही खडी हो सकी। उस समय वह छात्र-आन्दोलन की प्रथम पक्ति का नेता था; उसके जीवनाकाश की स्थिति उस समय वारिवर्षणहीन घिसे हुए शीशे की तरह थी, बादलो से ढके ग्रीष्म की विवर्ण दोपहरी की तरह, सूर्य नही है, चन्द्रमा नही है, तारे नही है; प्रकाश है—सशय की छाया से आच्छन्न प्रकाश, उस प्रकाश मे ज्वाला है, गरमी है, लेकिन उससे वृक्षो को हरा रग नही मिलता, उसकी ज्योति से बीजाणु नही मरते। वह किसी बात पर विश्वास नही करता। इसीसे उस दिन वह अनायास ही कह सका था, देवकीर्ति, पितृकीर्ति, कुलकीर्ति आदि सस्कार बिलकुल व्यर्थ हैं और मेरे विचार से एकदम मिथ्या है, इसीसे मैं इनपर विश्वास नही करता; और विश्वास नही करता, इसीलिए मैं अपनी मां, सौतेली मा और

सौतेले भाइयो का यह दावा मानने को बाध्य नही हू । इन्ही बातो के कारण जो सपत्ति देवोत्तर के रूप मे निर्दिष्ट है, उसके हिस्से का अधिकार उन लोगो ने मुझे नही दिया । उस सपत्ति की आय से अलग यदि आज और धन की आवश्यकता हो—जिसका वे लोग दावा कर रहे है—तो उसे देने को मैं बाध्य नही हू ।

सब बाधा-विघ्नो को पार करके उसने सब कुछ बेच दिया था। ज़मीन-बगीचा-पोखरा वगैरह का दाम उसे ज्यादा ही मिला था। उसे इतना पाने की उम्मीद नही थी । पचीस हज़ार की आशा की जगह उसे पैतीस हज़ार मिले थे । भाइयो के साथ चढा-ऊपरी करके रमला ने तीस हज़ार से एकदम पैंतीस हज़ार दाम लगा दिया था ।

उस समय वह आखिरी दस दिनो तक हारू चाटुज्जे के घर, रमला के पास ही रहा था । जायदाद बेचने के इस मामले को लेकर भाइयो के साथ उसकी देखादेखी भी बन्द हो गई थी । बन्द उन्ही लोगो ने की थी, लेकिन उस ध्वनि की प्रतिध्वनि करने मे वह जरा भी पिछडा नही—उसने दुविधा भी नही की । सिर्फ उसकी मा अजीब थी । वे आगे बढी थी कि पिछड गई थी, यह वह नही कह सकता । वे उस समय देवग्राम आई थी । एक ही घर मे यानी उसके या उन लोगो के घर में ही थी—लेकिन उनका खाना-पीना ठाकुरबाडी मे होता था ।

मा ने सिर्फ एक दिन उससे कहा था—मेरी इच्छा है कि ज़मीन तुम भूदान मे दे दो ।

उसने कहा था तुम्हारे लिए एक हिस्सा रहेगा, उसे ही तुम दे देना। भूदान मे मेरा विश्वास नही है ।

बहुत देर तक चुप रहकर मा ने कहा था—देवोत्तर की सपत्ति से आजकल सचमुच देवोत्तर का खर्च नही चल पाता । पितृ-पुरुषों की पूजा—उसमे क्या तुम कुछ भी नही दोगे ?

उसने कहा था—नही । तुम्हीं लोग मुझको···

मां ने कहा था—रहने दो, कारण बतलाने की ज़रूरत नही ।

उसके बाद फिर कहा था—इस घर को भी बेच दोगे ?

उसने कहा था—इसका निश्चय नही किया । लेकिन रखकर क्या

करूगा ? गाव मे किस बन्धन से बधकर रहूंगा ? घर को रख भी लू तो इसकी इंटे खिसककर गिर जाएगी। बिरादरी के लोग दरवाजा-खिडकी उखाड ले जाएगे।

बस। इसके बाद फिर बातचीत नही हुई। मा ने मुह बन्द कर लिया था। अगले ही दिन वे चली गईं। टेलिग्राम आया था। गई थी उडीसा—नवकृष्ण बाबू के यहा।

वह था। उस समय बिक्री कबाला लिखा जा रहा था। घर के बारे मे आखिरी निर्णय रमला ने कर दिया था। घर वही लेनेवाली थी। लेकिन आखीर मे उसीने कहा था—नही, घर तुम मत बेचो अशु दा! यह तुम्हारा ही रहे। इमे मैं न लूगी। बल्कि किराये पर ले लूगी। यहा आकर उसीमे रहूगी। किराया नकद न दूगी। घर की मरम्मत कराऊगी, उसे साफ-सुथरा रखूगी।

इस लेन-देन के मामले मे अन्त मे रमला ही प्रधान हो गई थी। अशुमान ने अवाक् होकर उस बूढे धनी आदमी की गृहिणी की बातें सुनी थी। उसे पुरानी रमला याद आई थी। वह क्या यही है ? सन् १९५२ से '५४—तीन बरसो मे रमला का परिवर्तन देखकर उसके विस्मय की सीमा नही रही थी। यह जैसे वह प्रगल्भा, सिर-चढी औरत ही नही है। यह एक अद्‌भुत मर्यादामयी नारी है। बहुत होगी तो उम्र अट्ठारह पार करके उन्नीस की होगी। उसके शरीर मे यौवन प्रचुर मात्रा मे था—अब उसमे याद की पूर्णिमा का ज्वार लग गया है। लेकिन उस समय सारी उच्छलता शान्त हो गई थी। उस समय वह पक्की गृहस्थिन की तरह उस उनसठ-साठ साल के, पके केश और तोदवाले पति को मजे मे दोख्ते की डिबिया या कुजी के गुच्छे की तरह आचल की खूट मे बाधकर और उसे पीठ पर डालकर घूमती फिर रही थी; अथवा उसका पति ही पालतू बिल्ली की तरह या किसान-घर के पुराने बैल की तरह उसके पीछे-पीछे डोलता रहता था।

रमला ने उस दिन सवेरे-सवेरे यह बात कही थी तो उसके पति भी पास ही बैठे थे। उन्होने भी उसकी हा मे हां मिलाते हुए कहा था—हा, वह रहेगा। उसके लिए हम लोग रुपये कम नही करेंगे। कागज़

पैंतीस का ही लिखा जाएगा। लेकिन हम लोग चाहते हैं कि मकान हम लोगो की देख-रेख मे रहे, हम उसकी मरमम्त कराएगे, जब यहा आएगे तो उसीमे ठहरेंगे।

रमला ने कहा था—यही बात ठीक है अशु दा ! घर बेच दोगे तो फिर कभी तुम हम लोगो को न मिलोगे। तुम कभी यहा न आओगे। देखो, जायदाद जो आज तुम्हारी है, वह कल हमारी हो जाती है। लेकिन घर नही लेना चाहिए। इसके अलावा अभी तुम्हारी मा मौजूद है।

उसने कुछ कहा नही, सिर्फ सुनता रहा था।

दस्तावेज़ की रजिस्ट्री वर्धमान मे डिस्ट्रिक्ट रजिस्ट्रार के आफिस मे हुई थी। पिछली शाम को उसका मन बडा उदास था। विषय से, भूमि से, सम्पत्ति से घृणा करता हूं, यह कहना सहज है। वक्तृता के मच पर उसे तालिया मिलती है, लेकिन जायदाद बेचने की इतनी पीडा होती है, यह उसने नही जाना था। ज़मीदारी की लिखा-पढी पहले ही हो गई थी, लेकिन उससे जैसे इतनी ममता नही थी। खेती की जमीन, बगीचा, पोखरा—इनकी अद्‌भुत ममता है। सामनेवाले बगीचे और पोखरे की ओर ही वह देखता रहा था—अपलक दृष्टि से।

एक समय रमला उसके सामने आ खडी हुई थी। उसकी ओर देखकर उसने कहा था—रमला !

—हा, एक बात कहने आई हूं।

—कहो।

—कहती हूं। साल मे कम से कम एक बार तुम आ जाना। क्यो ? ऊपर की पूरी की पूरी मजिल तुम्हारे लिए बन्द रहेगी। हम लोग नीचे का हिस्सा इस्तेमाल करेंगे। तुम मेरे पास रहोगे, खाओगे। क्यो ?

उसने उसकी ओर ताककर देखा था।

उसे याद आई थी उस रात की बात। उस गहरी रात मे, दरवाज़े के बाहर से दबी आवाज की विचित्र वासना-व्याकुल पुकार—अशु दा ! अशु दा !

रमला की आखो की ओर देखकर उसे ऐसा जान पडा था, जैसे आज भी उसकी आखो मे वही व्याकुलता लिपटी हुई है। जान पडने के साथ ही अचानक उसका चित्त उद्वेलित हो उठा था, दोनो कानो के पास के हिस्से गरम हो उठे थे। अदर मानो आषाढ के बादल पुकार उठे थे—गडगडाकर। उसने हाथ बढाकर रमला का हाथ अपने गरम हाथो मे खीच लिया था।

लेकिन रमला ने हाथ छुडा लिया था। कहा था—छोडो।

हृदय मे जो आकस्मिक आवेग जाग उठा था, उसने पलक मारते उसे आदिम मनुष्य के रूप मे परिवर्तित कर दिया था। उस मनुष्य के रूप मे, जो नारी को अकेली देखकर क्षणमात्र मे चचल हो उठता और उसपर झपट पडता है। रमला के हाथ छुडा लेने पर उसने फिर हाथ बढाकर झप् से उसका हाथ पकड लिया था और गाढे तथा असहनशील स्वर मे कहा था—र···म···ला!

रमला ने कौतुक-भरे विस्मय से उसकी ओर देखकर कहा था—क्या?

उसने फिर कहा था—रमला! और उस एक पुकार मे ही वह सारी बात, एक विगलित आवेदन के बीच, कह गया था।

रमला ने कहा था—पागलपन न करो। मुझे अनन्त नरको मे भी जगह न मिलेगी। मैं यह न कर सकूगी। मुझसे न होगा।

कहकर वह कमरे से निकल जाने के लिए पीछे मुडी थी। उसका हाथ तब भी अशुमान के ही हाथ मे था। रमला ने उसे फिर छुडा लेना चाहा था। अशु पल-भर मे बाहर-भीतर का सारा होश खो बैठा था। उसने हाथ की मुट्ठी कड़ी करके, जोर लगाकर, रमला को अपनी ओर खीच लिया था। रमला झटका खाकर उसके कलेजे पर आ गिरी थी। उसने बलपूर्वक रमला को छाती से चिपटा लेना चाहा था।

रमला के मुह से एक दबी हुई चीख निकल गई थी—अशु दा!

किसी गेहूअन साप की फुफकार की तरह थी वह दबी हुई चीख। वह उस चीख की उपेक्षा नही कर सका। कोई न कर पाता। थोड़े अचरज मे पडकर अशुमान ने उसके चेहरे की ओर देखा था और देख-

कर और भी अचरज मे पड गया था। उसकी दोनो आखें जल रही थी और दो पाटियो के अपने धारदार झकाझक दात निकालकर किसी हिंस्र पशु की तरह वह उसके मुह पर ही काट खाने को उद्यत हुई थी। घबराकर अशुमान ने बाये हाथ से रमला का मुह ढक देना चाहा था। रमला ने उसके हाथ पर ही दात गडा दिए थे। कानी उगली के नीचे, बाये हाथ की तली मे कई दातो के दाग आज भी बने है। उस दिन दात गड गए थे। खून बह चला था। साथ ही साथ उसके होश भी लौट आए थे। अपने हाथ का बन्धन खोलकर उसने कहा था—मुझे माफ कर दो। मुझसे गलती हो गई।

रमला कुछ न बोली थी। चुपचाप उठकर उसने अपने कपड़े सभाले थे और तेज़ी से कमरे से बाहर निकल गई थी। दरवाज़े के पास ज़रा देर रुककर उसने सिर्फ इतना ही कहा था—भाग जाने का पागलपन न करना। अच्छा न होगा। अशुमान ने वैसा कुछ नही किया था। करनेवाला आदमी ही नही था वह। अतसी के प्रसग की तरह, वह इस प्रसग को भी स्वीकार करने को तैयार था।

रात को रमला फिर उसके पास आई थी—खाना खिलाने के लिए। उसके हाथ मे थाली थी और साथ था नौकर। औरतो की जाति ही विचित्र होती है। रमला को देखकर यह लगता ही नही था कि कई घटे पहले इतना बडा काड हो गया है। इस बारे मे उसने सिर्फ दो बाते कही थी। उसने पूछा था—हाथ कितना कटा है?

उसने उत्तर न सुनना चाहा था। नौकर से कहा था—टिंचर आयोडिन लाया है न? उस टेबुल पर रख दे।

जाने के समय उसने कहा था—सब कर सकती हूं अंशु दा, सिर्फ यही नही कर सकती। हज़ार होने पर भी हिन्दू ही की बेटी हू न!

जवाब मे कहने को बहुत कुछ था। अशु अनेक हिन्दू लडकियों का दृष्टान्त दे सकता था। लेकिन वह एक शब्द भी नही बोला, बोल ही नही सका। अगले दिन सवेरे उठकर वह टैक्सी से वर्धमान चला गया था। वहा दस्तावेज़ की रजिस्ट्री करके और नकद पैंतीस हज़ार रुपये लेकर वह कलकत्ता चला आया था। गाव का मकान दस्तावेज़ से अलग

रहा या बेची गई जायदाद के साथ भुगतान हो गया, उसने इसकी पूछ-ताछ भी नही की। इसके बारे मे बाते भी नही हुईं। लेकिन रमला बीच-बीच मे चिट्ठी लिखती है—एक बार आओ। मकान मे कुछ हेर-फेर करना है। एक बार आकर वह सब देखकर कम से कम हा-ना तो कह जाओ! लेकिन वह नही गया।

उसने कई बार उत्तर लिखा है—रमला, मैं इस ज़माने का आदमी हू—अशुमान। मैं सब कुछ कर सकता हू, सिर्फ मिट्टी की जायदाद के बन्धन मे नही बध सकता। मैं छोटी जगह मे रह भी नही सकता। इसके बदले मे कलकत्ते मे घर बनाकर तुम्हे निमन्त्रण दूगा। आना। मुलाकात होगी। लेकिन लिखने के बाद उसे फाडकर फेक दिया है।

यह मकान उसी रुपये से हुआ है।

उसने इस ज़माने के आधुनिक जीवन के लिए एक सुन्दर नीड बनाना चाहा था। बनाया था कहना हो, तो कहना पडेगा—शिवकिंकर ने।

उसने निश्चय किया था कि सन् सत्तावन मे वह चुनाव मे खडा होगा। किसी पार्टी से नही, स्वतन्त्र रूप से। देवग्राम से ही खडा होगा। जाने कहा से खबर पाकर शिवकिंकर उसके होटल में आ पहुचा था।

उसका वही पुराना बोर्डिंग हाउस था। इन कई बरसो मे उसकी कुछ उन्नति होने से उन दिनो उसे होटल का नाम दे दिया गया था। शिवकिंकर ने कहा था—मकान तुम खरीद लो। उसने सिर्फ मकान ही नही खरीदवा दिया था, आज के भविष्य की नीव भी उसने उसी दिन डाल दी थी। उसने सोचा था, वह राजनीति मे जाएगा। एक बार उसने सुना था, कलिकाल मे अब अश्वमेध यज्ञ नही होता। अश्वमेध का रूपान्तर हो गया है। शरत्काल की दुर्गापूजा ही अब अश्वमेध है। उसने आविष्कार किया है कि कलिकाल मे अब राजसूय यज्ञ नही होता, क्योकि राजतन्त्र ही नही रहेगा—एक-एक करके राजतन्त्र के दीवट बुझ रहे हैं; लेकिन इसी कारण राजसूय यज्ञ खत्म नही होगा। गणतंत्र के ज़माने मे लोग राजसूय यज्ञ का फल पा सकेंगे अथवा पा रहे हैं चुनावों के ज़रिये। स्वतन्त्र रूप से चुनाव मे खड़े होने का सकल्प होने

पर भी, चुनाव मे जीतकर वह किस पार्टी के साथ हाथ मिलाएगा, इसका भी एक खाका उसने बना लिया था। लेकिन शिवकिंकर ने आकर सब गोलमाल कर दिया।

शिवकिंकर अचानक रजन बोस को लेकर आ पहुचा। रजन बोस फिल्म के प्रोडयूसर के रूप मे सिनेमा-जगत् मे आ रहे है। फिल्म बनाएगे। फिल्म मे अतसी भाग लेगी। अतसी ने कहा है, कहानी अशु से लो—वही 'कालरात्रि' कहानी। वही गाव की जमीन-जायदाद बेचने के बारे मे पूछ-ताछ करके शिवकिंकर ने कहा था—रुपये लेकर क्या करोगे? उडाओगे?

उसने उत्तर नही दिया था। वह झुंझलाया था।

शिवकिंकर उससे पीछे नही हटा। उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही उसने कहा था—एक मकान खरीदोगे? खरीदो न!

मकान?

मकान की एक ममता है। इस शब्द ने ही पल-भर मे जरा चौंका दिया था। उसके मुह से अपने-आप ही निकल पडा था—मकान?

वह मकान यही है। मकान अतसी का था।

काट्रैक्टर के रूप मे तैयार करा रहा था वही रजन बोस। रोज़गारी आदमी है रजन बोस। रोज़गारी का लडका रोजगारी। कोयला, अभ्रक, जूट, काट्रैक्टरी—ये बहुत-सी शाखाए हैं बोस ऐंड सन्स की। उसी सूत्र से रजन बोस ने ही अतसी गुप्ता को इन्स्टालमेट पर ज़मीन बेची थी और मकान बनवाने का काट्रैक्ट लिया था। दो कट्ठे ज़मीन पर तीन मजिला मकान। नीचे के तल्ले मे तीन कमरे थे, दो तल्ले मे दो, तीन तल्ले मे एक; और उसमे कई तरह की विचित्रता थी। सन् १९५४-५५ मे उसका एस्टिमेट था साठ हज़ार के लगभग। रजन बोस ने अतसी के नाम पर विश्वास किया था या व्यक्तिगत रूप से उसीपर विश्वास किया था, यह बात वही जानता है। लेकिन उसको अपनी फिल्म मे लेकर एक सफल चित्र बनाने की प्रत्याशा उसने जरूर की थी। उसकी एक फिल्म पिट चुकी है। यह दूसरी फिल्म है। अब अतसी से जो रुपये वसूल करने थे, उसके लिए चौथाई बने मकान को बेचने के

सिवा दूसरा उपाय नही था। 'मकान'—इस शब्द ने ही उसके मन मे मोह का सचार किया था। नये ज़माने मे काग्रेस ने भी अवाडी काग्रेस मे सोशलिस्टिक पैटर्न आफ सोसाइटी की बात कही थी; सपत्ति और मालिकाना मनुष्य के लिए निस्सदेह निंदा के कारण बन गए है। अशुमान ने गाव की सपत्ति बेचकर सपत्तिवानो के साथ अपना सबध समाप्त कर दिया है, यह सत्य है; फिर भी 'घर'—'मेरा घर', इसका जो मोह है, उसने उस दिन उसे जकड लिया था। उसने उस चौथाई बने मकान को बीस हज़ार मे खरीदकर रजन बोस के बोस ऐंड सन्स के ज़रिये ही, आठ हज़ार रुपयो के खर्च से एक तल्ला पूरा करवा लिया था।

मकान खरीदकर उसने जाने कितनी कल्पनाए की है और इसी मकान ने विचित्र रूप से, टेढे-तिरछे मार्ग से, अनसोचे सूत्र के जरिये, खीचकर आज उसे यहा एक भयकर अनिवार्य के आमने-सामने ला खडा किया है।

उसने सोचा था, एक तरह से ठीक ही कर लिया था, कि वह चुनाव मे खडा होगा; लेकिन इस मकान के चलते ही रजन से उसकी जान-पहचान हो गई। इस जान-पहचान के कारण ही उसने राजनीति के मार्ग मे बढाया हुआ अपना पाव नाटक की राह मे मोड लिया था।

रजन केवल अतसी के मोह से फिल्म बनाने नही चला था। उसे अभिनय का शौक था। नाटक के नशे से वह पागल था। नाटक के चलते ही उसका अतसी से पहले-पहल परिचय हुआ था। उन लोगो की एक अभिजात और गौरवान्वित सस्था थी। षोडशी सघ। षोडशी सघ की सचमुच ख्याति थी और उस ख्याति का उनका दावा भी झूठा नही था। रंजन उनका हीरो था। शचीन सेनगुप्त उसके सभापति थे। षोडशी सघ ने ही उसके नाट्य रूपक 'कालरात्रि' का अभिनय मच पर प्रस्तुत किया था। सारे अभिनय के दौरान वह एक तरह की परेशानी का अनुभव करता रहा। रजन था नायक और नायिका की भूमिका मे अतसी ने अभिनय किया था। उसकी राय मे कुल मिलाकर दोनों ही भूमिकाएं सार्थक नही हो सकी थी। फिर भी उसे ख्याति मिली थी।

निबन्ध-लेखक के रूप मे एक दिन उसे जो ख्याति मिली थी, वह ख्याति गीत लिखकर गीतकार के रूप मे बढ़ गई थी, और भी वृद्धि

पाई उस ख्याति ने कहानी-लेखक के रूप मे। उस कहानी ने नाटक के रूप मे जो ख्याति पाई, वह तो कल्पनातीत थी। उस नाटक का अभिनय रेडियो पर हुआ और उसको सुनकर बगला भाषा मे पारगत, बगाल की बहू, एक स्वीडिश महिला ने अपनी मातृभाषा मे उसका अनुवाद किया।

परिणाम यह हुआ कि अशुमान ने राजनीति की ओर पीठ फेर ली, उसके बाद एम० ए० की परीक्षा भी न दे सका। वह नाटक का होकर रह गया। केवल लेखन ही नही, अभिनय करने के लिए भी उसने पाव बढाए।

षोडशी सघ की सभा मे उसने प्रस्ताव किया था कि संघ यदि अनुमति दे तो वह स्वय एक बार 'कालरात्रि' के नायक की भूमिका मे अभिनय करना चाहेगा। नही तो वह स्वय एक सघ बनाकर अभिनय करेगा।

उत्साह के साथ सबसे पहले उसके प्रस्ताव का समर्थन किया था सभापति सेनगुप्त ने। उन्होने कहा था—चौधरी, मेरी आशा है कि तुम असाधारण अभिनय करोगे। मैं सारे देश के लिए आशा करूगा। स्टेज आज मैकेनिकल होता जा रहा है। नाटक नही है। एक बार फिर हमे नट और नाट्यकार एकसाथ चाहिए। तुम अभिनय करो। हम लोग आग्रहपूर्वक तुम्हे देखना चाहते है।

नायिका का अभिनय अतसी ने ही किया था।

उस दिन राह बदलने के समय क्या अतसी का ही सबसे बड़ा आकर्षण था ? अतसी ही क्या उस दिन की सोने की मृगी थी ?

अशुमान सत्य को तो अस्वीकार कर नही सकेगा। आकर्षण कुछ था। क्योकि इस अभिनय के बाद ही अतसी के साथ उसका सबध एक बार फिर नये सिरे से घनिष्ठ हो गया था।

शिवकिंकर···विचित्र है शिवकिंकर। उसके लिए न्याय-अन्याय नही है, धर्म-अधर्म नही है—जीवित रहने के लिए हो या आनन्द के लिए ही हो, जो जरूरत होती, वह वही करता था। उसीने हाथ पकडकर उसे अतसी के पास अथवा अतसी को उसके पास पहुचा दिया था। पहले दिन के रिहर्सल मे वही अतसी को लेकर आया था। अतसी का

पार्ट तैयार का। वह स्वय नाटक का लेखक था। उसका पार्ट तैयार से भी कुछ ज्यादा था। पूरी पुस्तक का ही जन्म हुआ था उसके अन्तर के प्रसूति-गृह मे। लेकिन कुछ रद्दो-बदल के लिए रिहर्सल की जरूरत थी। अतसी को अशुमान ने फिल्म के पर्दे पर और स्टेज पर देखा था, लेकिन असल अतसी के रूप मे सन् '४८ की स्मृति-स्तभ उद्‌घाटन सभा के बाद यही पहली मुलाकात थी। सन् १९४८ और सन् १९५६—पूरे नौ बरस। इन नौ बरसो मे जाने शिर्वकिंकर ने उसे कितनी बार निमत्रित किया था, अतसी के निमत्रण की बात कही थी; लेकिन अशुमान ने वह निमत्रण स्वीकार नही किया।

नौ बरस बाद अतसी को देखकर उसे बडा अच्छा लगा था। उस दिन वह बडे साफ-सुथरे और सीधे-सादे कपडो मे आई थी। उसे सबसे अधिक आश्चर्य यह देखकर हुआ था कि इन नौ बरसो मे अतसी की उम्र साढे चार साल भी नही बढी थी। ऐसा लगा था, जैसे उसके रूप को पूर्ण-रूप से परिस्फुट करने के लिए जितनी उम्र बढने की जरूरत थी, शायद उससे एक दिन भी अधिक नही बढी है।

अतसी उसे देखकर बडी मीठी हसी हसी थी। उनके उस सपर्क की बात शिर्वकिंकर के अलावा और कोई नही जानता था, फिर भी वहा उपस्थित सभी लोगो को एक पुलक-चाचल्य का अनुभव हुआ था।

शचीन दा का स्वभाव था गभीर—रसिकता मे भी वह गभीरता प्रकट होती थी—उन्होने उसी ढब से कहा था—अतसी, तुम्हारी हसी की यह झलक हम अभिनय मे भी देखना चाहते है। समझी ? अशु, तुम क्यो स्टिफ् हो गए, ऐ ? यग मैन हो तुम। कहा तो इस समय तुम हसी से छलक पडते कि और स्टिफ् हुए जा रहे हो। अभिनय मे तो तुमको अधिक विगलित होना पडेगा जी।

हंसी के फव्वारे छूट पडे थे।

शचीन दा की बातें आज भी कानो मे गूज रही है। उन्होने कहा था—जानते हो, उस दिन एक आदमी कह रहा था, छोकरे का चेहरा देखकर ओथेलो की याद आती है। ओथेलो दि मूर। मैंने कहा—राम कहो! तुम लोग तो भाई, एकदम से जार्डन-तट के निवासी हो। क्यो,

यमुना-तट के काले, दुर्दांत छोकरे को क्यो नही याद करते ? वृंदा से लेकर राधा तक उसके प्रेम में मुग्ध थी।

इसी बीच जाने कब वह सहज हो उठा था और उसके हृदय मे वह आवेग जाग उठा था, जिस आवेग से बादल से झरा पानी, नदी के हृदय मे स्रोत के वेग और कल-कल्लोल की ध्वनि से जाग उठता है।

रिहर्सल खत्म होने पर शिवकिंकर ने कहा था—आओ अशु, गाड़ी खडी है, तुम्हे होटल मे उतारता जाऊगा।

आपत्ति करने की जो बातें हो सकती थी, वे शायद रिहर्सल मे ही खत्म हो गई थी। फिर भी उसने जरा आगा-पीछा किया था।

इस बार अतसी ने ही पुकारा था—आइए।

गाडी मे पीछे की सीट पर आस-पास बैठकर अतसी ने कसकर उसके हाथ पकड लिए थे। कहा था—अब ?

अशुमान फिर भी नही बोला था।

अतसी ने कहा था—बाप रे ! इतना गुस्सा !

इस बीच गाडी उसके होटल न जाकर आ पहुची थी अतसी-शिव-किंकर के घर पर।

वह अवाक् हो गया था।

दुतल्ला मकान। अतसी रहती है दुतल्ले पर, शिवकिंकर एकतल्ले में। और एकतल्ले मे शिवकिंकर की भरी-पूरी गृहस्थी है—उसकी स्त्री, उसके लडके-बच्चे; रसोई-पानी तक अलग है।

शिवकिंकर के दो परिवार थे। अतसी ने ही उसका यह ब्याह कराके उसे घरबारी बनाया था। वह भी शिवकिंकर की स्त्री है। उसने उससे मुक्ति नही ली। फिर भी· । उसने खुद हसकर कहा था—देखो, मैं तुम्हारे लिए पागल हो उठी थी, इसीलिए मैंने तुम्हे बांधना नही चाहा। मेरे बन्धन मे पड जाते तो तुम्हारी यह जो उन्नति हुई है, न हो पाती। इसीलिए उस दिन उससे कहा था। वह मुझे ठीक वैसा ही प्यार करता था, जैसा मैं तुम्हे करती थी। इसीसे उसने कहा था···। जाने दो, वह बात न कहूगी। · तुम्हे प्यार करने का अधिकार दिया था। मैंने बेखौफ उसके साथ घर बसाया था—वह मुझे बाधेगा नही। इसी तरह

दो साल चला था । उसके बाद मैंने उसके हृदय की पीडा समझी । समझे ? जो मर्द मानुष है, उसका अपनी स्त्री पर एकाधिपत्य न हो तो बात नही बनती । मन नही भरता । हृदय नही भरता । जिनका भरता है, वे पुरुष ही नही है । इसीसे मैंने खुद ही देख-सुनकर शादी करा दी । कोई और नही है—मेरी ही बहन है । आग को साक्षी रखकर विवाह कराया है । हम लोगो की शादी हुई थी कालीघाट मे । मैं तुम्हारे शिव-किंकर दादा के माथे पर रहती हूं—पास मे रहती है 'सती' । मैं शिव के मस्तक की गगा की तरह विश्व-ससार मे घूमती फिरती हू । मन मतवाला होता है तो राजा दुष्यन्त के दरबार मे जा पहुंचती हू । समझे ?

उस रात को अतसी के घर खाना खाकर अशुमान घर लौटा था ।

विदा करने के समय अतसी ने कहा था—देखो, मेरे प्लैन के मुताबिक घर को कम्प्लीट कर लो । मैंने बडे शौक से मकान बनवाया था । नीचे के तल्ले मे बीच मे हॉल और सीढी के तीन तरफ तीन कमरे, दुतल्ले मे दो हॉलकमरे, थोडी-सी खुली छत, तीन तल्ले मे हॉल और एक कमरा—बाकी सब खुली छत । उस छत पर टब का बगीचा ।

अशुमान ने ज्यादा बाते नही की ।

मन का आकाश आसन्न आधी का आकाश हो रहा था। एक उत्ताप जैसे मिट्टी फोडकर ऊपर की ओर उठ रहा था ।

उस दिन वापस आकर वह रात को दो बजे तक चुपचाप बैठा रहा। उस समय उसके मन मे तूफान उठ रहा था।

देह और मन का वह संग्राम बडा भयानक था ।

मिट्टी फोड़कर आग निकलती है और आसमान को काला बना देती है, यह बात उसने पढी थी । उस दिन इसका अनुभव हुआ उसे ।

आकाश तो नितान्त अलीक है, एक नयनाभिराम छलना—प्रसन्न, कोमल, नील, निर्मल, पवित्र । असल मे वह मिथ्या है ।

मनुष्य का निर्बोध, सस्काराछन्न मन तब भी कहता है—मैं बडा हूं, मैं सत्य हू ।

रात को एक बजे अचानक वह कागज-कलम लेकर बैठा था। नाटक लिखेगा। पहले नाटक का नाम ही लिखा था—योजनगधा।

पहला दृश्य आरम्भ किया था—गगा का घाट। नाव लेकर घाट पर प्रतीक्षा कर रही है धीवर-राज की कन्या सत्यवती।

अपरूप रूपवती युवती।

ब्रह्मर्षि पराशर का प्रवेश हुआ। वे स्थिर-एकाग्र दृष्टि से उस परिपूर्ण यौवना, रूपवती धीवर-कन्या की ओर देखते रहे। वह दृष्टि केवल एकाग्र ही नही थी, उससे भी कुछ अधिक थी।

उसके बाद अपनी तपस्या का समस्त फल उसके पावो पर डालकर पराशर ने कहा था—तुम्हारे रूप मे क्या अरूप ब्रह्म रूपायित हुए है ? ऐसा लगता है, जैसे तुम्हारे सब अगो की कोमलता के बीच, उत्ताप के बीच, तुम्हारी देहगन्ध के बीच ब्रह्म ने ही अपना स्पर्श सचरित किया है।

मत्स्यगधा बोल उठी—छिः, छि, ऋषि ! ऐसी बात न कहो। जन्म से ही मेरे शरीर से तीव्र और कुत्सित मत्स्यगध निकलती है—मेरी देह-गध के चलते एक मक्खी को छोडकर दूसरा कोई कीट-पतग तक मेरे पास नही आता।

पराशर ने कहा—कौन कहता है ? तुम्हारे शरीर से पारिजात-गध निकलती है। मेरी सासो मे वह गंध आ रही है।

पलक मारते ही ऐसा हो गया था और अभिभूत होकर उस कन्या ने कहा था—तुमने यह क्या किया ऋषि ? तुमने मेरा यह क्या कर दिया ? मेरा एक अद्भुत विनिद्र मन जाग्रत् होकर फूल की तरह खिल गया है। कामना मेरे हृदय मे, आकाश के हृदय मे, मेघ की तरह उमड रही है। मैं देखती हू···।

मत्स्यगधा ने देखा था एक शिशु को। कृष्णवर्ण एक सन्तान। लेकिन अपूर्व थी उसकी दीप्ति। उसने उसे मा कहकर पुकारा था।

ऋषि पराशर ने उसमे देखा था निष्प्राण वस्तुपुज में प्राण को—जड मे जीवन को—अपरूप मे अरूप को। उन्होने सिर झुकाकर देह मे जीवन के दावे को स्वीकार कर लिया था। स्वीकार कर लिया था

सभोग को। उन्होने कहा था—हम लोगो ने जो नही जाना, हम लोग जिसे प्रकट नही कर सके, उसे जानेगा और प्रकट करेगा हमारा उत्तर-पुरुष।

वह नाटक आज भी खत्म नही हुआ।

वह जितना लिखा जा सका था, उतना ही लिखा पडा है। बीच-बीच मे ऐसा लगता है कि लिखेगा, लेकिन लिखना नही होता। अगले ही दिन वह उसका एक दृश्य लेकर अतसी को सुनाने गया था।

सुनते-सुनते अतसी के चेहरे पर विचित्र हसी फूट उठी थी। वह हसी देखकर उसे एक अजीब परेशानी का अनुभव हुआ था। उसे लगा था कि वह हसी हसकर अतसी उसका मजाक कर रही है। वह रुक गया था। उसने पूछा था—हसती क्यो हो ?

—हसती हू क्या ? अतसी ने प्रश्न किया था।

—नही हसती ? हसती हो। इसमे तुम्हे हसने की क्या बात मिली ?

इस बार अतसी खूब हस पडी थी। फिर हसी रोककर गम्भीर होकर बोली थी—तरुण कवि, कलम पकडकर मन को आकाश मे उडने देने पर तुम्हे मिट्टी की याद नही रह जाती।

क्यो ?

—यही कि सत्यवती-बच्चे की बात, मा बनने का स्वप्न देखती है।

—इसमे गलत क्या है ?

—सब गलत है ? वहां नारी के पास रहता है पुरुष, पुरुष के पास रहती है नारी। भगवान भी विलुप्त हो जाते है। और तरुण पराशर ! उनकी तो बात ही नही है। मेरी बात लो, तो सतान मैं चाहती ही नही। सिर्फ मैं ही क्यो, इस युग की कोई औरत नही चाहती।

फिर भी उसने प्रतिवाद किया था। कहा था—चाहती हो। तुम खुद अपने को नही जानतीं।

एक बार फिर खूब हसकर अतसी ने कहा था—मुझे कभी सतान न होगी। अंशुमान ! मुझसे इस जमाने की सत्यवतियों की बात जान लो।

वह स्तभित हो गया था।

अतसी ने कहा था; उससे पहले वह भी उसके चेहरे की ओर देखती स्तब्ध होकर बैठी रही थी कुछ देर। एक बार दीर्घ निःश्वास लेकर उसने कहा था—लडाई के समय पिताजी की नौकरी जाती रही। मा को उस समय तीन लडके थे, तीन लडकिया—कुल छः, उसके बाद एक पेट मे। पेट का बच्चा पेट ही मे मर गया। मरा ही पैदा हुआ। गोद का बच्चा बिने खाए मरा। बाप भीख मागने लगे। लोग भीख भी नही देते। बाजार मे आग लग गई। अत मे पिताजी मेरा हाथ पकड-कर शाम को एक मकान मे ले जाने लगे। तभी से मैंने सतान की कामना छोड दी अशुमान ! इसके अलावा इसके अलावा तुम किसी दिन सवेरे आओ—तुमको दिखाऊगी, एक औरत भीख मागने आती है। मैं उसे रोटी देती हू। उसके पाच बच्चे है। बच्चो को देखते डर लगता है। दो या तीन बच्चे होकर मर भी चुके है। इस युग मे सतान कोई नही चाहता सखा ! मेरी बात तो छोड ही दो—मैंने मातृत्व को तीखी छुरी से काटकर फेक दिया है।

विचित्र हसी हसकर बोली थी—आक्षरिक सत्य अर्थों मे ऋषि है पराशर। यह तुम्हारी कल्पना नही है।

कुछ देर और चुप रहने के बाद अतसी ने कहा था—यह नाटक मत लिखो। इसके बदले कुछ और लिखो अथवा उन बातो को छोड दो। कम से कम अगर मुझे सत्यवती का पार्ट करना हो तो मैं वह सब निकाल देने को कहूगी।

शचीन बाबू ने कहा था—दैट्स दि रियलिटी अशुमान ! पौराणिक नाटक लिखोगे, इस कारण इस युग की रियलिटी को अस्वीकार करने से तो काम नही चलेगा। पुराण के खयाल से दो-चार अलौकिक बातें चाहो तो चला लो—आदमी आम तौर पर उसे मान लेगा; लेकिन बहू कपित वक्ष और नत नयनो से कोहबर मे जाती है—उसमे ज्वारी के झंकार की तरह सतान-कामना ध्वनित होती है, यह सत्य आज नही चलेगा।

इस सम्बन्ध मे उसने शचीन बाबू के साथ बाते की थी। उस आदमी पर उसकी असाधारण श्रद्धा थी और वे असाधारण श्रद्धा के

योग्य थे भी। उन्होने कहा था—तुम्हारी पकड सही है। इसीसे मैं कहता हू, तुम्हारा क्षेत्र नाटक का क्षेत्र है। यही आकर जम जाओ। सोच देखो। आज सारा देश क्यो ऐसा हो गया, इसे सोच देखो। हम लोग पुराने जमाने के आदमी है—हम बहुत-से आदर्शों मे विश्वास करते है—हम देख रहे है कि वे आदर्श हमारी आखो के सामने नष्ट हुए जा रहे है। इसके लिए हम इस जमाने को अभिशाप देते है। अभिशाप फलता नही। क्यो नही फलता ? हम चाहे जितना चीखकर वे बाते कहते है, इस जमाने मे कोई सुनता नही। क्यो ? चन्द्र-सूर्य, ग्रह-नक्षत्र सब मिट गए—सब मिट गए। अवाक् होकर देखता हूं, लेकिन इसके बारे मे लिखने की क्षमता नही है। इसे लिख सकते हो तुम लोग। मतलब यह कि आज भी जो इस युग का नायक है, वही लिख सकता है। तुम लिखो। तुम्हे धन्यवाद देता हू। यह बात तुम्हारे मन मे आई है, तुमने इस बात को पकडा है।

शचीन बाबू से उसने कहा नही था कि बात उसकी नही, अतसी की है। शचीन बाबू की प्रशसा और उनके साधुवाद के बाद भी वह अतसी के इस सत्य को प्रसन्न मन से ग्रहण नही कर सका। सिर्फ यही क्यो ? वह ये बातें सुनता और सिहर उठता।

अतसी ने गलत नही कहा था, लेकिन फिर भी वह उसकी , बात स्वीकार नही कर सका। षोडशी सघ का अभिनय-प्रस्ताव रद्द हो गया। उसने कहा—नही, वह अभिनय नही करेगा।

अतसी ने उससे पूछा—क्यो, क्या हुआ ?

उसने सिर्फ इतना ही कहा था—नही।

—वही तो पूछ रही हू, क्यो नही ?

—अच्छा नही लगता।

—एक बात कहू ?

—कहो।

—मुझसे कहते हो कि अच्छा नही लगता ?

बहुत देर चुप रहने के बाद उसने कहा था—तुमने बहुत गलत

नही कहा था। तुमने सत्यवती नाटक का प्रथम दृश्य सुनकर उस दिन जो कहा था—उसके बाद यदि तुम कालरात्रि मे नायिका की भूमिका मे अभिनय करो तो वह नाटक ही मिथ्या हो जाएगा—नाटक ही रह जाएगा, उसमे सत्य न होगा।

—मतलब ?

—सोचकर देखो, समझ जाओगी।

बहुत देर बाद समझ पाने पर अतसी ने हसकर दीर्घ नि श्वास लिया था। कहा था—एक और बात कहूं ?

—कहो।

—नाराज़ मत होना।

—नही।

—बेशक, तुम पीते हो यह जानकर ही कहती हू। उसने मुझसे कहा है कि तुम पीते हो। कम से कम इस सस्कार को तोडने के लिए पीते हो कि न पीना धर्म और पुण्य है। तो आज आनन्द के लिए पियो। आओ, दोनो जने पिए। पीने से शायद मन का वह भाव दूर हो जाए।

अतसी ने दो गिलासो मे असली विदेशी शराब ढाली थी। अतसी की आलमारी मे उसने यह बोतल देखी थी, लेकिन वह शराब पीती है यह बात वह नही जानता था। उस दिन हाथ मे ग्लास लेकर उसने कहा था—तुम पीती हो ? क्यो ?

बडी मीठी हसी हसकर अतसी ने कहा था—पीने के लिए ही लाई थी; लेकिन पीना नही हो सका। उसके साथ पीना अच्छा नही लगा। आओ, आज तुम्हारे साथ पिऊ। देखो, नई बोतल है।

बोतल नई ही थी।

उस दिन उसने उपेक्षा नही की। दोनो ने एकसाथ मज़े मे पी थी। लेकिन वह शान्त नही हुआ, और भी अशान्त हो गया था। उस दिन उसे सुलाने मे अतसी को परेशान होना पडा था। लगभग सारी रात वह उसके सिरहाने बैठी रही थी। आखिरी रात मे जब अशुमान सो गया था तो वह भी उसके सिर के पास सिर रखकर लुढक गई थी।

× × ×

अगले दिन सवेरे उठकर वह अतसी और शिवकिंकर के मकान से उद्भ्रात भाव से ही बाहर निकला था। अतसी तब तक उठी नही थी। आखिरी रात मे सोकर वह तब भी गहरी नीद मे बेसुध थी। नीचे के तल्ले मे शिवकिंकर को पुकारकर उसने कहा था—मैं जा रहा हू। उससे कह देना। नही, जाने दो। मैं जा रहा हूं।

शिवकिंकर ने कहा था—ठहरो, गाडी बुला देता हू।

अधीर, अशात, उत्तप्त जीवन लिए जैसे उसमे स्थिर होकर खडा रहने तक की शक्ति नही रह गई थी।

अजीब है। या तो भाग्य, या भगवान, या । या क्या ? वह नही जानता। कहना पडता है, आकस्मिक घटना नही। अथवा वही क्यो; पृथ्वी मे, देश मे, इतिहास की राह काटकर जो घटना-स्रोत चल रहा है, उसीके एक स्रोत का आकर्षण है। वैसे ही एक आकर्षण मे पडकर वह उस दिन शाम को गिरफ्तार हो गया।

तीसरे पहर यूनिवर्सिटी गया था।

वहा छात्रो के दलो मे झगडे के बाद हाथापाई हो रही थी। कुछ देर बाद हाथापाई से कंकर और ईट-पत्थरो की बौछार शुरू हो गई। यह हगामा विश्वविद्यालय के इलाके से कॉलेज स्ट्रीट तक फैल गया। इसके बाद पुलिस आई। पुलिस ने जब लाठी लेकर खदेडा तो सारे दगे-हगामे का रुख बदलकर वह पुलिस और छात्रो की मुठभेड हो गई। इसके बाद उसके लिए निरपेक्ष रहना सभव नही हुआ। वह भी छात्रो के साथ जा मिला था। इसके बाद वह स्वय भी पुलिस की लाठी से घायल हुआ था और उसने अफसर की नाक पर घूसा भी मारा था। पहले उसीने मारा था। नही तो लाठी खाने के बाद उसके लिए घूसा मारना सम्भव न होता। वही उसके खिलाफ सबसे बडा अभियोग बन गया। अदालत मे उसने इसको अस्वीकार भी नही किया। उसने कहा —हा, मैंने घूसा मारा था। उन्होने क्या किया था, यह मैंने ठीक तौर से देखा नही। लेकिन छात्रो से पुलिस का झगडा हुआ, वे सामने पडे, मैने मारा। हां, यह मैंने सुना था कि उन्होने छात्रो को बड़ी कडवी

बाते कही थी।

छ महीने की सज़ा हो गई।

अशु जेल चला गया। शिवकिंकर उसकी पैरवी कर रहा था। वाम-पथी दल के वकीलो ने उसका समर्थन भी किया था—उसके न चाहने पर भी किया था। उन सब लोगो ने कहा, अपील करो। लेकिन उसने नही की। रजन, शिवकिंकर, अतसी, यही लोग शुरू से उसकी पैरवी कर रहे थे। वे लोग भी अपील के लिए उसे राज़ी न कर सके। उसने वकालतनामे पर दस्तखत ही नही किए।

लोग हमेशा से उसे सनकी कहते थे। उसका परिचय उसके कामो से मिलता है। लेकिन अपने निकट वह वैसा नही है। शायद वह ठीक-ठीक यह न बतला सके कि वह कौन-सा काम क्यो करता है, लेकिन इतना वह कह सकता है कि वह काम न करने पर वह अपने ही निकट चोर बन जाता। छात्रो के दगे मे उसका इस तरह पड जाना, उसकी सनक नही थी। उस समय भी यूनिवर्सिटी मे उसका नाम था, सम्पर्क क्षीण होने पर भी विलुप्त नही हुआ था। उस दिन दगा जब रास्ते तक फैल गया और पुलिस आई, उस समय भागनेवाले छात्रो मे से कुछ का लौटकर खडा हो जाना उचित था। इसीलिए वह लौटकर खडा हो गया था—उसने मारा था। इसीके लिए वह इस तरह जेल भी जा रहा है। गाधीवाद भले ही अचल हो जाए, उसके अन्दर कोई चीज है, जिसे फेक नही दिया जा सकता। जो लोग कौशल को माथे पर रखकर आन्दोलन करते है और कानून के छद से सजा को टाल देते है, उनका इन्कलाब बुरका पहननेवाला इन्कलाब है।

लेकिन लोगो ने कहा था—अशु नेता बनने की तैयारी मे जेल गया है।

शचीन दा ने उससे कहा था—तुमने यह क्या किया अशु! जेल गए भी तो एक ऐसे वाहियात 'ईशू' को लेकर! छिः-छिः! दुनिया भर के इण्टरनेशनल ईशू तो झुड के झुड बरसात के बादलो की तरह एक के बाद एक आकर पानी ढालते जा रहे है, बाढ आ गई है—देश मे एस० आर० सी० बंगाल-बिहार मर्जर, फूड वगैरह को लेकर तो तेल से सनी

फटी कथरी की आग जल ही रही है—इन सबको छोडकर एक वाहियात ईशू पर तुम जेल काटने चले ? अच्छी बात है । कुछ दिन जी बहला आओ । एक्सपीरिएंस रहना अच्छा है ।

उसने उत्तर नही दिया । जेल चला गया था । उत्तर उसके पास था नही । उसके निकट यह भी स्पष्ट नही था कि उसने अपील के वकालतनामे पर दस्तखत क्यो नही किए । उसकी इच्छा नही हुई । दुनिया उसे बर्दाश्त नही हो रही थी । सिर्फ मकान के लिए ही उसको चिन्ता थी । आखिर वह उसकी जिम्मेदारी वकील को दे गया था । तब उसका नौकर हरि उसके पास आ गया था ।

हरि की तनखाह और खाने-पीने के तथा अन्य खर्चों की बाबत वह छ महीने के लिए दो सौ रुपये वकील के हाथ मे देकर चला गया था । रजन ने कहा था—किसी कारण से अगर और रुपयो की ज़रूरत होगी तो वह मैं दे दूगा । आप चिन्ता न करना ।

पहले कुछ दिन बुरा लगा था । उसके बाद बुरा लगना मिट गया था या उड गया था ।

छ. महीनो के अन्दर, गाव से आकर और जेल मे मिलने की इजाज़त लेकर रमला और नवीन बाबू ने उससे भेंट की थी ।

रमला ने कहा था—मुझे ज़रा खबर भी नही दी ? जब जेल हो गई, अखबार में खबर छपी, तब मुझे मालूम हुआ । वकालतनामे पर एक दस्तखत कर दो—अपील करूगी । वे मामले-मुकदमे की बात खूब जानते हैं । तुम अपील मे जरूर जीतोगे ।

और, अतसी और शिवकिंकर भी आए थे ।

अतसी ने पूछा था—अचानक यह क्या फितूर पैदा हो गया ?

उसने कहा था—पता नही ।

—अपील क्यो न करोगे ?

—नही, कुछ दिन मज़े मे रहूगा ।

वह मजे मे ही था । जेल मे वह पढता रहा था और सोचता रहा था—लिखा भी था ।

उसने उपन्यास, नाटक, कहानियां और गीत लिखे थे।

लिखकर उसका जी नही भरा, लेकिन हृदय के, मन के उत्तप्त दीर्घ निःश्वास और व्याकुलता को वह व्यक्त कर सका था। अधकार-भरी धरती की व्यर्थता की वेदना और आलोक के लिए व्याकुलता को उसने व्यक्त करना चाहा था। उसे शायद वह कर सका था।

सडा हुआ समाज, गले हुए उसके आदर्श, ईश्वर कोरी कल्पना, सबसे बडा असत्य; स्वार्थांध मनुष्य; ईर्ष्या और हिंसा से जर्जर लोभी मनुष्य; मनुष्य क्रोध से उन्मत्त। सत्य एक अर्थहीन शब्द है। सतता एक मध्ययुगीन मूर्खता है, सतीत्व भी वही है, उससे भी अधिक, क्योकि वह कठोर सस्कार के रूप मे परिणत हो गया है। सब कुछ को अस्वीकार करके उसने नाटक-उपन्यास लिखे थे।

नाटक का नाम रखा था—'व्यर्थ नमस्कार'।

काल्पनिक नाटक था। पृष्ठभूमि प्राचीन काल की थी। एक साधक का जीवन। दुर्गम पहाड के शिखर पर भगवान का मदिर था। वहा कोई पहुच न सकता था। पुरोहित पहाड के बीच तक जाकर पूजा करके लौट आते। यात्री भी वैसा ही करते। लेकिन कहा जाता था कि मदिर तक पहुच जाने से दरवाज़े खुल जाएगे और भगवान का दर्शन मिलेगा। साक्षात् भगवान स्वय मदिर का दरवाजा खोलकर उससे बाते करेंगे। एक साधक ने प्रतिज्ञापूर्वक पूजन का थाल हाथ मे लेकर यात्रा की थी। मनुष्यो की बस्ती, उसका घर पीछे छूट गया। घर के दरवाज़े पर खड़ी रही उसकी मा। प्रेमिका ने मिन्नते की। मित्रो ने अनुरोध किया। बड़ो ने डर दिखलाया। लेकिन वह माना नही, चल पडा। बीच-बीच मे हवा मे उड आनेवाला मा का अतिम आक्षेप, प्रेमिका के विवाह-मडप के मत्रपाठ, शब्दो के साथ उसका दीर्घ निःश्वास, मित्रो का वेदना-कातर आक्षेप। इनमे से कोई उसे विचलित न कर सका। वह चढता ही चला जा रहा था। अचानक वह एक ऐसी जगह जा पहुचा, जहां से मानो दूसरी ही दुनिया शुरू होती थी। सर्वस्व-प्राप्ति का देश। परमानन्द की भूमि। सामने मंदिर था। वायु मे दिव्य सगीत ध्वनित हो रहा था। दिव्य गध फैल रही थी चारो ओर। आकाश ज्योति से उद्भासित था।

पृथ्वी का कोई शब्द नही था, सवाद नही था।

स्तब्ध होकर वह खडा रहा।

कुछ देर खडा रहकर उसने अनुभव किया, समझा कि सब भ्रम है, भ्राति है, मिथ्या है। गध नही है, ज्योति नही है, कोई सगीत नही है; सिर्फ इतने ऊचे पहाड के ऊपर हवा इतनी पतली है, इतनी कम है, इतनी हल्की है, कि उसके लिए सास लेने का भी ठिकाना नही है।

वह थर-थर कापने लगा। वह गिर पडा। गिरने के समय उसने कहा—मेरे सारे प्रणाम तुम लौटा दो, लौटा दो ?

उसके उपन्यासो का भी यही सुर था; लेकिन उनकी पृष्ठभूमि यथार्थ थी—उसकी मा का जीवन। उसने कल्पना की थी कि उसकी मां जीवन-भर इसी आदर्श के पीछे दौडती-भागती एक दिन थककर अतिम सास ले रही है और कह रही है—सब झूठ है, सब झूठ है, सब झूठ है।

जब वह बाहर आया तो जीवन-क्षेत्र जैसे उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने अभ्यर्थना करके आदरपूर्वक उसे ग्रहण किया।

छः महीनो मे बहुत परिवर्तन हो गए थे। दुनिया बडी तेजी से बदल रही थी। तिब्बत, हगरी, स्वेज, वियतनाम, कोरिया, इडोनेशिया, भारत-पाकिस्तान समस्या और जटिल हो गई थी। दगा हो गया था। फूड मूवमेट मे गोली चली; ट्रामे-बसें जलाई गई थी।

अतसी जीवन के रंगमच से अतर्हित हो गई थी। बम्बई के एक क्रिकेट-खिलाड़ी से विवाह करके वह बम्बई चली गई थी। वह अब फिल्मो मे काम न करेगी।

शिवकिंकर की दूसरी या तीसरी स्त्री अतसी की बहन थी, उसकी मृत्यु हो चुकी है। इस बार वह एक विधवा को गधर्व मत से या जाने किस मत से स्त्री की मर्यादा देकर घर ले आया था। वह आजकल रजन के साथ जूट और कोयले का रोजगार करता है। इसके सिवा फिल्मों का रोजगार। फिल्मो के कारबार मे एक गहरा धक्का देकर ही अतसी गई है।

रंजन ने कहा था—देखिए अशु बाबू, मेरी फिल्म कम्पनी मार खा गई है लेकिन मैं उस खानदान का हूं, जिसके तीन पुरखे रोज़गारी

रहे हैं। मैंने उस मार को सभाल लिया है, सभाल लूगा। जैसे ही मैं समझ पाया था कि अतसी का मन और उसकी नजर आपकी ओर है, वैसे ही मैने समेटना शुरू कर दिया था। कुछ रुपये उसको दिए थे और आपकी 'कालरात्रि' का राइट खरीदा था। वह मेरी है। उसके बाद मैंने पाव आगे नही बढाए। अतसी गई तो गई, अब मैं फिल्म का काम करूगा। प्रोड्यूसर नही, डिस्ट्रिब्यूटर के रूप मे। मैंने शिवकिंकर बाबू को साथ ले लिया है। हमे आपकी भी जरूरत है। आप हमारा साथ दीजिए। हम आपकी सब किताबो की फिल्मे बनाएगे, सारे नाटको का अभिनय करेंगे—षोडशी सघ की ओर से।

'व्यर्थ नमस्कार' नाटिका को लेकर ही वह पहले-पहल षोडशी सघ की मजलिस मे आया था। इससे पहले कालरात्रि मे अभिनय करने की बात ही हुई थी, वह मैदान मे उतरा नही था। जेल चले जाने से बात टल गई थी।

षोडशी सघ अभिजात सस्था है।

आठ दम्पतियो यानी सोलह सदस्य-सदस्याओ को लेकर गठित रस-रसिको की सस्था। ये ही प्रधान और प्रथम सदस्य है। इनके अलावा सोलह आदमी और है, जो दपती के हिसाब से नही आए है—दपतियो के अनुमोदन से आए है।

'व्यर्थ नमस्कार' मे नायक की भूमिका मे वह स्वय उतरा था। नाटिका के अन्तिम दृश्य मे वह पूजा का थाल फेककर पछाड खाकर गिर जाता था। उसकी सास रुकने लगती थी। वह मर्मांतक आर्तनाद करके कहता था—लौटा दो···मेरे प्रणाम लौटा दो। मेरे जीवन के सारे प्रणाम लौटा दो। उसकी प्रतिध्वनि सारे प्रेक्षागृह के प्रत्येक कोने मे जैसे सिर पीटती रहती थी।

'लौटा दो। मेरे सारे प्रणाम तुम लौटा दो।'

लगातार बीस रातों तक 'व्यर्थ नमस्कार' का अभिनय हुआ। कलकत्ते के रसिक-समाज मे और अखबारो के नाट्यालोचन के पृष्ठो मे 'व्यर्थ नमस्कार' नाटक और नाट्यकार अंशुमान चौधरी को लेकर हलचल मच गई।

अशुमान ने उस दिन बहुतेरे सपने देखे थे। एक धुधली कल्पना मानो क्रमशः स्पष्ट हो रही थी—आकार ग्रहण कर रही थी।

आधी आ रही है—तूफानी, अर्द्ध-काली, विषण्ण, भयातुर, म्लान-मुख विश्व-प्रकृति। आधी क्रमश घनी हो रही है। सूरज पर छाए ज्योति-दीप्त मेघ भी अब ढूढे नही दीख पडते। हवा मे सूखे पत्ते उड रहे है, गर्द-गुबार उड रहा है। झरझराहट के साथ उडकर अनजाने ही खो जाता है। इसके बाद बारिश होगी। शायद इसी बीच वज्रपात हो। शायद जड-सहित पेड उखड जाएगे। शायद गाव-बस्तिया उड जाएगी, चूर हो जाएगी। बाढ आएगी, प्लावन आएगा। आर्त कोला-हल थककर थम जाएगा। उसके बाद ·।

इसी बीच आया···।

१६५६ का साल।

दोनो हाथो से मुह ढककर मानो टूट जाना चाहा अशुमान ने। उसके जीवन की स्नायु-शिराए, उसके अन्तर की समस्त सहन-शक्ति, सारी कठिनता, युक्ति, तर्क, सिद्धात, उपलब्धि, विक्षोभ—सब कुछ मानो कडे खिचाव मे बधी वीणा के सब तारो के एकसाथ टूट जाने की तरह टूट गया।

सीता। सीता सेन।

१६५६ का साल। १६५६ मे आई थी सीता सेन।

रजन और शिवकिकर उसको ले आए थे। वह 'कालरात्रि' फिल्म मे काम करेगी। एकाकी के रूप मे 'कालरात्रि' का अभिनय करके देख लेगा। सीता की भी जाच हो जाएगी; नाटक मे फिल्म बनाए जाने की सभावनाओ का भी पता चल जाएगा।

रंजन ने कहा—अंशु दा, हीरो का पार्ट तुमको करना होगा और हो सका तो फिल्म मे भी काम करना होगा।

रजन उम्र मे उससे बडा है; लेकिन इन ढाई वर्षों मे अशु का भक्त बनकर वह उसे दादा कहने लगा है।

शिवकिकर ने कहा था—मेरा भी यही कहने को जी चाहता है

भाई अशु, लेकिन वैसा करना तुम्हारा मजाक करना होगा और उससे तुम्हारा अकल्याण भी होगा। आदमी के रूप मे मैं इतर हू, यह मैं जानता हूं। देयर इज़ बीष्ट इन मी। आई नो माई मीननेस—नैरोनेस आव माइड। (मेरे भीतर जानवर है। मैं अपनी क्षुद्रता—मन की कुटिलता जानता हू)। सबसे ज्यादा यह तुम मुझे जना देते हो। तुम्हे दादा कहू तो ऐसा जान पडेगा, मानो मैं इन दोषो का हिस्सा तुम्हारे मत्थे मढ रहा हू। अपने दोष तुम्हारे सिर डालने की कोशिश तो मैंने कम नही की। तुम्हारे पैर फिसले है—तुम फिसलकर गिरे भी हो, लेकिन उठकर खडे भी हो गए हो तनकर। अतसी ने मुझसे कहा था—उसको पकड रखने की ताकत मुझमे नही है।

अशु ने बाधा देकर कहा था—बकवास न करो शिवकिंकर दा ! तुम्हारे दोष तो हमारे ऊपर दोष लादने के लिए नही है शिवकिंकर दा ! दोष हमेशा ही मनुष्य मे होते है।

मद्यपान करता है, नारी को लेकर खेल-तमाशा करता है। व्यभिचार करता है। अपराध करता है। इन अपराधो और दोषो की सजा भुगतता है। मैं भी भुगत रहा हूं। मेरा जीवन इसका साक्षी है। वह झूठी गवाही नही दे रहा अथवा नही देता, इसके साक्षी तुम हो शिवकिंकर दा ! इसके लिए दोष न तुम्हारा है, न मैं तुम्हे दोष दूगा ही। दोष किसके लिए दूगा, जानते हो ? दोष तुम्हे इसलिए दूगा शिवकिंकर दा, कि जरा-सा गुण भी तुम लोग क्यो नही दे सके मुझे ? तुम लोगो के जमाने के सारे गुण इस तरह अस्वीकृत क्यो हो गए इस जमाने मे ?

शिवकिंकर आखे फैलाकर देखता रहा था उसकी ओर। वह ठीक-ठीक उसका मतलब न समझ पाया था। उसने कहा था—क्या कहा तुमने, बताओ तो ? जरा समझाकर कहो। बोलो तो !

अशुमान ने कहा था—क्या करोगे समझकर ?

शिवकिंकर दा का जवाब याद आता है। शिवकिंकर दा ने चौंका दिया था। बात उसने समझी थी लेकिन जरा देर से। इस बार अजीब हसी हसकर उसने कहा था—शायद यह ठीक है कि कुछ न होगा। समझकर भी तो इसका कोई प्रतिकार नही है। लेकिन यह तो बताओ,

उस जमाने के बडे-बडे लोग, जिनको भुनाकर आज भी तुम लोग गुज़र करते हो, जैसे रवीद्रनाथ को ही लो—उनका गुण—अथवा यही बात तुम उनसे कह सकते थे ?

वह चुप रह गया था। शायद वह यह कह सकता था कि हम लोग इस ज़माने मे क्या मानकर चल रहे है ? मेरा सवाल तो यही था। क्यो नही मानकर चलते ?—लेकिन उसने यह नही कहा था।

रजन ने बात को दबाते हुए कहा था—देखो तो, किन बातो मे आ फसे। अशु दा, भाई, तुम बचपन की पढाई-लिखाई का दाव-पेच छोडो। नही तो षोडशी सघ का परदा न उठ पाएगा। जो कृष्ण पक्ष लगा हुआ है, उसका अन्त न होगा। अमावस्या अस्त न होगी।

अशुमान हस पडा था।

अमावस्या अस्त होने की बात उसीने प्रचलित की थी। षोडशी सघ का असल नाम था 'फुल मून क्लब'; उस जमाने मे जिन लोगो ने यह नाम चालू किया था, वे विशुद्ध बगाली साहब थे। सभी रोज़-गारी-तिजारती थे। डलहौज़ी के इलाके मे क्लाइव स्ट्रीट से स्वैलो लेन लाल बाजार तक के एक-एक आफिस के मालिक। वे लोग टाई सहित चुस्त साहबी पोशाक पहनकर आफिस जाते थे। वे बडी-बडी अग्रेजी कम्पनियो—वार्ड, ह्लिजर्स, वार्डिन स्किनर कम्पनियो के साहबो के दफ्तरो मे अड्डा जमाते थे, दलाली करते थे, माल खरीदते-बेचते थे। वे एकसाथ ब्रोकर्स, एजेट्स, मर्चेट्स, बहुत कुछ थे। वे खूब अच्छी अग्रेजी बोलते थे, सस्कृति की बाते करते थे; थियेटर मे जाते थे, गाना-बजाना सुनते थे; सभा-समितियो मे सभापति बनते थे, चन्दा देते थे। इन्हीमे से तरुणो का एक दल सगठित हो गया था, जो सध्या समय स्नान करके, पाउडर लगाकर, चुनी हुई धोती और कुरता पहनकर उत्तर कलकत्ते के एक विशेष मुहल्ले मे, अपनी-अपनी कीमत से खरीदी हुई बाधवियो के यहा आकर गाना सुनते, शराब पीते और पान खाते थे। वे बीच-बीच मे सामूहिक रूप से बगीचा-घर भी जाते थे। कहानी मे राज-पुत्र, मत्री-पुत्र, कोतवाल-पुत्र और वणिक्-पुत्र की बात आती है। दैवक्रम से ये आठ पुत्र हो गए थे। ये आठो आकस्मिक रूप से एक

पूर्णिमा की रात को बगीचा-घर मे इकट्ठे हो गए थे। चन्द्रमा की रोशनी से मुग्ध होकर उन लोगो ने निश्चय किया कि वे हर महीने पूर्णिमा की रात को मिला करेंगे—अकेले नही, अपनी-अपनी बाधवियो के साथ। आठ के दूने सोलह आदमी। विचित्र रूप से सोलह कलाओ से पूर्ण चन्द्रमा को आकाश मे छोडकर ये सोलह व्यक्ति मर्त्यलोक की सोलह कलाओ के समान इकट्ठे होते थे।

कालातर के साथ रूपातर अवश्यभावी है। सदस्यो की उम्र हुई; १९३० का साल बीत गया। कई सदस्यो का शरीरात भी हो गया। नये सदस्य आए। नये नियम बने। नियम बना कि सदस्य लोग बाधवियो के साथ न आएगे—वे दपती होकर जोडे मे आएगे। औरते खाना-पीना बनाकर खिलाए-पिलाएगी—उनका मनोरजन करने के लिए आएगे नामी-गरामी आर्टिस्ट लोग।

उस्ताद आएगे—रवीन्द्र सगीत की गायक-गायिकाए आएगी—कीर्तन गानेवालिया भी आएगी। मजलिस मे प्रत्येक दम्पती एक मित्र-दम्पती को भी ले आ सकेगा। पहले पेय प्रचुर मात्रा मे रहता था। आजकल पेय की जगह बाढ-नियन्त्रण पद्धति चालू हो गई है।

इसी प्रकार षोडशी सघ ने अब एक क्लब का रूप ले लिया है और अब वह केवल व्यवसायियो की सीमा मे नही बधा है। सदस्य वही आठ दम्पती है और उनके साथ आजकल सोलह मित्र एसोशियेटेड मेबर हैं। वे दम्पती नही है और आजकल षोडशी सघ की गाडी को अभिनय का इन्जन खीचे ले जा रहा है। अभिनय से पहले पुस्तक के चुनाव के ठीक बाद भी नही, रिहर्सल के दिन से जमाव शुरू होता है और अभिनय के दिन तक, वह मानो शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की तरह एक-एक कला से बढता जाता है। अभिनय के दिन पूर्णिमा का उदय होता है। उसके बाद आता है कृष्ण पक्ष। सदस्यो का आना बन्द होने लगता है। धीरे-धीरे ऐसा हो जाता है कि कोई नही आता।

बैरा रोशनी जलाकर बुझा देता है।

रजन सम्पादक है। वह किसी दिन आकर खोज-खबर लेता है, किसी दिन टेलीफोन से बैरा को कह देता है—कोई आए तो कहना, आज

मुझे काम से फुर्सत नही है।

एक ज़माने मे सघ के साथ पूर्णिमा का सम्बन्ध था और आज भी है; इसलिए स्वाभाविक रूप से वे लोग इस समय को कृष्ण पक्ष कहते थे और जब सघ का काम बिलकुल ही बन्द रहता था, उस समय को अमावस्या कहते थे। किसीको पता नही कि यह उपमा किसने चालू की थी।

अशुमान के 'व्यर्थ नमस्कार' के अभिनय के समय शचीन दा ने अचानक कहा था—कृष्ण पक्ष की अमावस्या बीत गई अब। क्यो अशु-मान, तो आज की तिथि को शुक्ला प्रतिपदा कहा जाए?

उनकी बात का सूत्र लेकर अशुमान ने एक अधूरी कविता लिखी थी और उसे एक कागज पर लिखकर रजन के हाथ मे देते हुए कहा था—खूब रहेगा। यही नोटिस ईशू कीजिए।

"अमावस्या के अवसान पर, षोडशी सघ की आरम्भिक शुक्ला प्रति-पदा की आगामी· तारीख को चन्द्रमा की सब कलाए जहा, जिस काम मे हो अवश्य-अवश्य आए—यह खबर दौड जाए दिशा-दिशा मे।"

इसे अखबारो मे छपाया जाएगा। यही नियम था।

इस बार की अमावस्या, यानी 'व्यर्थ नमस्कार' के अभिनय के बाद की अमावस्या, अधिक लम्बी हो गई है। शायद इसका कारण है अतसी। इन दिनो अतसी ही षोडशी सघ की वह चन्द्रकला बन गई थी, जो शुक्ला प्रतिपदा के दिन से आरम्भ होकर, पूर्णिमा को पार करके, कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के रात्रि-शेष मे भोर के साथ मिल जाती है। सपादक रंजन भी उसके अभाव मे उत्साह नही पा रहा था।

रंजन ने उस दिन उत्साहित होकर 'कालरात्रि' के अभिनय की बात चलाकर अशुमान से कहा था—छोटे बच्चे को पढने बैठाकर उसका मुह बन्द करने का पेच छोडो भाई अशु! नही तो षोडशी संघ की यह अमावस्या अस्त नही होगी।

रजन सीधा-सादा आदमी है। रंजन के बारे मे सभी लोग एक बात कहते है। कहते हैं—हि इज ए स्पोर्ट—शुद्ध खिलाडी। वह काम चाहता है। इसके लिए वह सब करने को राज़ी है। और इधर उसने

सकल्प कर लिया था कि षोडशी सघ और अशुमान को बढाकर छोडेगे।

लोग कहते है, इस सकल्प के पीछे एक और सकल्प है। वह है उसकी फिलम डिस्ट्रिब्यूशन और प्रोडक्शन कम्पनी। जो लोग और गहरे तत्त्वग्राही हैं वे कहते है, और भी गहरा, और भी जटिल सत्य है। वहा रजन क्या तो नारी-विलासी है।

रजन से पूछने पर वह कहता है—वह मैं बिलकुल नही हू, यह तो नही कह सकता। सुन्दरी तरुणी के प्रति लोभ मुझमे है। लेकिन मैंने किसीको पथभ्रष्ट नही किया।

इस दिशा मे शिवकिंकर के साथ रंजन की समानता है। लेकिन षोडशी क्लब मे वह अपनी धर्मपत्नी को लेकर ही आता है।

उस दिन अमावस्या बीतने की बात पर अशु ने प्रश्न किया था—लेकिन सोलह कलाओ मे पहली कला थी अतसी। उसकी जगह किसका उदय होगा? शिवकिंकर दा की तृतीया तो बिलकुल गृहिणी है। वे रसोईघर मे तरी-तरकारी के बीच चलेंगी—मतलब यह कि वे तो कच्चा केला है। पूजा के लिए सोलह कलाओ मे से एक कला तो पका हुआ केला चाहिए।

शिवकिंकर बोल उठा था—मेरी स्त्री कच्चा केला है सही, लेकिन रजन तो कच्चा आदमी नही है। उसे मैंने सीता सेन को दिखाया है। पूछो उससे।

रजन ने कहा था—अच्छी लडकी है भाई! वह अगर जम सके तो फिल्म-जगत् मे नई तारिका उदित होगी। अतसी की तरह ब्राइट नही है, लेकिन सीता सेन बडी मीठी लडकी है।

शिवकिंकर ने कहा था—इसके अलावा एकदम माडर्न है। पढी-लिखी लडकी है, फर्राटे से अग्रेजी बोलती है। ऐड—बहुत सम्भव है, पार्ट भी अच्छा करे। लेकिन कह देना अच्छा है, षोडशी सघ मे उसके आने का प्रधान आकर्षण तुम हो।

—मैं?

—हा, तुम्हारा नाम सुनकर ही राजी हुई है।

अशुमान थोड़ा हसा था। स्पष्ट स्मरण आता है कि यह, उसके पुरुष लेखक-मन के अहकार और पुलक से भर जाने की बात थी। एक के बाद एक अतसी, रमला और नमिता की याद उभर आई। अतसी पर उसे दया आती है। अशु ने उसे प्यार करना चाहा था, किन्तु अतसी ने ही उसे प्यार नही करने दिया। अशुमान अतसी को दोष न देगा। अतसी मन की अस्पृश्यता को दूर करके किसी तरह ऊपर नही उठ सकी। और, उसके अपने पास भी उस दिन प्यार जैसी कोई चीज नही थी। उसने उसकी चर्चा की थी। प्रेम-प्यार अगर उस जमाने मे था—किसी तरह वह अतीत काल के विलुप्त प्राणियो की तरह उस जमाने मे जन्म लेता—तो इस ज़माने मे समय के परिवर्तन के साथ प्रेम-प्यार विलुप्त और निश्चिह्न हो गया है। जीव-विज्ञान, देह-विज्ञान को खोद-खोदकर ढूढ डालो, उसका कही पता न चलेगा। स्वय प्यार देने जाकर उसने देखा है कि वह जो कुछ देने जा रहा था, वह केवल करुणा थी और उसके साथ था अतसी के कोमल-सुकुमार शरीर पर लोभ।

रमला उसके पैरो पर अपने को ढाल देने आई थी। वह भी उसके प्रति आकर्षित हुआ था। लेकिन अशुमान ने उसे ग्रहण नही किया, उसका तिरस्कार किया था। रमला ने एक बूढे से ब्याह कर लिया। वह उसे प्यार नही करती, लेकिन अन्न-वस्त्र और आश्रय के लिए विवाह करने को लाचार हुई थी। इसके बाद आती है नमिता। उसके होठो के किनारे टेढी हसी फूट उठी थी। उसे छोडो। नमिता को छोड दो।

एक प्रभावशाली नाटक के कुछ सवाद अशु को बडे अच्छे लगते है। नायक ने एक स्थल पर नायिका से कहा है—विमला, लक्ष्मी की पूजा दुनिया मे सभी लोग करते है, लेकिन लक्ष्मी का वाहन उल्लू सदा से घृणित जीव रहा है। नमिता भी एक उल्लू है। फिर भी अचरज की बात यह है कि रमला नही रहेगी; रहेगी अतसी और नमिता। इस तरफ और उस तरफ।

—वह तुम्हे पहचानती है।

अंशुमान विस्मित नही हुआ। उसको पहचानने मे अचरज क्या है?

है। फिर भी इस देश मे हिन्दू और मुसलमानो के झगडे से देश के दो टुकडे हो गए और उसके चलते जो रक्तपात हुआ, आज भी उसका अन्त नही हो रहा है। इधर हिन्दू मरते है, उधर मुसलमान मरते है। मृत ईश्वर की प्रेतात्माए लोगो के सिर चढकर अट्टहास करती है और यह उसका ध्वस करना चाहता है। मैं ईश्वर को नही मानता, लेकिन उसकी प्रेतात्मा के डर से तो छुटकारा नही है।"

याद है, यही देखकर वह आकाश की ओर ताकता रहा था। उसे याद आया, उस दिन एक रूसी उपग्रह अपने कक्षपथ मे परिक्रमा करता हुआ कलकत्ते के माथे पर से निकल जाएगा। कोशिश करने पर कल-पुर्जों से उसका 'पिप्-पिप्' शब्द सुना जा सकेगा। याद आता है, उसे लगा था कि निश्चित और शात जीवन हमेशा के लिए खत्म हो गया है। उसे देवग्राम का जीवन याद आया था। सवेरे उठकर निश्चितता-पूर्वक वायु-सेवन, व्यायाम, दूध-लाई-गुड खाना अथवा चार पूरिया खाना। पिता सवेरे थोडा काम-धन्धा देखते थे, मैदान मे थोडा घूमते थे, थोडा कांग्रेस का काम करते थे। उसके बाद स्नान, भोजन, निद्रा और शाम को अड्डेबाजी। अब यह सब नही है। यह सारा कुछ खत्म हो गया है। चिडियो की चहचहाहट, फूलो की गंध, आसमान के बादल—सब कुछ है, लेकिन होकर भी वह मनुष्य के लिए नही है। यह सब उसकी आखो से दीखता ही नही।

इसी बीच रास्ते से मुडकर, उसके घर के सामने रुककर उसने कहा था—नमस्कार।

उसकी ओर आखे फेरकर अचानक उसे लगा था कि शाम उजली हो गई है। लम्बी-छरहरी, उजले सुनहले रग की एक औरत आग की लपटो के रग की नाइलन की साडी, लाल साटन का ब्लाउज और पैरो मे गाढे लाल रग का सैंडल पहने हुए थी—और इसीके बीच था एक मीठा चेहरा, दो उजली आखें, तेल से चिकने केशो की दो चोटियो को गूथकर बना जूडा। घर के बरामदे के नीचे खडी होकर, सीढी पर पैर रखकर और नमस्कार की मुद्रा मे दोनो हाथ उठाकर उसने कहा था—नमस्कार।

याद आता है, उसके दाहिने हाथ मे सोने की कई चूडिया थी, बायें हाथ मे काले फीते से बधी रिस्टवाच। गले मे लाल दाने और सोने के मटर मिलाकर गूथा एक हार। कान मे ? कान मे क्या था ? थी रिंग-मकडी।

अशुमान ने आखे मिचमिचाई थी। वह दुःस्वप्न की तरह जटिल ऐसी चिन्ता के बीच एक ऐसा श्री-समन्वित रूप देखने और ऐसा सगीत-भरा स्वर सुनने के लिए तैयार नही था।

दो क्षण बाद उसने बदले मे नमस्कार करके कहा था—कुछ कहना है ?

उसने कहा था—मैं जरा घर के अन्दर जाकर औरतो से मिलना चाहती हू।

अशुमान ने कहा था—क्या चाहती है, कहिए ? चुनाव ? या कोई कान्फ्रेस ? औरत तेज थी। उसने कहा था—नही, चुनाव या पार्टी नही। बिलकुल सीधी-सादी कनवासिग।

अशु ने कहा था—जो कहना हो, मुझसे ही कहिए। घर मे औरत के नाम पर कोई नही है।

उसने कहा था—तब मैं किसी दूसरे दिन आऊगी। कहकर वह जाने को तैयार हो गई थी। अशुमान ने पुकारकर कहा था—उस दिन भी कोई औरत नही मिलेगी। मैं बैचलर हू। औरत चकित होकर सिर घुमाकर खडी हो गई थी।

अशुमान को सारी बाते याद आ गईं।

रजन और शिवकिंकर ने उसके बारे मे उन बातो की याद दिलाई तो उसे साफ-साफ उसकी याद आ गई। सीता सेन। बडी मीठी औरत थी।

शिवकिंकर ने कहा था—बहुत माडर्न औरत है।

रजन बोला था—अगर फिल्म मे उतरे तो एक नई स्टार का उदय होगा।

वही बात पकड़कर अंशुमान ने पूछा था—हा, चेहरा तो अच्छा है; लेकिन उसने कभी अभिनय किया है ?

रजन ने कहा था—नही, किया तो नही, लेकिन कर सकेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। वह तो किसी तरह राजी ही नही हो रही थी। अचानक मैंने तुम्हारा नाम लिया—यानी मुझमे और शिवकिंकर बाबू मे बाते हो रही थी। सुनकर उसने पूछा—लेखक अशुमान चौधरी ? मैंने कहा—हा। कहानी उन्हीकी है। वे ही हीरो है। हमारे क्लब के मेबर है। इसके अलावा शचीन सेनगुप्त हमारे पैट्रन है। तब वह बोली—जब वे लोग है तो मैं काम कर सकती हू।

शिवकिंकर ने कहा—काम करेगी और चमक उठेगी, देख लेना। मैं विस्तार से सारी बातें कहता हू। सुनो। मैं चिडियाखाना गया था। रोजगार के चक्कर मे था। कुछ माल सप्लाई करना था। अचानक जैसे कलरव करते हुए साइबेरियन हसो का दल झपाझप उतर पडता है, वैसे ही कलरव की आवाज आई। देखा, तरुण-तरुणिया, युवक युवतिया, प्रौढ-प्रौढाए, बगाली-देशी क्रिश्चियन, एक ऐंग्लो लडकी—कुल मिलाकर दस-एक आदमी आ पहुचे—उनके हाथों मे खाने के पैकेट थे। देखते ही मैंने समझ लिया, दिन-भर का प्रोग्राम है, ये लोग पिकनिक पर आए है। देखते ही मन मे आया कि यह औरत फिल्म मे उतर सकती है और उतरने पर मात दे सकती है। गोल घेरे मे बैठकर वे लोग सिगरेट पी रहे थे। देखकर और अचरज हुआ। सिर पडकर मैंने परिचय किया। ऐसे मामलो मे दियासलाई परिचय का अमोघ अस्त्र है। उन लोगो ने दियासलाई दी, मैंने सिगरेट का टिन सबकी ओर बढा दिया। परिचय हुआ। उन लोगो ने मुझे चाय पिलाई। उनके बारे मे जानकारी हासिल की—वे लोग ज़ेनिथ ऐंड कपनी के कनवासर एजेट है। अपने क्लब की एनेवर्सरी सेलेब्रेट करने आए है। 'ईट, ड्रिक एड बी मैरी क्लब' (खाओ, पियो, खुश रहो क्लब), सक्षेप मे 'एडाबेम' के। बाम्बे क्लब के एक व्यक्ति चीफ गेस्ट होकर आए है। वह औरत सिगरेट पीकर खूब खास रही थी। मैंने समझ लिया, नई रगरूट है, सिगरेट पीने का अभ्यास नही है। उसने कहा भी यही। आज सबको सिगरेट पीनी होगी। मैने कहा—फिल्म मे काम करोगी ? बेशक मैंने चुपके-चुपके ही कहा। उसने कहा—सच कह रहे है ? मैंने कहा—पता ले लो, जाच करके देख लो। इसके बाद उसने

कहा—मुझसे हो सकेगा ? मैं बोला—सकेगा के क्या माने ? हिट् कर जाओगी । मैं गारटी देता हू । दस-एक दिन पहले, एक दिन सवेरे-सवेरे आ पहुची । सुना, उसने जाच की है । तब रजन को बुलाकर परिचय कराया । रजन खुश हुआ । लेकिन वह मुकर गई । इसके बाद सकट-भजन नाम, श्रीमान् अशुमान, लाए परित्राण, बोलो हरि-हरि । यह विवरण रजन ने बताया है । उसने सुना है ।

ज़रा हंसकर उसने कहा—अत. इसके बाद शुक्ला प्रतिपदा की नोटिस ईशू करने मे आपत्ति होना उचित नही है । शचीन दा के पास पहले ही गया था । वे बिछावन पर लेटे हुए थे । उठ बैठे । उन्होने कहा—बिस्तर पर उत्साहित होकर उठ बैठा है रोगी । प्रमाण देख लो । काम शुरू कर दो । लेकिन लडकी को एक बार मेरे पास ले आओ । उसे दो-चार अच्छी बाते बताऊगा । न मानेगी तब भी बताऊंगा । शायद हम लोगो की बात, अच्छी बात होने पर, उस ज़माने मे रामायण के राम के पितृ-सत्य-पालन के लिए वन जाने की तरह एब्सर्ड हो सकती है । मुझसे एक बैरिस्टर ने कहा था—अगर राम का ब्रीफ मुझे मिलता तो मथरा ऐण्ड कैकेयी के षड्यत्र की हड्डिया बीच बाजार मे तोड देता ।

सीता को लेकर रजन उसके यहा गया था । साथ मे वह भी था । लेकिन वह रिहर्सल के बाद की बात है ।

रिहर्सल के पहले दिन, आग्रह करने पर भी अशुमान ने पहुचने मे कुछ देर कर दी थी । कारण यह था कि वह जानता था—पहले दिन वे आठ दपती मिलकर थोडा आडबर करना चाहेगे । सम्पन्नता यानी अर्थानुकूलता का जो एक विशेष परिचय है—जिससे साधारण मनुष्यो के समाज मे ईर्ष्या, विद्वेष और जिसे कहते हैं जी जलना, उसकी सृष्टि होती है—उसीका बाहुल्य होगा । आपसी बातचीत मे वाणिज्य-व्यवसाय की बाते होगी, शायद कुछ राजनैतिक चर्चा भी हो । कोई बगाल के 'ग्रांड ओल्ड' यग मैन' डॉक्टर राय की बात करेगा, कोई करेगा प्रफुल्ल दा यानी सेन की बात । अतुल्य दा भी न छूटेगे । उधर प्राइम मिनिस्टर से लेकर अशोक सेन, कबीर साहब, सिद्धार्थ राय, ज्योति बोस तक ज़िंदा-

बाद-मुर्दाबाद होगे । देश के फूड, एग्रिकल्चर, यूनिवर्सिटी, होम और पुलिस के बारे मे कठोर आलोचना होगी । इसके अलावा हगरी है, स्वेज कनाल है, अभी-अभी जागा अफ्रीका है । इदोनेशिया का बडे-बड़े दो दातोवाला सुकार्नो है । चीन मे माओत्से तुग है । कोरिया मे सिगमैन ही है । होची मिन्ह है । सबसे ज्यादा है रूस मे अभी-अभी ऊचा उठा रसिक, कठोर मानव निकिता ख्रु श्चोव ।

इन लोगो को लेकर आलोचना करने मे पहली मजलिस बिलकुल मछुआ बाज़ार बन जाएगी । इसमे कम से कम पौन घटा लगेगा—उससे पहले पन्द्रह मिनट हलो-हलो का मामला चलेगा । कैसे है ? यू लुक वेरी स्मार्ट, आह—वेरी-वेरी स्मार्ट (तुम बहुत स्मार्ट दिखते हो, बहुत ही ज्यादा स्मार्ट) । आपका बच्चा कैसा है ? उसके बाद बिज़िनेस की बातें होगी । उसके बाद आएगा कोल्ड ड्रिंक ।

क्लब-घर सचमुच सुन्दर है ।

बीचोबीच खासा बडा एक हॉल है । दोनो तरफ दो कमरे है । एक बिलियर्ड टेबुल है—बेशक बनात पर बहुत ज्यादा धूल जमी हुई है । एक कमरे को पार्टीशन से दो हिस्सो मे बाट दिया गया है—एक सेक्रेटरी का कमरा है, एक मे है कैटीन । वहा चाय-कॉफी वगैरह तैयार होती है । कोका कोला, सोडा, आइसक्रीम मिलता है—कडा पानी नही मिलता, लेकिन मौका आने पर मगा लिया जाता है ।

बड़े हॉल मे तीन ओर दीवार से सटे तकिये रखे है । एक ओर कुर्सिया और सोफा सेट है । बीच मे रिहर्सल होता है, गाना-बजाना होता है ।

आठ दपतियो मे पहला है रंजन—उसकी स्त्री आधुनिका है । गाना अच्छा गाती है । मीठी औरत है । सिनेमा देखती है, थियेटर का भी नशा है । लेकिन वह कामिक रोल करना चाहती है । शिवकिंकर पहले दपती था, अब अकेला है; वह मैनेजमेट देखता है । नरेन बोस लिखा-पढा आदमी है—थोडा-बहुत लिखता भी है, दलाली करता है, उसकी स्त्री अमिया क्रिटिक है, विमल राय नामी बैरिस्टर का लड़का है—खुद भी विलायत से लौटा है, लेकिन उसने कुछ पास नही किया,

यहा आकर टूरिस्टो को अपना देश दिखलाता है, इस देश के क्यूरियो बेचता है, विमलराय की स्त्री साहित्यकार की सुन्दरी कन्या है, लेकिन बहुत अधिक सोफिस्टिकेटेड है। पति की खातिर इन लोगो से मिलती-जुलती है, लेकिन इन्ही दो-चार दिनो तक।

इसके अलावा जे० चटर्जी, पी० मुकर्जी और आर० बोस है। ये सभी कोल-प्रिस है। एक डॉक्टर भी है। इडियन पॉलिटिक्स के इजिन रूम मे इन लोगो का आना-जाना बेरोक-टोक होता है। जब जैसा जी चाहता है, कभी यह स्क्रू, कभी वह नट कस देते है, कभी अलग कर देते है। काग्रेस से लेकर कम्युनिस्ट पार्टी तक के तने से लेकर डाल-पत्ते-टहनियो को लेकर जो तरह-तरह की पार्टिया है, उनमे से प्रत्येक के साथ इन लोगो का अत्यन्त प्रीति का सम्बन्ध है। इनके आरभिक मिलने जुलने तथा आलाप-वैचित्र्य की उपमा शायद एकमात्र मयूर के खुले पंखो से दी जा सकती है। मनोरम है, इसमे सन्देह नही। मृदु, मध्य तथा बीच-बीच मे उच्च हास्य से ताल-ताल की मुखरता अच्छी लगती है, लेकिन अशु इसे पसन्द नही करता।

हा, उनके साथ और भी कई लोगो के नाम है। एक हैं मिनू मौसी। एक दूसरी, बडी दीदी।

मिनू मौसी किसी समय मधु बोस के सी० पी० ए० दल की एक बहुत बडी उत्साहदात्री थी। उनको सजाने-सवारने के मामले मे मौसी की सहमति के बिना कोई मेक-अप स्वीकार ही नही किया जाता था। अली बाबा नाटक मे वे अली बाबा की बेगम फातिमा की डुप्लिकेट थीं। बड़ी दीदी उनसे भी ज्यादा है—वे विलायत से हो आई हैं—उन्होने अध्यापन का काम शुरू किया था, लेकिन उनसे एक धनी के लडके ने ब्याह कर लिया—बेशक वे भी विलायत-लौटे आदमी थे। ये उन्हीकी विधवा है। यो ही लोगो की तादाद कम नही है—सोलह आदमी है। बेशक, शचीन सेनगुप्त, अशुमान आदि भी उन्हीमे है।

इनकी आलोचना के एव आरभिक गौरचन्द्रिका अथवा प्रोलॉग के स्वरूप के साथ अशुमान का परिचय था, इसीसे वह उस दिन देर करके पहुचा था।

इस दिन की उस स्मृति, उस छवि ने आज उसे विचलित कर दिया। वह सन् १९५९ के दिसम्बर का महीना था और आज है सन् १९६७ का फरवरी महीना। इतने दिनो के बाद आज ऐसा याद आता है, जैसे कई दिन पहले देखी हुई छवि हो।

जब वह पहुचा था, तब तक सब लोग आ चुके थे। मिनू मौसी और बड़ी दीदी भी। शचीन दा बीमार थे। सब लोग उनकी उम्मीद मे थे और उसकी भी, जो आज पहली बार आनेवाली थी। सब लोग सीता की राह देख रहे थे।

सम्भवतः सीता के बारे मे टेढी, तीखी और मधु-सिक्त आलोचना ही चल रही थी। सबसे ज्यादा मुखर थी रजन की स्त्री और नरेन बोस की एम० ए० पास क्रिटिक स्त्री।

वे ही कह रही थी—मर्दों का वही · वही एक मापदड है—जो नया है, वही स्वर्गीय अथवा अपरूप है। बेशक एक तरह से यह गलत भी नही है, क्योकि जिस रूप को देखा नही है अथवा जो नया रूप है, वही है अपरूप।

अंशुमान आकर बैठा तो बात का सिलसिला टूट गया। लेकिन मिनू मौसी ने हिम्मत नही हारी। उन्होने कहा था—हमारे ड्रामेटिस्ट हीरो का क्या विचार है?

अशु ने हसकर कहा था—मैं तो मौसी, कुछ नही कहता।

रजन ने कहा था—जूतो की आवाज सुन पडती है। शिव दा शायद मिस सेन को लेकर आ रहे है। दूसरे ही क्षण बोला—लो, वे आ ही गए।

खुले दरवाज़े की ओर देखता बैठा था रजन।

सबने पलटकर दरवाजे की ओर देखा।

एक औरत अन्दर आई। सचमुच अपूर्व थी देखने मे। रग उजला गोरा, तपाए सोने की तरह, खूबसूरत आखे, उसपर त्वचा मे एक कोमल लावण्य की मसृणता है। पार्ट के लिए जैसी जरूरत है, वैसी ही लम्बी-छरहरी; छोटा मस्तक, दोनो आखे खिची हुईं और बडी-बडी, होठ और चिबुक अत्यन्त सुन्दर, सबसे सुन्दर दन्त-पक्ति, हसने पर वह

मनोहारिणी बन जाती है, केशराशि कन्धो से उतरकर पीठ का चौथाई हिस्सा घेरे बिखरी हुई है—बाकी हिस्से को काटकर छोटा कर दिया गया है। सामने की ओर, सीधी माग के दोनो तरफ के केश थोडा फुलाकर सजाए गए है। बडा सुन्दर लगता है, लेकिन कोई यह तोहमत नही लगा सकता कि उसने प्रसाधन किया है। कानो मे दो गोल रिंग है। उसने हसकर नमस्कार किया। बाये हाथ मे घडी है, दाहिना खाली है। उगलिया लम्बी है। गले मे लाल दाने या लाल बिड और सोने के मटर-दानो का एक हार या माला पडी है।

अशुमान विस्मित हो गया। यह सीता सेन जैसे वह सीता सेन है ही नही। लाल रग की पोशाक ने उसको एक दीप्ति दी थी, आज सफेद कपडो मे वह उदास दीख रही है, लेकिन इसीसे जैसे वह और सुन्दर लग रही है।

सीता सेन ने उसे नमस्कार किया—अच्छे तो है ? मुझे पहचान रहे है ?

अशु ठीक समझ नही पाया, बात मे कुछ व्यग्य है या नही, लेकिन यह निश्चित है कि सकुचित विनय का अभाव नही था। अशु ने प्रति नमस्कार करके कहा था—ये लोग कह रहे थे, हीरोइन सीता सेन एक अपूर्व नई महिला है और वे मुझे पहचानती है। कुछ अन्दाज़ तो मैंने कर लिया था। लेकिन आज देखता हूं, इस आपमे और उस आपमे फर्क है। लेकिन उस रक्तराग से इस शुभ्र पद्मराग के रूपान्तर मे भी मैंने आपको देखते ही पहचान लिया। आज आप अद्‌भुत लग रही है।

सीता सेन हारी नही। उसने कहा था—आज तो मैं हीटर की विज्ञापनवाहिनी नही हू—आज हू मधुकर-मोहिनी हीरोइन।

'कालरात्रि' नाटिका के नायक का नाम है 'मधुकर'। बनावटी नाम है, लेकिन अत मे वही असल नाम हो गया है। अशुमान खुश हुआ था; क्योकि औरत मे सीरियसनेस है। इसी बीच उसने किताब पढ ली है।

अशुमान तब भी कौतूहल-भरी, जाचनेवाली आखो से उसे देख

रहा था। देखना उसे अच्छा लग रहा था।

आज उसके पहनावे मे सब कुछ सफेद है। एक और फर्क है। उस दिन बाये हाथ मे रिस्टवाच थी, दाहिने मे सोने की रूली थी, आज रिस्टवाच है, रूली नही है। एक और फर्क है। आज छोटे-छोटे केश शैंपू-किए हुए है, बिखरे हुए। उस बार दोनो ही दिन केशो मे तेल के स्पर्श की हल्की चिकनाहट थी और सिर पर दो चोटियो का एक सुन्दर जूडा था।

उस दिन की अपेक्षा आज वह कही अधिक मनोहारिणी लग रही थी। बिखरे हुए शैंपू-किए केशो मे एक झिलमिल नशा है, जो आखो मे लगता है, नाक की सास मे लगता है। वह सामने ही बैठी है, उसके विपरीत। एक भली हल्की खुशबू आ रही है।

नही···। उस दिन भी उसके प्रति ठीक-ठीक आकर्षित नही हुआ था। अशु की मान्यता है कि पुरुष और नारी के बीच जो आकर्षण है, वह एक सूत का आकर्षण नही है—दो सूतो की लपेट से वह आकर्षण पूरा होता है। एक आकर्षण देह का है, दूसरा मन का। दोनो एकसाथ जुडकर, मजबूत होकर, जब खीचते है, तभी वह खिचाव सच्चा होता है। देह का आकर्षण मनुष्य को दिन-रात खीचता रहता है। वह तरुण है, युवक है—उसकी देह के रध्र-रध्र मे नारी-देह की कामना क्रदन करती है—प्रत्येक अंग के लिए प्रत्येक अग तडपता है। बीच-बीच मे वह क्रदन असह्य हो जाता है। देह-व्यवसाय के लिए बाजार है। वह अस्वीकार भी न करेगा—कभी-कभी उसने उस दुर्वार वासना को चरितार्थ किया है। उसके लिए उसके मन मे किसी तरह का अपराध-बोध नही है। लेकिन देह और मन, इन दोनो से किसी नारी की देह और मन की कामना करना अलग बात है। वैसी किसी कामना ने उसे चचल नहीं किया। इसी कारण उसे खासे निस्सकोच भाव से देखकर उसने जाच लिया था कि हीरोइन का पार्ट उसे फबेगा या नही।

सीता को थोड़ी परेशानी का अनुभव हुआ था।

शिवकिंकर ने कानो मे कहा था—लडकी मे चुम्बक नही है ?

शिवंकिकर की बात का कोई जवाब न देकर अशुमान ने कहा था—आप खूब अच्छी लगेंगी। इससे पहले अतसी नाम की एक लडकी ने यह पार्ट किया था। उसकी हाइट जरा कम थी।

सीता सेन शर्मिंदा हुई थी। अशुमान ने कहा था—जरा देर पहले आपने कहा था, 'मधुकर-मनमोहिनी'। इससे मैं समझता हूं कि इसी बीच आपने नाटिका पढ डाली है।

सीता ने कहा था—मैंने रेडियो पर सुना है।

—पुस्तक नही पढी ?

—नही।

—अच्छा। लेकिन यह तो आप समझती हैं न, कि आपको डबल रोल करना पडेगा। यानी स्त्री और नर्स, दोनो का रोल आप ही को करना होगा।

—मैं कर सकूगी ?

—क्यो नही कर सकेगी। जैसे सहज भाव से उस दिन आप मुझे कल-पुर्जो की बाते समझा आई, उसी तरह सहज भाव से बाते कहती जाइएगा। आपको यह ध्यान रखना होगा कि उस समय आप कौन हैं। यानी आपको वही बनना पडेगा।

सीता चुप रह गई थी। सिर्फ रजनीगधा के एक डठल-रहित हरे पत्ते को टुकडे-टुकडे करती रही थी।

रजन ने कहा था—आज किताब की रीडिंग दीजिएगा। लो अशु दा, किताब उठाओ।

अतिथियो के सत्कार की जिम्मेदारी रजन की स्त्री पर थी—वह दूसरे कमरे मे कॉफी, काजू और बिस्कुट सजा रही थी; उसके साथ थी बडी दीदी। नरेन बोस की शिक्षिता स्त्री ने कहा था—ठहरिए, ठहरिए, आप पुरुष लोग बड़े स्वार्थी होते है। वे लोग आ जाए तब शुरू कीजिएगा।

नाटिका की शुरुआत है एक नर्स से।

अशुमान ने पढना आरम्भ किया था—

एक नर्स लडकी—सुन्दर, चंचल और प्रगल्भ। युवक डॉक्टर उसपर मुग्ध रहते। वे उसे ऐडमायर करते, ऐडोर करते। वे आकार से, इगित से उसे अपने हृदय की भावना जताते। वह उन्हे लेकर खेलती। हसती। उन्हे नचाती। लेकिन पकड मे न आती। एक तरुण डॉक्टर थे, विलायत-पास और खूबसूरत। इन मामलो मे नामी और दुष्ट-चरित्र। किसी तरह उनकी एक डायरी और कुछ चिट्ठिया नर्स के हाथ लग गईं। उनमे डॉक्टर के भयानक कुकर्मों की स्वीकृति थी। डॉक्टर पकड मे भी आए थे। उन्हे इस चोरी का पता न था। इसके बाद जब वे उसे छोड-कर निकल जाना चाहते थे, उसी समय वह उनकी डायरी और चिट्ठियों का भडाफोड करने को उद्यत हुई। डॉक्टर ने जहर खाकर आत्महत्या कर ली। लेकिन और सब डॉक्टर उसके खिलाफ हो गए। वह लडकी एक नर्सिग होम मे नौकरी करती थी। जो वहा के प्रधान थे, वे एक प्रौढ और प्रसिद्ध चिकित्सक थे। वे उस लडकी को बेटी की तरह मानते थे। दूसरे डॉक्टर इशारतन कहते थे कि वे ही उसके पिता है—अर्थात् जवानी मे उन्होने जिस नर्स को प्यार किया था और जो इस लडकी से भी अधिक स्वेच्छाचारिणी थी, यह उसीकी लडकी है। डॉक्टर का स्नेह इसी कारण है। फिर भी उन्होने नर्स को बुलाकर कहा कि उसे न्याय का सामना करना पडेगा। बेशक न्याय करेंगे कुछ डॉक्टर। यदि लडकी का अपराध प्रमाणित हुआ तो उसका नर्स का डिप्लोमा रद्द कर दिया जाएगा। यही से नाटक आरम्भ होता है। पहले की घटनाए बातचीत से प्रकट होती है। इसी समय प्रौढ डॉक्टर के पास एक आदमी आया—उन्हीसे इलाज करानेवाले एक रोगी के यहा से। बाहर से वह केस मामूली-सा ही था, लेकिन भीतर से बहुत जटिल था। रोगी एक धनी परिवार का लडका था, सुन्दर युवक। एक साल पहले तक उसकी हसी-खुशी का ठिकाना न था। बासुरी बजाता और बनावटी नाम से गीत लिखा करता था, गीतो को स्वर भी देता था। उसके गीतो के कुछ रेकार्ड भी बने थे, जो थोडे ही दिनो मे तरुण-समाज मे खूब चल निकले थे। लेकिन उसने अपने बनावटी नाम को इस तरह छिपा रक्खा था कि उसके हितू-मित्रो को भी उसका पता न था। आज से एक साल पहले,

ठीक आज ही की तारीख को उसके विवाह की कालरात्रि थी—यानी विवाह के ठीक दूसरे दिन की रात्रि। हिन्दू समाज के नियम के अनुसार इस रात को वर-वधू का मिलना निषिद्ध है। इसके बाद वाले दिन सुहाग-रात होती है। कलकत्ता से दक्खिन, नदी के किनारे उसका गाव है। धनी घर है। घर मे वही एक भाई और उसकी एक विधवा बडी बहन है। बडी बहन ने ही उसे पाला-पोसा है। परवरिश पानेवाले दो-चार और अपने-सगे है। सुन्दर लडकी देखकर दीदी ने शादी कर दी थी। वह खुद भी लडकी को देख आया था। वह खास तौर से इसलिए उस-पर लट्टू हो गया था कि लडकी गाती बडा अच्छा थी, और जब वह उसे देखने गया था, उसने मधुकर (उसीका बनावटी नाम) का ही गीत गाकर सुनाया था। कौतुक और अनुराग के सहित, अपना परिचय गुप्त रखकर उसने मधुकर की निन्दा की थी। लडकी इससे दुखी हो गई थी। लडके ने निश्चय किया था कि प्रथम मिलन की रात से पहले वह इस परिचय को गुप्त ही रखेगा—यानी सुहागरात तक।

उसने यह भी निश्चय किया था कि उसी दिन वह सर्वसाधारण मे भी प्रकट कर देगा कि वही मधुकर है। विवाह के अगले दिन वर-वधू जब नाव से अपने गाव के घाट पर आए तो आधी-पानी आ गया। बेशक, बहुत भयानक नही। लेकिन नतीजा यह हुआ कि उसकी दीदी ने बड़े शौक से बारात निकालने की जो तैयारिया की थी, वे धरी रह गईं। रोशनी और बाजे-गाजे के साथ दो पालकियो पर वर और वधू को सारे गाव मे घुमाकर, आतिशबाजी छोडकर, घर मे नही लाया जा सका। दीदी ने इन्तजाम किया था कि वर-वधू उस दिन उसी घाट पर, दो अलग-अलग नावो पर रात बिताएगे। अगले दिन सवेरे बारात सजाकर, वर-वधू को गाव मे घुमाकर घर लाया जाएगा; वधू का वरण होगा, सारे गांव के लोग देखेगे।

इसी व्यवस्था के अनुसार वर-वधू गाव के घाट पर, आस-पास दो नावो पर रात बिता रहे थे। नाव के माझी सो गए थे। वर के नौकर और वधू की नौकरानी को भी नींद आ गई थी। रात आधी हो गई थी। आसमान के बादल फट गए थे। चन्द्रमा निकल आया था। वर को

नीद नही आई—हाथ मे बासुरी लेकर वह नाव के किनारे आ बैठा और बासुरी पर मधुकर के गीत की धुन बजाने लगा। अचानक उसे ऐसा जान पडा, जैसे बांसुरी के सुर के साथ कठ मिलाकर कोई गीत गा रहा हो। उसके बाद बहू बाहर आ गई थी। वर ने बासुरी बजाई—वधू ने गीत गया। माझियो ने जागकर भी फिर आखें बन्द कर ली थी। वे थके हुए थे—नदी की हवा से फिर सो भी गए थे। अचानक वर ने कहा था—रात क्या यो ही बीत जाएगी ?

बहू उठ खडी हुई थी। उसने कहा था—मैं आती हूं। मुझे पकडो।

वह उसे मना करने का समय नही पा सका, यह भी नही कह सका कि मैं आता हू। बहू ने अपनी नाव से दूसरी नाव पर जाने के लिए पाव बढा दिए थे। दोनो नावे बिलकुल पास-पास थी, फिर भी नाव डोलकर दूर हट गई थी। बहू पानी मे जा गिरी थी। साथ ही साथ वर भी कूद पडा था। माझी-मल्लाह भी जाग उठे थे। वे भी नदी मे कूद पडे थे। गगा मे उस समय ज्वार था। वे सहज ही उन्हे पा नही सके। वर बेहोशी की हालत मे मिला था। उसके कलेजे मे चोट आई थी। दूसरे दिन बहू मिली थी बालू पर। फूलशय्या के बदले वह बालु की अन्तिम शय्या पर लेटी अन्तिम नीद मे सो रही थी।

वर की बीमारी तभी से है। उस समय उसे कलकत्ते के अस्पताल में लाकर भर्ती किया गया था। कलेजे की चोट अच्छी हो गई थी। चोट कमर मे भी आई थी, वह भी ठीक हो गई थी। लेकिन डॉक्टरो की राय थी कि वह लडका खुद अच्छा नही हुआ। वह थका-सा, बदहोश-सा पडा रहता। वह अच्छा नही हुआ। वह अच्छा होना नही चाहता। अच्छा होगा भी नही। उसका अन्तिम दिन आएगा अगले साल, उसी कालरात्रि की तिथि को। उसका दृढ़ विश्वास था कि उस दिन उसकी मरी हुई बहू आएगी, उसके पास खड़ी होकर हाथ बढाएगी, वह भी हाथ बढाएगा, बहू की तरह वह भी मृत्यु-समुद्र मे गिरेगा, बहू भी डुबकी लगाकर उसका हाथ जा पकड़ेगी और दोनो निरुद्देश्य के देश मे चले जाएगे।

इसी लडके की चिकित्सा का भार लिया था उन विख्यात प्रौढ

डॉक्टर ने। अस्पताल से लाकर उसे लगभग दो महीने तक उन्होने अपने क्लिनिक मे रक्खा था। उसके बाद घर पर ही उसके रहने का प्रबन्ध कर दिया था। रोगियो के बीच न रखकर, उसे घर पर स्वाभाविक स्थिति की तरह रक्खा था। उसे पुस्तक, ग्रामोफोन और रेडियो की व्यवस्था के बीच रखकर उन्होने सोचा था, धीरे-धीरे लडके मे जीवन के प्रति आकर्षण जाग उठेगा। नर्स थी। लडका नर्सों को पसन्द न करता था। रखना न चाहता था। लेकिन इन होशियार डॉक्टर ने अपनी मीठी बातो से उसे राजी कर लिया था। उन्होने कहा था—तुम्हारी बातो पर और लोग भले ही विश्वास न करें, मैं करता हूं। मुझे विश्वास है कि उस दिन वह जरूर आएगी। लेकिन उस दिन तक तो तुम्हारी सेवा के लिए कोई आदमी चाहिए न! इसके लिए नर्सें ही सबसे ज्यादा उपयोगी होती है—उन्हे इस काम के लिए विशेष शिक्षा मिलती है। इसलिए नर्स रखने मे आपत्ति करने से कैसे काम चलेगा? इसके जवाब मे लडके को कोई युक्ति न सूझी। वह राजी हो गया था, लेकिन युवती नर्स भेजने को मना कर दिया था। उसके लिए एक प्रौढा नर्स रखी गई थी।

लेकिन उससे भी समस्या मिटी नही। किसी नर्स को वह एक दो हफ्ते से ज्यादा बर्दाश्त नही कर सका। वह मामूली-सी गलती पर उत्तेजित हो जाता। कडवी बातें बोलता। उसे हटाकर दूसरी नर्स लाई जाती।

आज वही दिन है। सवेरे से ही रोगी उत्तेजना से अधीर है। वह आएगी। उसके लिए वह बिस्तर पर लेटा-लेटा ही आदेश दे रहा है। नौकर घर सजा रहे हैं। कपडे सजाने को कहा है—वह पहनेगा। माला गूथी जा रही है। वह बासुरी लेकर बैठा है। आज वह जरूर बजाएगा। यह सब देखकर प्रौढा नर्स थोडा झल्लाई थी, इसी कारण उसने उसी वक्त उसे निकाल दिया था। रोगी की दीदी रो रही है। उन्होने बूढे नौकर को डॉक्टर के पास भेजा है—आज उनको आना ही पडेगा। शायद वे किसी तरह रोगी को शात कर सकें।

सुनकर डॉक्टर बहुत देर तक सोचते रहे। उसके बाद सहायक को

बुलाकर उससे सलाह करते रहे । उन्होने एक विचित्र राह ढूढ निकाली। उसके बाद दोनो रोगी को देखने गए। जाकर देखा, बूढे की बात अक्षरशः सत्य है। रोगी वर के वेश मे सजा, हाथ मे बासुरी लिए बैठा है। बासुरी की धुन सुने बिना तो अशरीरिणी बहू शरीर धारण करके आ ही नही सकेगी। असीम शून्य लोक मे उसकी राह का सूत्र तो बासुरी का सुर ही होगा।

डॉक्टर ने उसकी परीक्षा करके देखा। उन्होने उससे बाते की। उन्होने समझ लिया कि भावुक युवक पागल हो गया है। इस धारणा से उसका विश्वास किसी तरह डिगेगा नही। उसका विश्वास इतना दृढ है कि इससे उसको हटाने की कोशिश उसके लिए हानिकर होगी।

उन्होने सोचकर कहा—ठीक है, यही होगा।

उन्होने आदेश दिया कि कोई उसकी बात का विरोध न करे। उसकी बात टाले भी नही। लेकिन रोगी से भी उन्होने यह वचन ले लिया कि जब तक उसकी अशरीरिणी बहू शरीर धारण करके नही आती, वह रोगी है।

रोगी ने कहा, वह ठीक समय पर, रात को बारह बजे बासुरी बजाएगा।

—जरूर, लेकिन बारह से पहले नही।

यही तय करके वे रोगी के कमरे से बाहर निकले। उन्होने उसकी दीदी से कहा—उसकी बात काटने से कोई फायदा नही है। वह जो भी कहे, करती जाइए। देखिए, क्या होता है! हो सकता है कि बहू की आत्मा आए।

कहकर उन्होने चुपके-चुपके उनसे कहा—मैं एक इन्तजाम करूगा। वही एक रास्ता है। देखिए, उससे क्या होता है। एक बात, आपकी बहू की तस्वीर देखने से जान पडता है कि वह जरा लम्बी और हल्के शरीर की थी।

—हा।

—तब वह आएगी। लेकिन एक शर्त है। बहू के शरीर पर जो गहने थे, उन्हे निकाल रखिएगा। कपड़े किस रग के थे? ब्याह मे तो

आम तौर पर लाल कपडे ही पहनते है ।

—फीकी गुलाबी बनारसी साडी ।

—वैसा ही कपडा खरीद मगाना होगा। समझी न ? उसकी आत्मा जब काया धारण करेगी तो ये चीज़े वह कहा पाएगी ? चिता पर चढने के समय तो वह ये चीज़े यही छोड गई थी । उसकी बहू अगर आकर उसे अपने साथ ले जाने के बदले नया जीवन दे जाए, तो यह गहने-कपडे लेकर आएगी । अगर लेकर आएगी, तो निश्चय ही सारी चीज़े छोडकर जाएगी । समझी ?

लम्बी सास लेकर दीदी ने कहा था—ऐसा ही होगा ।

उसके बाद डॉक्टर ने कहा था—आपकी बहू आएगी। लेकिन किस तरह और किस रास्ते से, इसे सिर्फ आप ही जान सकेगी । ध्यान रखिएगा कि कोई और न जानने पाए ।

ऐसा ही हुआ । उस अधपगले युवक ने आधी रात को बासुरी पर सुर छेडा ।

कमरे मे नीली रोशनी जल रही थी ।

फीके गुलाबी रग की बनारसी साडी पहने लबी युवती ठीक खिडकी के पास आ खडी हुई । बदन पर वे ही गहने थे । बोली—मैं आ गई ।

रोगी उठ बैठा । वधू ने कहा—तुम तो जानते हो, मर्त्यलोक की आग की रोशनी मेरी इस मायामय काया से सही नही जाती । यह रोशनी बुझा दो । ओ जी, नही तो मैं तुम्हारे पास आ नही सकूगी ।

रोगी ने कहा—मैं तुम्हे देख कैसे पाऊगा ?

—चद्रमा के उजाले मे । आज आसमान मे पूर्णिमा का चाद निकला है । तिथि भूल गए ? वही उजाला खिडकी से फर्श पर आ पडेगा, वही उजाला सारे अग मे लपेटकर मैं फर्श पर बैठूगी—तुम मुझे देखोगे ।

अपरूप बातो मे खोए वर ने बेड स्विच दबाकर बत्ती बुझा दी, वधू आकर चादनी-भरे फर्श पर बैठ गई । टेबुल के थाल मे माला थी—उसी माला को वर के गले मे पहनाकर उसने कहा—अब तुम मुझे पहना दो ।

वधू कोई और नही थी, बहू की आत्मा नही थी—थी वही नर्स, जो तरुण डॉक्टरो को नचाती थी, लेकिन पकड मे न आती थी। कोई पकडने जाता तो काल-नागिनी की तरह डस लेती थी। होशियार डॉक्टर ने अत मे यही उपाय निश्चित किया था—रोगी के विश्वास के अनुसार, उसके विश्वास को सार्थक करती हुई, वह लडकी वधू बनकर आएगी, वही साज-बाज, वही आभरण, वही दीर्घांगी तरुणी। प्रकाश-हीन कमरे मे, ज्योत्स्ना के मायालोक मे आख पर अधविश्वास की पट्टी बाधे वर उसे वधू ही मानेगा और आरभ के कुछ क्षण बीत जाने के बाद कुछ और समझने की उसमे शक्ति ही न रह जाएगी। वधू उसे अपने स्पर्श से, अपनी छलना-भरी बातो से, भुलावे से और गहरे भुलावे मे ले जाएगी, पास बैठकर उसे शात करेगी, उसके माथे पर हाथ फेरेगी। उसके बाद धीरे-धीरे उसमे जीवन की इच्छा लौटा लाएगी। कहेगी—तुम जीवित रहो। तुम्हे जीना ही पडेगा। तुम मधुकर के नाम से प्रसिद्ध होओ। मैं शून्यलोक मे मडराऊगी और सुनूगी कि मधुकर के गीत आकाश मे गूज रहे है। उसीमे मेरी अनत तृप्ति होगी। तुम जियो, तुम जीते रहो। उसके बाद उसे विश्वास दिलाकर कहेगी—तुम ब्याह करो। विश्वास मानो, मैं उसकी आत्मा के साथ एकाकार हो जाऊगी। ब्याह न करोगे तो मुझे हमेशा शून्यलोक मे डोलते रहना पडेगा। देखो, तुम अच्छे हो गए हो। तुम उठो, खडे होओ, आओ, तुम मेरे पास आओ। वह निश्चय ही चलेगा। लेकिन सावधान रहना होगा कि मानवी के शरीर के उत्तप्त अग-स्पर्श से उसका मोह न टूट जाए। इसी तरह धीरे-धीरे उसका विश्वास लौटाकर, उसे नीद मे सुलाकर वह चली जाएगी। नीद की दवा वह अपने साथ ले आएगी। मौका देखकर वह उसे दवा खिला देगी और उसके माथे पर हाथ रखकर बैठेगी।

इसके लिए वधू के सारे आभूषण उसे दे देने होगे, जिनका दाम कम से कम सात-आठ हजार रुपया होगा। यदि वह लडके को बचा न भी सके—यदि सारा उपाय व्यर्थ हो जाए, तब भी इस एक रात के अभिनय के लिए उसे एक हजार रुपया देना होगा।

लडकी आई—कौतूहल के साथ ही आई। यह एक विचित्र अभिनय है ! वह आश्चर्यजनक निपुणता के साथ अभिनय कर गई। आखिरी रात मे रोगी को सुलाकर, थकी-मादी जब वह कमरे से बाहर निकली और दूसरे कमरे मे प्रतीक्षा कर रहे डॉक्टर के सामने कुर्सी पर बैठकर उसने टेबुल पर सिर टिका दिया तो जैसे दुनिया का रग बदला जा रहा था।

डॉक्टर ने हसकर कहा—वेल डन। खूब किया तुमने। अद्भुत। लेकिन अब तुम थोडा आराम करो। थोडी देर बाद मैं तुम्हे अपनी गाडी से भेज दूगा। यहा किसीको तुम्हे देखने न दूगा। किसी तरह अगर उसे यह बात मालूम हो गई तो शायद वह पागल हो जाएगा।

डॉक्टर बाहर चले गए—लडकी वहा बिछे बिस्तर पर वधू-वेश मे ही गहरी नीद मे सो गई।

कुछ देर बाद डॉक्टर ने आकर उसे पुकारा। कोई जवाब न मिला। हिला-डुलाकर देखा, वह जीवित नही थी। उसके हाथ की मुट्ठी मे पत्र था। उसने लिखा था—मैं जीवन का अन्तिम अभिनय किए जा रही हू। इसके बाद अब जीवित न रह सकूगी। लगता है, मैंने सब पा लिया है। सवेरा होने पर सब खो दूगी। इसीसे सवेरा होने से पहले ही विष खा रही हू—पोटेशियम सायनाइड। यह बहुत दिनो से मेरे वैनिटी बैग मे रखा हुआ था। आज काम आ गया। जीवन इतना मधुर है, यह मैं न जानती थी। उस स्वाद के मिटने से पहले ही मैं चली जा रही हू।

बड़े भाई की साली नमिता की सहेली है स्मृति। स्मृति के चाचा कोरिया से लौटे हुए डॉ० कैप्टन सेन हैं। उनसे उसने यह कहानी सुनी थी कि डॉ० गिरीदु शेखर बसु ने किस विचित्र उपाय से मानसिक व्याधि दूर की थी। एक धनी घर का लडका विमर्ष और व्याधिग्रस्त हो गया था। हुआ था एक लडकी को प्यार करके। डॉ० बसु ने एक युवती नर्स को उस लड़के को आकर्षित करके, उल्लसित करके उसे उबारने के लिए नियुक्त किया था। लड़का उबरा, अच्छा हो गया, लेकिन नर्स उस लड़के

के प्रेम मे पडकर चिर विषण्ण हो गई। नमिता के ही एक आत्मीय तरुण के सबध की एक दूसरी कहानी—लडका ब्याह करके, बहू लेकर घर आया। उस दिन कालरात्रि थी। वर-वधू मे देखादेखी न होनी चाहिए। सबसे छिपाकर एक-दूसरे से मिलने की कोशिश मे दुर्घटना हो गई थी—उसमे बहू पानी मे बह गई, वर बच गया; लेकिन उसके मन मे यह खयाल घर कर गया कि साल-भर बाद ठीक आज ही के दिन उसकी स्त्री की आत्मा आकर उसे ले जाएगी। ठीक वैसा ही हुआ भी। लडका ठीक उसी दिन मर गया। इन्ही दोनो कहानियो को मिलाकर नाटक लिखा गया था।

अशुमान ने शुरू से आखीर तक नाटक को अपने ढग से बनाकर रीडिंग दी थी। वह स्वय लेखक है और ऐक्टिग भी अच्छी करता है—लेकिन उसकी ऐक्टिग मे थोडा इमोशन रहता है। आज के जमाने की तरह यथार्थ के लिए रूखी-सूखी ऐक्टिग वह नही करता। लेकिन इमोशन के प्रभाव का लाभ भी है। उसने जब पढना खत्म किया, तब सभी लोग अभिभूत ही नही हो गए थे, उनकी आखें भी भर आई थी। किताब रखकर वह चुप सो गया। सारा कमरा स्तब्ध हो गया था। औरते अपनी आखे पोछ रही थी। सीता दोनो घुटनो पर अपना सिर रक्खे स्तब्ध बनी बैठी थी—उसने आखो का पानी नही पोछा। आखो के आसू की दो धारे दोनो कपोलो पर झिलमिला रही थी।

अशुमान ने एक सिगरेट सुलगाकर कहा—कहानी अच्छी है, लेकिन कठिन है।

रजन ने कहा—कठिन न हो तो अच्छी कैसे हो?

विमल गुप्त बोले—दैट्स इट!

मौसी ने कहा—मुझे खू-ब अच्छा लगा। ब-हु-त अच्छा।

बडी दीदी तब भी आखे पोछ रही थी। उन्होने कहा—बडे लेखक की लिखी हुई कहानी है। इसके अलावा, जानती हो, इस रचना का अनुवाद यूरोप मे हुआ है। वह जो गुरु सदयदत्त रोड मे मिसेज सिन्हा रहती हैं—नार्वे की लडकी—उन्होने अपनी भाषा मे अनुवाद किया है। उन्होने तो मुझसे कहा। उन्होने रेडियो पर सुना था—तभी मैं गई।

मुझसे कहने लगी—बडी दीदी, रेडियो पर एक इतना बढिया 'वन ऐक्ट प्ले' हुआ कि क्या कहू ! मैं उसे अपनी भाषा मे ट्रासलेट करूगी। मैंने कहा—इसमे क्या है, अशु मुझे मौसी कहता है, वह ग्लैडली तुम्हे परमिशन दे देगा।

अशुमान ने कहा—मैं चलूगा रजन ! नही तो मौसी का उच्छ्वास सभालना मुश्किल हो जाएगा।

—ठहरिए, टैक्सी बुलाए देता हू।

सीता सेन ने कहा था—मैं भी जाऊगी रजन बाबू ! शिवकिंकर दा !

शिवकिंकर ने कहा था—ज़रूर।

रजन ने कहा था—आपके घर जाने के रास्ते मे ही, बीच मे इनका घर है—शचीन दा के घर से थोडा आगे। बाग बाजार स्ट्रीट पार करते ही, गली मे।

सीता को उसी दिन शचीन दा के यहा ले जाया गया था। शिवकिंकर ही जबर्दस्ती ले गया था। इसमे उसका कुछ मतलब था—सीता ने नही समझा था, लेकिन रजन समझ गया था—शायद वह भी न जानता था उसका मतलब, लेकिन वह अनुमान कर सका था। शचीन दा उसे अच्छी बातो का उपदेश देगे और आशीर्वाद देगे—उत्साहित भी करेगे—इससे, सीता ने इस राह मे जो पैर बढाया है, उसे वापस न खीचेगी।

शचीन दा के घर के पास आकर शिवकिंकर ने टैक्सी रुकवाई थी। उतरकर वह एक मिनट के लिए शचीन दा के पास गया था, फिर लौटकर बोला था—शचीन दा बुला रहे है। मिस सेन, खास तौर से आप ही को बुला रहे है।

उसे जाना पडा था।

शचीन दा बीमार थे। बिस्तर पर अधलेटे बैठें थे। उन्होने कहा था—आओ, आओ। इस जाडे की रात मे तुम लोग अपने प्रेम की गर्मी से मुझे भी थोडा गर्म करते जाओ। थोडी चाय चलेगी ?

सबने नाही कर दी थी। सब लोग जब प्रणाम करके हट गए थे तो सीता ने आगे बढकर उनके पाव छुए थे और सिर झुकाकर एक ओर खडी हो गई थी। शचीन दा ने कहा था—तुम इस देश के सभी लोगो की अति परिचिता—हृदय की स्नेह-सुधा-धारा से सिंचिता सीता हो। ऐ ! तुम तो सुन्दर और माडर्न हो। दोनो ही हो। तुम स्टेज पर उतरोगी ? उतरो, उतरो। स्टेज को भी उज्ज्वल बना दो, समझी ? ब्राइटर (और उज्ज्वल) करो, मोर डिग्नीफाइड (और गौरवपूर्ण) और अधिक पवित्र बना दो। इस जमाने मे कौन किसके या किस वश का है, यह प्रश्न ही नही उठता। बेशक उसका कोई मूल्य भी नही है, दिल्ली के चादनी चौक के किनारे इसके प्रमाण बिखरे पड़े है, लेकिन यह निभ्रान्त है कि वश का भले ही न हो, मनुष्य का एक बर्थ-राइट है और रिस्पासिबिलिटी है। शुचिबाई (पवित्रता की सनक) एक बीमारी है, लेकिन शुचिता मनुष्य के जीवन मे मनुष्यता का सबसे बडा प्रमाण है। जानवर विष्ठा लपेटे रहते है, इससे उनकी हानि नही होती, लेकिन मनुष्य को चर्मरोग हो जाता है। जो मनुष्य अनक्लीन (गदा) है, वह निस्सदेह मनुष्यो मे नीच है। मनुष्य ही अपने जीवन मे मस्तक उठाकर सीधा खडा होता है। मस्तक झुकने पर उसकी मर्यादा-हानि होती है।

सीता ने एक भी बात नही कही थी।

आने के समय शचीन दा ने फिर कहा था—तुम्हें अशुमान के विपरीत खडा होना पडेगा। वह तुम कर सकोगी ? वह अच्छा भी लगेगा। मैं अभिनय देखने जरूर आऊगा। तब तक अच्छा हो जाऊगा। एक और बात—तुम लोग कहा की सेन हो ?

सीता इस बार बोलने को लाचार हो गई थी। उसने कहा था—मेरे दादा बिहार मे थे, गया मे वकालत करते थे। पिताजी गवर्नमेट सर्विस मे बंगाल आए थे। नौकरी के सिलसिले मे यहा से वहा चक्कर लगाते रहे। आजकल उस नहर के पोल के पास···

—अरे, तुम्हारा आदि-निवास कहा है ?

सीता ने कहा था—यह मै नही जानती।

—यह देखो, अशुमान ! नया जमाना इसी तरह लगर तोडकर,

अनजान झरे पत्ते की तरह छितराकर खो गया। मुझे इसका दु ख नही है। लेकिन लम्बी सास निकल पडती है, सीता का ज़रा ख्याल रखना तुम। समझे ?

शायद शचीन दा ने ही सीता का हाथ पकडकर उसे उसके और निकट कर दिया था। रास्ते मे कई बार उनके प्रति नमस्कार करके सीता ने कहा था—बडे अच्छे लगे। देवता जैसे आदमी है। सुनती थी कि वे क्रोधी आदमी है।

शिवकिकर ने कहा था—क्रोध आने पर एकदम पागल हो जाते है। कोई अन्याय वे बर्दाश्त नही कर सकते।

सीता ने कहा था—मुझे तो बडी शर्म आई। मै अपने घर-द्वार के बारे मे कुछ भी न कह सकी।

अशुमान ने कहा था—जानने से भी कोई खास बात नही होती मिस सेन! समय हमे इस तरह खीचे लिए जा रहा है कि अब वह किसीका कोई परिचय न रहने देगा। सब कुछ मिट्टी के नीचे दब जाएगा।

रास्ते मे उसका मकान आ गया था।

गाडी से उतरते समय उसने कहा था—मुझे डर लगता है अशुमान बाबू! शायद यह मै नही कर सकूगी।

सन् १९६७ मे, आज भी उसके कानो मे सीता की वह बात गूज रही है। रजन और शिवकिकर दोनो ही उसकी बात सुनकर परेशान हो गए थे। लेकिन उसकी बात ने उसे विचित्र स्पर्श से छुआ था। इसीसे उसने उन दोनो को रोककर कहा था—क्या डर लगता है, बताइए तो ?

सीता ने कहा था—यह मै नही कह सकती; लेकिन डर लगता है। इसके बाद वह चुप हो गई थी।

अशुमान ने कहा था—मै इतना ही कह सकता हू कि कोशिश करने पर आप अभिनय कर सकेगी। दो-चार दिन करके देखिए—अगर आपसे

न हो सकेगा तो मै ही कह दूगा। और अगर हो गया तो खासी सफलता पा सकेंगी आप। वैसे डर तो दुनिया मे है ही—कहां नही है, आप ही बताइए ?

एक दीर्घ नि.श्वास छोड़कर वह गली के अदर चला गया था। उसका घर कई मकानो के बाद था।

अगले दिन रिहर्सल मे सीता आई थी—मानो उदास होकर आई हो। नही, उदास नही, अपने-आपमे मग्न थी। हाथ मे पुस्तक थी। रिहर्सल शुरू होने के पहले ही वह उसके पास आ बैठी थी और बोली थी—अशु बाबू ! यह मुझसे न हो सकेगा।

चौक उठा था वह।···न हो सकेगा ?

—नही। यह मै न कर सकूगी।

एकसाथ षोडशी सघ के सोलह आदमियो की जगह अठारह-बीस आदमी 'अरे-अरे' कह उठे थे। सीता असहाय की तरह खडी थी। उन लोगो का 'अरे-अरे' खत्म होने के बाद अशुमान ने कहा था—देखिए मिस सेन ! तेनसिंग माउटेनियरिंग सीखकर एवरेस्ट जीत आया। आप रिहर्सल करके देखिए—उसके बाद अगर आप न कर सकेंगी तो न सही। कहिए ? अच्छा, कल मैने रीडिंग दी थी—आज आप एक रीडिंग दीजिए तो। कम से कम पहला सीन। बैठे-बैठे आप पढ़ सकेंगी न ?

न कहना ही अच्छा होता।

आज धक्का-खाई गाड़ी मे बेहोश सीता···

ओः !

सुकुमार शिशु ! उसका हाथ···कलेजे में उठती एक भयानक यत्नणा से हृदय फट जाना चाहता है।

नियति ? नही; नियति, भाग्य, ईश्वर, पाप, पुण्य—यह सब वह नही मानता। बीसवी शती के पचास बरसो के बाद का पचास बरस, नया ज़माना नई दुनिया लेकर आया है। इस ज़माने मे कोई भी कुछ

भी अ-दृष्ट नही है। इस ज़माने में आकाश मे देवता नही है, स्वर्ग नही है। इस जमाने मे सुख है भोग मे—दु ख है अभाव मे; सारी समस्याओं का निदान है बुद्धि मे। नियति कुछ नही है।

बुद्धि की भूल से गलती हो गई है ऐसी !

सीता को पढने के लिए न कहने से ही चलता। शायद वही पहली भूल थी।

सीता पढ गई थी। लिखी-पढी, कन्वेंसिंग के काम मे होशियार औरत थी वह; अच्छी तरह पढना उसके लिए मुश्किल नही था, फिर भी उसने जितना अच्छा पढा था, षोडशी सघ के दो आदमियों को छोड़कर बाकी चौदह के लिए वह सम्भव नही था।

पहला ही दृश्य था कलकत्ते का एक नर्सिंग होम। नर्सिंग होम के एक विंग मे एक ओर डाक्टरों का कन्सल्टिंग रूम है। उसी रूम मे, नर्सिंग होम के जो सबसे बडे आदमी है, वे प्रौढ डाक्टर दुखी होकर बैठे है। कुछ और तरुण डाक्टर उनको घेरकर खडे है।

डॉ० सेन कह रहे है—अभागा लडका ! सचमुच बडा अभागा है। और आइ मस्ट से—वह बडे दुर्बल हृदय का है। समरेश जैसा लडका ज़हर खा सकता है, इसपर मै विश्वास ही नही कर सकता।

दूसरा डाक्टर—बट ही ट्राइड टु डू (लेकिन उसने कोशिश की) इसके सिवा उसके सामने दूसरा रास्ता भी नही था। वह मुंह कैसे दिखलाता ? ब्लैकमेलिंग की शर्म से·· •

अन्य डाक्टर—आप इसका विचार करे। इसके लिए जो ज़िम्मेदार हो, उसे पनिशमेट लेना होगा। यह जिम्मेदारी आपकी है।

डॉ० सेन—यू मीन नर्स सुप्रिया ! लेकिन उसे तुम किस तरह दोषी बना रहे हो ? समरेश उसे प्यार करता था। वह नही करती थी। किसी औरत से तुम ज़बर्दस्ती प्यार नही करा सकते। शी वाज़ नाट हिज़ मैरीड वाइफ (वह उसकी विवाहिता पत्नी नही थी)।

बट ह्वाई डिड ही प्ले विद हिम इन दैट वे ? ह्वाट राइट शी हैड टु प्ले फाल्स विद हिम लाइक दैट (लेकिन वह उसके साथ इस तरह

खिलवाड क्यो करती रही ? उसे इस तरह धोखा देने का उसको क्या अधिकार था ?) यह पत्र देखिए। समरेश के सन्दूक से सुप्रिया के लिखे ये सब लव लेटर हम लोगो को मिले है। हियर शी इज—वह तो आ रही है। पूछिए उससे।

बढिया पढ रही थी—पहले थोडी जडता थी, लेकिन कुछ मिनटो के बाद ही वह स्वच्छन्द होकर पढने लगी। उसने अनुकरण नही किया था। लेकिन ऐसा लगता है कि पिछले दिन अशुमान ने जो रीडिंग दी थी, उसने उसे बडे ध्यान से सुना था। इसके अलावा पढने के ढग मे जान फूकने की क्षमता थी उसमे।

विस्मित सभी लोग हुए थे। सिर्फ अशुमान चुपचाप बैठा रहा था।

सीता ने पढा—इसके बाद नर्स सुप्रिया ने प्रवेश किया। बाहर से ही बातो का रुख भापकर अन्दर आई। शात-धीर कठ से उसने कहा, कैफियत देने के लिए तैयार होकर ही मैं आई हू सर!

डॉ० सेन ने पूछा—यह सब तुम्हारे हाथ का लिखा है ?

—हा। स्वीकार करती हू।

—यू लव्ड हिम ? (तुम उसे प्यार करती थी ?)

—नो, सर ! (जी नही।)

—देन यू जस्ट प्लेड विद हिम ? (तो तुमने उससे सिर्फ खिलवाड किया ?)

—वे मुझे खिलौना बनाना चाहते थे, यह जानकर मैं उनके साथ खेल खेलती रही थी सर ! बिल्ली और चूहे मे हमेशा बिल्ली ही की जीत नही होती !

एक दूसरे डॉक्टर गरज उठे—झूठी बात। समरेश ने कभी खेल नही खेलना चाहा। यू वर दि एट्रैक्टिग मैग्नेट (तुम तो चुबक थी)—तुमने उसे आकर्षित किया था।

—यह पत्र पढ लीजिए सर ! पत्र नही, पत्र की फोटो स्टेट कॉपी। असल पत्र मेरा डाकुमेट है। देखिए, क्या लिखा है। समरेश बाबू ने डॉ० हालदार को लिखा था। डॉ० हालदार ने भी एक बार मुझे लेकर खेलना शुरू

किया था। यह जानने के बाद मैं उन्हे बुत्ता देकर खिसक आई थी। इसीसे जब यह चर्चा हुई कि समरेश बाबू मुझसे प्रेम करने लगे है—सम्भवत विवाह करनेवाले है, तब उन्होने अपने कलीग को चिट्ठी लिखकर जताया था —सुप्रिया स्वैरिणी है, अपवित्र है···उन्होने वेश्या शब्द का भी व्यवहार किया था। जवाब मे समरेश डॉक्टर ने उनकी बडाई करते हुए लिखा था कि विलायत मे उन्होने कितनी नारियो का घमण्ड चूर किया है और सुप्रिया के साथ वे जो प्रेम कर रहे है, वह भी छलना है। सुप्रिया को सीख देना चाहते है। एक्सपोज करना चाहते है; बता देना चाहते हैं कि शी इज ए हैरल्ट, बदकिस्मती से उनका पत्र मेरे हाथो आ गया। शायद उन्होने दो पत्र एकसाथ लिखे थे—एक डॉ० हालदार को, एक मुझे। उनकी बदकिस्मती से लिफाफो मे अदला-बदली हो गई। मेरा पत्र डॉ० हालदार को मिला और उनका मुझे। मेरे पास और कागज़ात है। डॉ० घोष ने कितनी औरतो के साथ इस तरह का प्रेम किया है, इसकी एक लिस्ट है मेरे पास। आई कैन प्रोड्यूस (उन्हे मैं पेश कर सकती हू) ··

बडे मजे मे पढ गई सीता। कठिन कठ से, बोलने की बकिम भगिमा से वह इस तरह पढ गई कि सब लोग वाह-वाह करके तारीफ कर उठे।

अशुमान ने कहा था—अब और पढने की जरूरत नही है। रिह-र्सल शुरू हो। आप मजे मे पार्ट कर सकेगी।

सीता ने कुछ कहना चाहा था। लेकिन किसीने उसकी बात नही सुनी। नही सुननी चाही।

मीनू मौसी ने कहा था—तुम्हारी कोई बात नही सुनी जाएगी, एण्ड दैट इज पास्ड यूनेनिमसली (और यह सर्व-सम्मति से स्वीकृत है)। शचीन सेन प्रेसिडेट है, वे यहा नहीं है, एज वाइस प्रेसिडेण्ट आई गिव दि वर्डिक्ट। वन, टू, थ्री—पास्ड। नाउ गो ऑन। (वाइस प्रेसीडेण्ट की हैसियत से मैं निर्णय देता हूं। एक, दो, तीन—पास। अब आगे चलिए।)

सचमुच, आरम्भ मे ही उसने इतने अच्छे ढग से शुरू किया था कि अशुमान भी विस्मित हो गया था।

रिहर्सल करते-करते वह खूब खुल गई थी। याद आता है...।

नाटिका के डॉ० बोस—एक तरुण डॉक्टर—कठोर स्वर मे बोले—षोडशी सघ के विमल गुप्त बोले—तुमने समरेश डॉक्टर के अपराध की बात कही है, लेकिन तुम्हे अपने बारे मे क्या कहना है ? क्या तुम यह अस्वीकार कर सकती हो कि प्रेम का अभिनय करना तुम्हारा स्वभाव है ? तुम्हारा हार्टलेसनेस सबसे बडा परिचय है; तुम्हारे स्वैरिणी होने का सबसे बडा प्रमाण !

इस बार शान्त स्वर मे सुप्रिया नर्स की कही हुई बात—इस जमाने मे हृदय क्या किसीके पास रह गया है डॉ० बोस ? आपके पास है ? इसके अलावा, आप पुरुष लोग इस जमाने मे किस पवित्रता को स्वीकार करते है ?

प्रौढ डॉ० सेन ने कहा—सुप्रिया, तुम अपनी बात कहो। इस तरह के तर्कों से तो किसी निर्णय पर न पहुचा जा सकेगा।

सुप्रिया ने कहा—डॉक्टर बोस का यह अभियोग भी मैं स्वीकार करती हू। लेकिन ठीक उसी रूप मे नही।

डॉ० सेन—इसका मतलब क्या है ? तुम क्या कहना चाहती हो ?

सर, आई हैव गाट सम चार्म (सर, मुझमे कुछ आकर्षण है।) वह मेरा रूप है या और कुछ, यह मैं नही जानती। लेकिन मुझमे कोई आकर्षण है। पुरुष मेरे पास खिचे चले आते है। औरतो के लिए इस प्रलोभन को रोकना बडा कठिन है। स्वाभाविक रूप मे उनकी इच्छा होती है खेलने की। मेरे मामले मे उसके साथ एक और ताकत आ मिली है। सर, आप मेरे लिए पिता के समान है। आप मुझे बेटी की तरह स्नेह करते है। विश्वास कीजिए, मैं सच कह रही हू। खेल करने की मेरी इस प्रकृति के साथ प्रतिहिंसा का एक भाव आ मिला है। यह मेरी दीदी के चलते हुआ है। वे भी मेरी ही तरह आकर्षणमयी थी। लेकिन वे शान्त, सत् और धीर थी। डॉ० सेन, उनके जैसी पवित्र और सुन्दर स्त्री मैंने अपने जीवन मे नही देखी। उन्होने आत्महत्या की थी। क्यो की थी, जानते है ? दीदी एक अध्यापक को प्यार करती थी। शादी की बात भी पक्की हो गई थी। लेकिन अचानक अध्यापक दीदी

को छोडकर मुझे प्यार करने लगे; क्योंकि दीदी मे आकर्षण तो था, खिलवाड करने की क्षमता न थी। मैं वह कर सकती थी। अनजाने ही मैंने उनके साथ भी खिलवाड किया था, जिसके चलते दीदी के भावी पति, दीदी को छोड, मुझे लेकर पागल हो उठे थे। दीदी ने आत्महत्या कर ली। लेकिन विश्वास कीजिए, मैंने उन्हें प्यार नही किया। दीदी का भावी पति समझकर मैं उनपर श्रद्धा रखती थी, उनसे हसी-ठट्ठा करती थी। डॉक्टर सेन, दुनिया मे इसान गिने-चुने ही है—काल-कालातर के ट्रैडीशन के क्रियेशन; यज्ञ के चरु। बाकी लोग एनिमल हैं, बीस्ट्स।

रिहर्सल मे सीता ने इन बातो को आश्चर्यजनक रूप से प्राणवत करके कहा। अतसी पार्ट अच्छा करती थी। लेकिन उसके बोलने मे ऐक्टिग की एक कृत्रिमता थी। इस युग मे नेचुरलिज्म के नाम पर सड-सड करके एक सरल रेखा के मार्ग से बाते बोलने का एकढगा तरीका है, उसमे भी एक नये किस्म की कृत्रिमता है—वह सर्कस की मजलिस मे चाबुक मारने के सशब्द अभिनय की तरह जान पडता था। सीता ने अपने ढग से उसकी अपेक्षा बहुत अच्छे ढग से अपनी बातें कही। लेकिन उच्चारण मे सोफिस्टिकेशन कुछ ज्यादा था।

सब लोगो ने उसकी तारीफ की।

अशुमान ने सबसे अधिक तारीफ करके कहा—वाह! बहुत सुन्दर! यही स्पिरिट कायम रहे तो मार्वेलस सक्सेस होगी।

पहला सीन खत्म करके सीता अशुमान के सामने आ बैठी। उसने कहा—एक गिलास पानी पिऊगी। गला मेरा सूखकर लकडी हो गया।

अशुमान ने कहा था—लेकिन यू हैव वन दि बैटिल (तुम लड़ाई जीत चुकी हो)।

सीता ने कहा—हा। मैंने भी देखा, कोई खास बात नही है। फांसी के कैदी का फांसी के तख्ते पर खडे होने जैसा कुछ नही है।

थोडी ही देर बाद वह सीन आया। नायक के रूप मे अंशुमान पहले स्टेज पर आएगा। रोगशय्या पर सोकर अभिनय करना है। अंशुमान ने अपना डायलॉग बोलते-बोलते सीता की ओर देखा था—सीता एक-

दम मुग्ध-अभिभूत की तरह उसके अभिनय का रिहर्सल देख रही थी। अशुमान साधारण रिहर्सल की मजलिस से कुछ अधिक प्राणवत हो उठा था।

भरी हुई आवाज है अंशुमान की। आखे उसकी स्वप्नाच्छन्न हो गई थी—अपने-आप हो गई थी। रोगी नायक, नववधू की अशरीरिणी आत्मा की प्रतीक्षा मे जागा बैठा था। रात मे जब सभी लोग सोते है, वह रोज़ ही जागा रहता है। वह जैसे दूर, बहुत दूर के किसी लोक की पुकार सुन पाता है। अशरीरिणी वधू कहती है—'एजी, एजी, मुझे पकडो, मुझे खीच लो।' पत्तो की खसखसाहट सुन पडती है, उसे सुनकर वह समझता है कि उसकी वधू की अशरीरिणी काया वायु-स्तरो पर डोलती फिर रही है। उस दिन जैसे उसने पानी के अदर उसके लिए अपने दोनो हाथ फैलाए थे, उसी तरह इस शून्यता के समुद मे उसके लिए हाथ फैला देता है। झिल्ली की झकार मे वह उसका जीवन-व्यापी क्रदन सुन पाता है। लेकिन आज उसकी सारी प्रतीक्षाओ का अत है। वह आएगी। आज एक वर्ष पूरा हो गया। आज श्रावण की पूर्णिमा तिथि है। वह आएगी। नि:शब्द पदक्षेप से आकर वह खडी हो जाएगी। दो पहर रात मे ठीक उसी लग्न मे मैं बासुरी बजाऊगा—उसके सुर का सूत्र पकडकर वह उसी खिडकी के किनारे आ खडी होगी •

—उठिए। सीता देवी, उठिए। रजन ने कहा था।

—मैं ? सीता चौक उठी थी।

—हां। आप खिडकी के किनारे आ खडी हुई है। पुकार रही हैं—मधुकर ! आपको कैंच करके पुकारना होगा यानी उसकी अधूरी बात आपकी बात से पूरी होगी।

सीता सेन उठ खडी हुई। रजन डाइरेक्टर है। उसने कहा—अंशु दा ! अपना आखिरी डायलॉग एक बार फिर बोलिए तो ! अशु ने आखे ऊपर उठाकर, विषण्ण-उदास किंतु आशा-भरे स्वर मे कहा—रात को झिल्ली पुकारती रहती है, मैं सुन पाता हू, उसका जीवन-व्यापी क्रदन गूज रहा है। जरा रुककर उसने फिर शुरू किया, कठस्वर बदल दिया, ज़रा दीप्त हो गया। अशुमान ने कहा—लेकिन आज वह आएगी।

नि शब्द पदक्षेप से आएगी । मैं बासुरी बजाऊगा । उसीका स्वर पकड़कर वह संभवत. उस खिडकी के पास आ खडी होगी । मुझे पुकारेगी···

—यह सदर्भ पकडकर वह नर्स वधू के छद्म वेश मे खिडकी के पास आ खडी होगी । कहेगी—मधुकर ! मेरे मधुकर !

रजन ने उसे इशारा किया था—बोलिए, मिस सेन !

सीता सेन ने बोलने की कोशिश भी की, लेकिन बोल न सकी। चेहरा देखने से ही जान पडता है, जाने कैसी नर्वस-सी हो गई है। समय बीत गया, लेकिन वह किसी तरह न बोल सकी।

अशु ने कहा—अच्छा, मैं फिर कहता हू । उसने शुरू किया । लेकिन फिर भी सीता सेन न बोल सकी । पल-पल मे उसका चेहरा फक् पडता जा रहा है । आखो की दृष्टि कैसी तो असहाय-भयार्त होती जा रही है । वह चुपचाप खडी है ।

अन्त मे उसने कहा—यह मुझसे न होगा । कहकर, धीरे-धीरे चलकर आई और बैठ गई । एक लम्बी सास लेकर, सिर झुकाकर बैठी रही । सारा कमरा निस्तब्ध था । सब लोग चुप हो गए थे । वे उसकी हालत अपनी आखो देख रहे थे । इस हालत मे क्या कहे—क्या कह सकते है ?

नीरवता भग करके अशु ने कहा—क्या हुआ ? नही कहा जाता ?

सिर हिलाकर उसने कहा—नही ।

—एक काम कीजिए । किताब से उस सीन की रीडिंग दीजिए । ज़रा ऊची आवाज मे । बेशक, ऐक्टिंग की तरह ही । पढिए तो ।

रजन ने किताब सीता की ओर बढा दी; लेकिन सीता ने उसे छुआ भी नही । अशु ने कहा—पढिए । इस बार सीता ने मुह उठा, सिर हिलाकर कहा—मुझसे न होगा ।

—क्यो नही होगा ?

—नही । मैं जाने कैसी हुई जाती हू । इसके अलावा आप इतना अच्छा पार्ट करते है—आपके बाद मुझसे बोला नही जाता । मेरा गला सूख गया है । हाथ-पैर काप रहे हैं । आप लोग किसी और को पार्ट दे दीजिए ।

—अच्छा, एक बार पढिए तो सही।

—क्या होगा पढकर ? जो नही कर सकूगी…।

—शर्माती है ?

—शर्म ? शर्माऊगी क्यो ? पहले सीन मे मैने जो बाते कही—शर्माना होता तो उन्ही बातो मे जबान रुक जाती।

—अच्छा, तो एक बार किताब देखकर आप फिर पढ जाइए। मैं किताब देखकर डायलॉग बोलूगा—आप पढिए। न हो, सब आप ही पढिए। रीडिग दीजिए।

किताब लेकर सीता पढ गई। सारा ही पढा उसने। यानी रीडिंग पढते हुए वह वर-वधू दोनो के डायलॉग बोल गई। पढने मे अभिनय के ढग का लेश भी नही था, फिर भी पढ गई। अंशु ने कहा—ठीक है। अब मैं रिहर्सल की तरह अपना पार्ट बोलता हू, आप किताब देखकर अपना पार्ट बोलिए।

वह उससे हुआ। इसके बाद अंशु ने कहा था—आज यही तक रहने दें।

अशु उस दिन टैक्सी पर सिर्फ सीता को लेकर और उसे पहुंचाकर अपने घर लौटा। टैक्सी पर बैठते समय उसने सीता को पुकारा—आइए। पहुचा दू आपको। रजन, तुम चले जाना।

टैक्सी पर बैठकर उसने सीता से कहा—आप शाई क्यो है ?

—शाई ? शाई क्यो होऊगी ? आप ही कहिए न, मैं शाई हू ? मैं कैनवासर का काम करती हू, मैं शाई हू ? सीता हसी।

अशु विस्मित हुआ। सीता पलट गई है। यह वही औरत है। कैन-वासर। रजन ने कहा था—उसने उसे काफी हाउस मे देखा है, मेट्रो के बार मे देखा है, चिडियाखाने मे दल के बीच शोर-गुल करते देखा है—अपनी आखो से न देखने पर भी अशु उसका आभास पा रहा है।

अशुमान ने कहा—तब ? अभिनय मे लव-सीन है। उसमे नर्वस क्यो होती है ?

सीता ने ज़रा देर सोचा। बोली—देखिए, कारण सिर्फ एक ही नही है। मैं बैठी-बैठी सोच रही थी।

—कौनसे कारण है । बताइए ।

ललाट से केश हटाकर सीता ने कहा—पहला कारण है आपका सामना । मैंने सुना था, आप बहुत अच्छा अभिनय करते है । रिहर्सल मे देखा, मैं जो सोचती थी, उससे बहुत अच्छा करते हैं । मुझे लगा कि उसके बाद मैं जो बाते कहूगी, उन्हे सुनकर शायद लोग हसेंगे ।

—नही, हसेंगे नही । ज़रा जान फूककर अभिनय करना होगा । अपने को थोडा भूलना होगा । फिर देखिएगा, मुझसे भी···

सीता सेन ने कहा—यही तो मुश्किल है । मैं किसी तरह अपने-आपको नही भूल पाती । इसके अलावा· । आप कुछ खयाल तो न करेंगे ?

—क्यो ? खयाल क्यो करूगा ?

—बात मुझे रोमाटिक नानसेस लगती है । माडर्न-वाडर्न मैं नही जानती । हाल-फैशने जानती हू । सज-सवर सकती हू । बाते भी कर सकती थी, आजकल कैनवासरी करके लगभग टेप रेकार्डर की तरह बजा करती हू । पिता रिटायर्ड गवर्नमेट सर्वेंट थे—किसी वक्त घर मे साहबीयत चलती थी, रिटायर होने के बाद उसमे बहुत कमी हो गई थी, लेकिन खत्म नही हुई थी । बडी हुई तो कुछ दिन लॉरेंटो, फिर पैसो की कमी से देशी स्कूल मे पढी ।

उसी दिन, उस टैक्सी मे ही, सीता सेन का पूरा परिचय पाया था । बात-बात मे, बड़े सहज भाव से, सीता ही कह गई थी । सोफिस्टिकेटेड परिवार की लडकी है । नाक जितनी ऊची है, हालत खराब होने के कारण जटिल धूल-मिट्टी की रियलिटी के प्रति उतना ही अधिक अनुराग है । उसीको चरम सत्य समझकर सेटेड हेयर आयल अथवा कीमती शैंपू के अभाव मे केशो को रूखा ही रखती है । ऐसा लगता है, जैसे धूल-गर्द भरी हो, फिर भी नारियल का तेल नही लगा सकती ।

बाप थे अग्रेज़ो के ज़माने के छोटे-मोटे गजेटेड अफसर । सब-डिप्टी थे । स्वभाव के झगडालू । अफसरो से झगडते रहते थे । कहते थे—विद्या तो वही एक ही है । तुम भी एम० ए० हो, मैं भी एम० ए०

हू । फिर भी सुविधावाद की करामात से अथवा पैरवी के ज़ोर से तुम दो सीढी ऊपर हो । मैं दो सीढी नीचे । फिर उस जमाने के नेशनल लीडरो को कहते थे—लोफर । दो साल जेल काट ली तो हीरो बन गए । पढाई मैट्रिक फेल—नही तो पास तक । ऐसे ही थे उसके पिता । स्वाधीनता के बाद जब वे ही लोग देश के कर्णधार हुए तो अपने जहर से वे खुद ही जर्जर हो गए । लम्बी छुट्टी बाकी थी सो लेकर बैठ रहे । नतीजा यह हुआ कि अग्रेजी राज से लेकर देशी राज तक सब-डिप्टी के ग्रेड मे ही रह गए । मिजाज हमेशा साहबी रहा । घर का स्टाइल यथासभव अभिजात बनाए रखते थे । दो लडके थे, तीन लडकिया । सीता छोटी थी । लडको को सेट जेवियर्स मे पढाते थे, लडकियो को लॉरेटो मे । दोनो लडके अग्रेजी मे पक्के थे, लेकिन बाकी सब कुछ मे गोबर की तरह कच्चे । दो लडकिया ही सबसे बडी थी । अग्रेजो के राज मे, नौकरी करते समय ही, उन दोनो का ब्याह कर चुके थे । लडको ने अच्छे घरो मे शादिया की थी, यानी मुफस्सिल के जमीदार कम-व्यवसायियो के यहा । सर्किल अफसरी के सिलसिले मे परिचय हुआ था । उन लोगो ने उम्मीद की थी—हाकिम के लडके है, बदस्तूर स्टाइलवाले और फर्राटे की अग्रेजी बोलते है—इन लडको को बडी नौकरी मिल ही जाएगी । लडके उस समय पढ ही रहे थे । पोस्ट ग्रेजुएट क्लास मे पढ रहे थे । सालहा-साल फर्स्ट क्लास पाने के लिए परीक्षा मे बैठते ही न थे । स्टूडेंट मूवमेट मे हिस्सा लेते थे । सीता उस समय फ्राक पहनकर लॉरेटो मे जाती थी ।

रिटायर होने के बाद पिता को प्राविडेट फड के जो रुपये मिले, उनको लेकर वे नये सिरे से विस्मृततर जीवन-क्षेत्र मे उतरे । शेयर मार्केट मे । लडको की उम्मीद तब तक जाती रही थी । लडको ने थर्ड डिवीजन मे किसी तरह पास होकर कोशिश-पैरवी करके गवर्नमेट सर्विस मे प्रवेश किया । एक फूड डिपार्टमेट मे इस्पेक्टर था, दूसरा सेक्रेटेरियट मे क्लर्क ।

पिताजी ने एक सेकेड हैड गाडी खरीदी । गाडी न हो तो शेयर मार्केट मे इज्जत नही होती और जान-पहचानवालो से सिर उठाकर यह नही कहा जा सकता कि बिजिनेस कर रहे है । उस समय भीतर हो

भीतर हालत चाहे जो भी रही हो, बाहर से वे खुद भी कुछ अदाज़ नही लगा सके। पुश्तैनी मकान है, पेशन है। लडके हर महीने तनख्वाह लाते है। बहुओ को बाल-बच्चे नही हुए। गुज़र मज़े मे हो रही थी। अचानक मि० सेन शेयर मार्केट मे डूब गए।

उन्होने एक दूसरे सेन साहब के साथ मिलकर बैक खोला था। वह बैक फेल हो गया। असली सेन साहब बैक के रुपये हजम करके पकडे गए और जेल की हवा खाने चले गए। और सीता के पिता सेन—वे भी डाइरेक्टर थे—अपने शेयर औने-पौने बेचकर, सब खत्म करके उसी पुरानी मोटर पर घर लौट आए। दो दिन बाद उसे भी बेचकर घर मे जा बैठे और सारी दुनिया को गाली देते-देते एक दिन हार्ट फेल होने से चल बसे।

सीता उस समय आइ० ए० मे पढ रही थी। वह भी पढने के मामले मे भाइयो की योग्य बहन थी—एक बार फेल हो चुकी थी। शादी नही हुई थी। कॉलेज जाती थी—लडके लडकियो के साथ अड्डा जमाती थी। इसके साल-भर के बाद भाई लोग अलग हो गए—सिर्फ भाई-भाई ही नही, मा के साथ भी अलगाव हो गया। किसीने सीता की जिम्मेदारी भी नही ली। सीता ने कहा—ठीक है। अपनी जिम्मेदारी मै ही लूगी—सिर्फ अपनी ही नही, मा की जिम्मेदारी भी मेरे ही ऊपर रही।

लॉरेटो मे पढी हुई लडकी—खासी सुदर्शन। स्टाइल जानती है, अग्रेजी मे फर्राटे से बाते करती है। उसने इस भारत-प्रसिद्ध एलेक्ट्रिकल कम्पनी की नौकरी अपने लिए जुटा ली। बाप के परिचय ने कुछ मदद की थी, लेकिन उससे भी ज्यादा मदद की थी उसके माडर्न जीवन ने—इस रूप, इस प्रगलभता ने, इस अग्रेजी वाक्पटुता ने। कम्पनी के ग्राहक बगाली नही थे ज़्यादा। बगाली गोयठे और कोयले के धुए को छोडकर रसोई नही बना सकते और शायद दूसरी आच पर रसोई बनाने से उसमे धुए की जरा भी गन्ध न होने के कारण व्यजन स्वादिष्ठ नही लगते। अन्य प्रदेशो के लोग खरीदारो मे ज्यादा है, बड़े खरीदार है—खास तौर से वर्तमान समय के राष्ट्रनायको की बिरादरी के लोग;

जिनके यहा लन्दन-न्यूयार्क की सुख-सुविधाओ का आयात हो रहा है; जिनके घर की औरते गगास्नान करती है और बच्चो को 'बेबी' कहकर पुकारती है। नौकरानी को कहती है 'आया' और नौकर को 'ब्वाय'। पुरुष कोट-पैंट पहनते है। साल मे दो-एक बार यूरोप-अमेरिका जाते है। फॉरेन बैको मे जिनका खासा बडा बैक बैलेस है। खरीदार वे ही है। उनके साथ नौकरी-पेशा मद्रासी है—फॉरेनर तो है ही। इन लोगो के निकट उस जैसी माडर्न कैनवासर का बहुत मूल्य होने के कारण ही कम्पनी ने भी उसका बहुत आदर किया था।

बातो मे बहुत समय लगा था। टैक्सीवाला अशुमान का परिचित था। वह उसे सीधा उसके घर ले आया था। गाडी के रुकने पर दोनो को ख्याल आया था और दोनो ही हस पड़े थे। सीता ने कहा था—ओ मा! देखिए तो तमाशा! टैक्सी लौटाने को कहिए। मुझे पहुचा दीजिए।

अशु ने कहा था—बाते खत्म कर लीजिए। आपने जो केटली दी है, उसीमे बनी कॉफी पी लीजिए। टैक्सी रुकी रहेगी। आपको पहुचा आऊगा।

बातें खत्म करके सीता ने कहा था—वह बडा अनरीयल है। ऐब्सर्ड है। वह पार्ट मैं नही कर सकूगी। मेरी कैनवासरी ही अच्छी है। उस बात को मैं किसी तरह सत्य के रूप मे स्वीकार नही कर सकती।

अशुमान ने कहा था—सत्य नही है, इसीलिए तो मिथ्या दी गई है।

सीता ने अचरज से उसकी ओर देखा था। अशुमान ने कहा था—इस तरह क्या देख रही है? कहिए तो वह क्या सच्चा लव-सीन है? या कि प्रेम का अभिनय करके एक मानसिक व्याधिग्रस्त तरुण को बासुरी बजाने से रोकने की चेष्टा की जा रही है और उसमे जीवित रहने की इच्छा—विल टु लिव (जीने की इच्छा) जगाई जा रही है?

थोड़ी देर सोचकर सीता ने जैसे सब कुछ समझ लिया था और सिर हिलाकर सहमति जताई थी—हा। पर एक मुहूर्त बाद ही कहा

था—लेकिन वह तो अभिनय करने जाकर प्रेम मे पड गई थी। जहर खाकर मरी थी।

—हा, मरी थी; लेकिन वहा तो आप आखे बन्द करके सिर्फ लेटी रहेगी। मरना तो आपको पडेगा नही। आपकी सास चलेगी, सो चले; नाट्यशास्त्र के अनुसार वह आपत्तिजनक नही होगा।

सीता हस पडी थी।

मुश्किल हुई थी स्टेज-रिहर्सल के दिन।

उस दिन अशुमान का मन बडा दुखी था। लगभग तीन महीने बीत चुके थे। देर उसीके चलते हुई थी। दो बडी कान्फ्रेंसें हो चुकी थी। दो लिटरेरी कान्फ्रेंस, दो ड्रामा फैस्टिवल। उनमे उसको शरीक होना पडा था। दिल्ली की सगीत-नाटक एकेडमी का एक निमन्त्रण भी उसे मिला था। लेकिन उस दिन का दुख इन बातो के लिए नही था। उस दिन शाम के बाद खबर आई थी—नेहरू ने पार्लियामेट मे कहा है—तीन दिन पहले, ३१ मार्च को तिब्बत के जीवित बुद्ध, बुद्ध के अवतार, दलाई लामा अपनी मा, भाई-बहनो, तीन मन्त्रियो और दो शिक्षको को साथ लेकर भारत की धरती पर आ पहुंचे हैं।

हाय बुद्ध के अवतार, हाय धर्म, हाय ईश्वर! चीन के माओ-त्से-तुग अवतार नही है। वे जनता के डिक्टेटर है। क्षमाहीन नेता। सर्व-समर्थ अधिकर्ता। उनके डर से जीवित बुद्ध ने इस दुर्बल भारतवर्ष की शरण ली है, कुछ क्षुब्ध चित्त लेकर ही वह आया था। राजनीति मे से किसी भी राजनीति को वह नही मानता, नही चाहता। नही चाहता, फिर भी जब वह अपनी ताकत से आकर व्यक्ति के जीवन तक को झक-झोर देती है तो क्षुब्ध हुए बिना रहा कैसे जा सकता है?

उस दिन स्टेज-रिहर्सल के समय, प्रथम सीन मे सुन्दर अभिनय करके, उस सीन मे अशुमान की बात पकडकर नववधू का छद्मवेश पहने सीता ने प्रवेश तो किया, लेकिन बोल नही सकी। प्राम्पटर ने बार-बार उसे उसका डायलॉग पकडा देना चाहा—उसने भी बोलने की कोशिश की, मगर बोल नही सकी।

भीतर से रजन ने पूछा—क्या हुआ ?

वह कुछ बोल नही सकी, सिर्फ थर-थर कापती रही ।

सबने कहा—क्या हुआ ?

सीता असहाय, भयार्त दृष्टि से ताकती रही, पसीने-पसीने होती रही। पसीना उसके बदन से झर-झर झर रहा था। थोडा-थोडा हाफ भी रही थी। रजन ने आकर कहा—मिस सेन, क्या हुआ ?

उसने कहा था—मैं नही कर पा रही। यह मुझसे न हो सकेगा रजन बाबू !

—यह क्या ?

—नही। मै न कर सकूगी। मेरा सारा शरीर काप रहा है। देखिए न !

षोडशी सघ के सब लोग क्रोध से अधीर हो उठे थे। विमल गुप्त ने कहा था—रबिश ! प्ले बन्द कर दीजिए। रजन बाबू और अशु बाबू इसके लिए जिम्मेदार है।

मौसी ने कहा था—यह कैसी वाहियात बात है !

इसके बाद अशु उठ आया था। वह स्टेज पर अपनी जगह ही बैठा था। आकर उसने कहा था—हटिए तो सब लोग। सभी हट गए थे। अंशु सीता के सामने आ खडा हुआ था। उसने कहा था—क्या हुआ तुम्हे ? उसने उस दिन पल-भर मे उसे 'तुम' कहा था। उसका स्वर रूढ था, कठोर।

वह कठस्वर सुनकर सीता ने करुण भाव से उसकी ओर देखा था।

अशु ने पूछा था—क्या हुआ है, बोलो ?

करुण स्वर मे ही सीता ने कहा था—मुझसे नही होता। मै काप रही हू। मुझे पसीना छूट रहा है।

—नही, कापती नही हो। पसीना होता है तो हो। पार्ट तुम्हे करना ही पडेगा।

सीता ने कहा था—नही, मुझसे न होगा।

खप् से उसका हाथ पकडकर अशु उसे खीचता हुआ ग्रीन रूम के

एक कमरे मे ले गया था। उसने जजीर अदर से बन्द कर दी। सीता विह्वल होकर उसकी ओर देख रही थी—कुछ पूछ नही सकी थी।

—क्यो नही कर सकोगी!

इस बार अशुमान को अकेला पाकर सीता दीप्त हो उठी थी। उसने कहा था—नही। नही कर सकूगी। मुझसे नही होता। मै अभिनय नही करूगी।

—क्यो, तुमने सोचा क्या था?

—क्या?

—साहित्यिक अशुमान तुमसे प्रेम करने लगा है? तुम्हे डर है कि अभिनय करते-करते तुम भी उसके प्रेम मे पड जाओगी?

निर्वाक्, स्तब्ध हो गई सीता। उसका सुन्दर चेहरा पेट के रग से और भी सुन्दर हो गया था—वह चेहरा जैसे काला पड गया। आसुओं की दो धाराए उसकी आखो के कोनो से बह चली।

—रोती क्यो हो? रोने से क्या लाभ है? इन लोगो की बात तुम नही सोचती?

आखे पोछकर उठ खडी हुई थी सीता। उसने कहा था—चलिए।

अशु ने कोई उत्साह-वाक्य नही कहा, किसी तरह की सात्वना नही दी, दरवाजा खोलकर कहा—चलो।

स्टेज पर आकर उसने कहा—शुरू करो। आरम्भ से। इसी सीन के आरम्भ से। सीन शाम से आरम्भ होता था। शाम की रोशनी···। शाम की रोशनी दो! प्राम्प्टर!

आरम्भ हो गया। एक ओर, विंग्स के पास, मिट्टी की मूरत की तरह खडी थी सीता। धरती की ओर ताक रही थी। अचानक उसके कानो मे अशुमान की बातें पडी थी—लेकिन आज वह आएगी। निःशब्द पदक्षेप से आएगी। मैने बासुरी के स्वर बिखेर दिए है। उसीका सूत्र पकडकर वह खिड़की के पास आ खड़ी होगी और पुकारेगी—मधुकर!

सीता आकर ठीक खिडकी के पास खडी हो गई थी। उसकी आवाज़ ज़रा धीमी निकली थी।

किसीने कहा था—लाउडर !

अशु ने खीझकर कहा था—नही । ठीक पुकारा है । लाउडर नही होगा । प्रेम का अभिनय चीत्कार करके, ढोल बजाकर नही होता । डिस्टर्ब न कीजिए, प्लीज़ ! लेकिन हां, ज़रा ड्राई हुआ है ।

इस जगह से फिर शुरू करना पडा था । सीता ने फिर आकर पुकारा था—मधुकर ! उसके बाद अभिनय की गाडी चल पडी थी । आनेवाले कल की तैयारी । सब ठीक चल रहा था । सिर्फ सीता प्राण-हीन थी । वह सिर्फ बोलती ही गई थी । प्राम्प्टर जिस तरह कहलाता था, उसी तरह बोलती गई थी । लेकिन वह बराबर कापती रही थी । चेहरा फीका पड गया था । फिर भी वह पार्ट निभा ले गई थी । सीन खत्म करके, बाहर आकर वह बैठ गई थी । बहुत देर तक हाफती रही थी । बिलकुल असहाय की तरह का उसका वह चेहरा अशुमान को याद है । उसी चेहरे की छाया जैसे कल की बेहोश सीता के चेहरे पर उभर आई थी ।

रजन ने आकर पखा खोल दिया । दोनों हाथो से मुह ढककर बैठी है सीता । शायद रो रही है । दृश्य बदलने पर अशुमान वहा आ खडा हुआ । बोला—मरकर पडे रहने के सीन मे आज उसे नही आना होगा। ऐसा ही करने को कह दो ।

लेकिन स्टेज-रिहर्सल देखकर षोडशी सघ के सदस्यो के असन्तोष का ठिकाना न था । अंशुमान से कहा था—क्या करू ? उपाय क्या है ? लेकिन···। जाने दो । जो होना होगा, होगा । उसके मन मे एक उम्मीद थी ।

अगले दिन भरे हुए प्रेक्षागृह मे इस ज़माने के श्रेष्ठ नाट्यकार शचीन सेनगुप्त के सामने अशुमान की आशा आश्चर्यजनक रूप से सत्य हो गई । सीता ठीक वक्त पर आई । नीरव, स्तब्ध । उसकी आखें बडी कटीली जान पडी । उसने कुछ पी रक्खा है या नही, इस बात पर औरतों मे थोडी काना-फूसी हुई । लेकिन किसीने कोई व्यतिक्रम या

विलक्षणता नही देखी। उधर सीता ने पहले दृश्य मे धारदार छुरी की तरह प्रवेश किया। वह जब तिरछी-कडवी हसी हसकर बोली—मेरा मन मुझसे जो कराता है, मै वही करती हू डाक्टर बाबू! मुझे तो वह अनुचित नही मालूम होता। होता तो मैं कराती ही क्यो? और दूसरे अगर उसे अन्याय कहेगे तो मैं मानूगी क्यो?

—नही मानोगी?

—नही। और रास्ता? मनुष्य किस राह से, कहा, कब, किस स्वर्ग मे पहुचा है, बतला सकते हैं? उसी मिट्टी की धूल मे ही तो वह आखो का पानी गिराता है, अन्तिम सास लेता है। उसके बाद राख होकर या सड-गलकर मिट्टी मे ही मिल जाता है…। लोग कहते है कि पाप-पुण्य का विचार भगवान के हाथ है। मेरा खयाल है कि वे हैं ही नही। मैं नही मानती। होगे तो उन्हे न मानने के लिए यो ही मुझे सजा मिलेगी। उसके बाद यह सब अगर पाप ही होगा तो उसकी सजा तो बोझ के ऊपर साग की गठरी की ही तरह होगी। फासी के हुक्म के बाद पाच बरस की सज़ा का इन्तजाम होगा।

ये बाते सुनकर लोग सिहर उठे, स्तभित रह गए। कितनी प्रखर, कितनी उग्र, उद्धत औरत है! उसके बाद जब अन्तिम दृश्य मे वह वधू के वेश मे आई, उस समय उसका स्वर विरह-विधुरा चक्रवाकी की तरह करुण था और अभिनय के बीच ऐसा जान पडा, मानो अशुमान के पास बैठे रहने पर भी उन दोनो के बीच एक अदृश्य नदी बही जा रही है, जिसके दूसरे किनारे पर वह बैठी हुई है। लेकिन वह आज भी काप रही—थर-थर काप रही थी। चेहरे के पेंट पर बूद-बूद पसीना दीख रहा था। पार्ट खत्म करके वह डगमगाती हुई बाहर निकली। प्रेक्षागृह मे दर्शक रो रहे थे। मौसी फफक-फफककर रो रही थी। बडी दीदी चुपचाप बैठीं थी। पानी की दो धाराए उनकी आखो मे झलमल कर रही थी। उन्होने पोछी नही। पोछना भूल गई थी।

अन्तिम दृश्य मे प्रौढ डॉक्टर ने वह पत्र पढा था। उसके बाद सुप्रिया नर्स के शरीर पर हाथ रखकर उसे झकझोरकर पुकारने की बात थी—सुप्रिया! सुप्रिया! बेटी! वैसा ही करने जाकर डॉक्टर

के वेश मे विमल गुप्त चौक उठा था। सीता बेहोश हो गई थी।

मौसी स्टेज के भीतर दौड गई। बडी दीदी, कुछ दूसरे सदस्य तथा निमन्त्रित औरतो मे से भी कई स्टेज पर चली गई। शचीन बाबू भी गए। डॉक्टरवेशी विमल गुप्त दरवाज़े पर खड़ा था। उसने कहा था—हीरोइन बेहोश हो गई। इस समय जरा···।

यानी भीतर मत जाइए।

शचीन बाबू ने कहा—अशु से कहना, एक दिन तुम सब लोगो का मेरे यहा निमन्त्रण है।

सीता को होश आने मे देर लगी थी।

स्टेज से निकलकर सीता डगमगाते कदमो से ग्रीन रूम मे आई थी और आते ही नर्स की भूमिका के लिए सेट पर जाते हुए रास्ते मे ही लुढककर बेहोश हो गई थी। रजन उसे उठाकर पखे के नीचे ले गया, उसके मुह पर और आखो पर पानी के छीटे दिए, फिर भी सीता को होश न आया। डॉक्टर बुलाना पडा था। इसी बीच अशुमान भी आ गया। वह उसके पास झुका हुआ बैठा था। डॉक्टर ने कहा, बहुत स्ट्रेन पडा है। बडे इमोशन के साथ पार्ट करने से ऐसा हुआ है। अब विश्राम चाहिए—कम्प्लीट रेस्ट। कम से कम एकाध घण्टा सुलाए रखिए। होश बेशक कुछ देर बाद आ जाएगा। थोडा गरम दूध, नही तो पानी ही दीजिए। आखो की पलके काप रही है। आखे खोलेंगी। लेकिन भीड न होने दीजिएगा। नही।

आधे घटे बाद रजन ने सीता से कहा—गाडी लाने को कहू ?

सीता बोली—हा।

रजन चला गया। अशुमान सामने कुर्सी पर बैठा सिगरेट फूक रहा था। उसने कहा—सीता !

सीता ने उसकी ओर देखा।

अशुमान ने कहा—मैं तुम्हे प्यार करता हूं सीता !

सीता जरा-सा हसी, कुछ बोली नही।

रजन लौटकर आ खड़ा हुआ—गाडी आ गई है।

सीता उठ खडी हुई। उसने कहा—मैं अपने मन को टटोलकर देखूगी अशु बाबू! फिर··

—फिर?

—आज ही, अभी उत्तर चाहते है?

—हा।

जरा देर चुप रहने के बाद सीता ने कहा—नही। उसके बाद कहा—अभिनय अभिनय अशु बाबू! भूल जाइए। अभिनय खत्म हो गया।

अशुमान ने दृढ स्वर मे कहा—नही। अभिनय भी सत्य होता है। ज्ञान, बुद्धि, तर्क खोकर आदमी धूल मे लोट जाता है।

सीता जमीन की ओर देखती रही। बिना कारण, अथवा लोगो के अनजाने किसी कारण से, उसकी आखो से टप्-टप् आसू झर पडे।

अगले दिन से, बल्कि इसी क्षण से सीता उसके जीवन मे आई थी और वह सीता के जीवन मे जा पहुचा था, लेकिन पति-पत्नी के विवाह-बन्धन मे बन्धकर नही।

याद आती है शुरू-शुरू की बाते। वह खुद ही सीता के घर गया था। उसे आशा थी कि शचीन बाबू के घर मुलाकात होगी। सजीव अभिनय देखकर उन्होंने अपने घर पर सबको निमन्त्रित किया था। लेकिन सीता वहा नही आई। टैक्सी लेकर अशु खुद उसे बुलाने गया था। सीता बाहर आई थी, लेकिन उसने निमन्त्रण मे नही जाना चाहा। उसने कहा था—नही, माफ कीजिएगा, अब और अभिनय नही। मैंने अभिनय करना छोड दिया है।

अशु ने कहा था—लेकिन 'अभिनय नही' का निमंत्रण मैंने कल ही तुम्हे दिया था सीता। तुमने बातों से उसका उत्तर नही दिया, लेकिन आख के आसुओ से दे दिया था।

इस बार भी बात का जवाब दिए बिना सीता चुपचाप खडी रही।

—सीता!

—कहो।

उल्लसित होकर अशु ने उसका हाथ पकड़कर कहा था—तुमने

'कहिए' के बदले 'कहो' कहा है ।

सीता ने कहा—हा, कहा है, लेकिन इस बार अभिनय करके नही कहा । उस मजलिस के लिए तुम मुझे माफ करो । मैं शचीन बाबू के घर सवेरे गई थी । उन्होने कहा है—सीता, अशु नाटक लिखता है, लिखेगा । लिखे । उसकी जरूरत है । लेकिन अगर तुमने उसे प्यार किया है तो सीता बनकर ही प्यार करो । शायद यह युग सीता का युग नही है । फिर भी इस युग की सीता बनने की चेष्टा करो ।

उस दिन अशुमान ने कहा था—ऐसा ही होगा ।

कुछ ही दिनो मे परिचित लोगो मे कानाफूसी होने लगी थी । समाज मे, दुनिया मे जो कानाफूसी हमेशा से होती आती है, वही । कलकत्ते मे समाज नही है, सीता और अशु के परिचित लोगो मे है, वे ही दोनो पक्ष प्रखर और मुखर हो उठे थे । उन दोनो मे से लेकिन किसीने उसपर ध्यान नही दिया था—न सीता ने, न अशुमान ने । लेकिन कई महीने बाद आकर सीता ने कहा था—देखो, मैने वहा की नौकरी छोड दी है । हम लोगो की बाते लेकर वे लोग बहुत बहकने लगे है ।

—अच्छा किया है । वह मुझे भी पसन्द नही था । इसीके चलते मैंने भी अपने मित्रो को छोड दिया है—रजन तक को ।

—मुझे एक ऐसी नौकरी ढूढ दो, जहा मैं शाति से और आराम से काम कर सकू । दो सौ रुपये महीने मे भी मेरा काम चल जाएगा । घर तो है ही । किराया नही लगता । सिर्फ अपना और मा का खर्च है ।

—नौकरी करनी ही पडेगी ?

—पडेगी नही ? किसीसे लेना मुझसे हो न पाएगा—तुमसे भी नही; नही तो खेल-घर पक्की गृहस्थी का रूप धारण कर लेगा ।

अशु ने उसके लिए एक नौकरी भी ढूढ दी थी । शचीन बाबू की सहायता लेनी पडी थी । नौकरी एक शिशु-नारी सस्था की थी । वहा शिक्षिका का काम था । उससे सीता खुश हुई थी । वह ऐसा ही काम चाहती थी । यहां सज-सवरकर बडे-बडे धनिको के यहा जाकर उनका मनोरजन नही करना पडता, कम्पनी के सहकर्मियो के साथ भी कभी-कभी आना-जाना

नही पडता । उनके 'ईट, ड्रिंक ऐंड बी मेरी' क्लब मे हुडदग भी नही करना पडता । स्मार्टनेस का खेल खेलने की बला नही है। लडके-लडकियों को लेकर यह खासा शात-स्वस्थ जीवन है—और हुडदग करो, उनके साथ खेलो-कूदो, गाना गाओ—यह जैसे एक बडे परिवार की बडी दीदी का काम है । तीसरे पहर छुट्टी । छुट्टी होते ही अशु के घर आकर रसोई-पानी, खाना-पीना, हसी-ठट्ठा और फिर भी एक अतलस्पर्शी गहरे जल-स्रोत को बीच मे रखकर, दोनो जनो का दो किनारो पर बैठकर, अपलक एक-दूसरे को देखते रहना । उस स्रोत की नहर उन्होने खुद ही जान-बूझकर खोद रक्खी है । दोनो तरफ से हाथ बढाकर दोनो एक-दूसरे को छू भी सकते हैं । छूने के स्पर्श से वे दोनो एक-दूसरे के लिए और भी रमणीय बन जाते है । वही उनके सारे जीवन का पाथेय है—वे जीवन मे इसी तरह चलते रहेगे । इससे अधिक नही । उस जलस्रोत में गिर-कर दोनो एक-दूसरे को जकडकर डूब नही मरेगे—नही मर सकेंगे ।

परिणाम यह हुआ कि उनकी बदनामी का ठिकाना न रहा । उन लोगो ने उसपर ध्यान नही दिया । सीता की मा भी खिलाफ हो गईं । भाई लोग तो पागल-से हो गए । उधर इस बदनामी के चलते सीता की नौकरी भी जाती रही ।

अशु ने कहा—तुम इसके लिए चिन्ता न करो । तुम मुझसे कुछ रुपये ले लो । कर्ज समझकर ही लो । स्वतत्र रूप से कुछ काम करके वे रुपये मुझे लौटा देना । उन रुपयो से ··

सीता ने फिर पढाई शुरू की । एक साल बाद आइ० ए० पास भी कर लिया ।

अशु ने कहा था—अब पढना खत्म करो ।

सीता ने कहा था—नही, मुझे अपने योग्ग बनने दो ।

भूल शायद वही हुई थी ।

सदा से चले आते तरीके से सीता ने उसके योग्य बनना चाहा था ।

उसने खुद भी क्या वही नही चाहा था ? उस दिन शचीन दा नही थे । उनका देहान्त हो चुका था । उन्होने सीता से कहा था—यदि प्रेम करो तो सीता की तरह ही प्रेम करना । सीता बनकर ही प्रेम करना ।

उसी सीता की तरह—

'कायेन मनसा वाचा' काय-मनोवाक्य से एक होकर प्रेम करो।

कल्पना करने मे उसे भी तो बुरा नही लगा था। वह यदि वनवास मे जाए तो सीता भी उसके साथ वनवास मे जाएगी। सोने का हिरन पकड देने को भी कहेगी।

इस जमाने के लडके-लडकियो की तरह बन्धु-बांधवो के होने की कल्पना तो उसने की नही थी। जुलूस-धारिणी, ध्वजा-पताका-वाहिनी, राजनैतिक कामो मे नियोजित-प्राणा सीता की बात भी नही सोची थी।

वे लोग अपने समवयस्क बन्धु-बाधवो को विचित्र और सहज आधुनिक ढग से 'तू' कहती है, 'सुन' कहती है, 'अरे' कहती है। उनके वैनिटी बैग मे प्रसाधन की सामग्री नही, विस्फोटक पदार्थ रहते हैं। छुरी रहती है, छुरा भी रहता है। जो लोग राजनीति के साथ ससर्ग नही रखती, उनके बैग मे क्या रहता है?

सब—सब—सब रहता है, या रह सकता है। एक औरत के जीवन मे जिन चीजो की जरूरत होती है, वह सभी कुछ रह सकता है।

सीता वह नही कर सकी। वह भी नही कर सका।

क्यो नही कर सका?

क्यो ऐसा हुआ? इस तरह सब उलट-पलट क्यो हो गया?

दोनो हाथो से मुह ढककर अशुमान सोचता है।

सीता का और उसका जीवन, घटना-चक्र अथवा घटना-विन्यास के बीच एक-दूसरे की ओर अग्रसर होकर मिलने आया था। उन्होने मिलना चाहा भी था। लेकिन प्राचीन सभी कालों के समस्त विधि-विधानो को अस्वीकार करके उन्होने किसी नये विधान का सजेशन लेकर मिलना चाहा था—उसने भी चाहा था, सीता ने भी चाहा था। सीता होकर मिलने के शचीन दा के उस आशीर्वाद को माथे पर रखकर, मन के कमरे के ताक पर बेलपत्र की तरह रखकर भी चाहा था। उन्होने विवाह से बडे, अधिकतर वास्तव और पवित्रतर एक मिलन को एकसाथ जीवन में रूपायित करना चाहा था। लेकिन मानो किसी एक अति प्रचड

शक्तिशाली अनिवार्यता ने आकर वह सब व्यर्थ कर दिया था, तहस-नहस कर दिया था।

सन् १९५९ से १९६२ तक, एक-एक महीना और दिन गिनने पर होगा दो बरस, सात महीना और कई दिन।

इस समय की डायरी है उसकी।

उनके जीवन ने आश्चर्यजनक रूप से मुह फिराना शुरू किया था।

मुह फिराना, यानी बाहरी दुनिया के सारे आधी-तूफान और उथल-पुथल से मुह फिराकर, दोनो एक-दूसरे की ओर मुह करके एक-दूसरे की ओर बढते आ रहे थे।

परिवर्तन मानो उससे ज्यादा सीता मे हुआ था।

वह प्रतिष्ठा की ओर से मुह नही फिरा सका था। सभा-समिति, आदोलन, इनसे अपना सबध एकदम से नही तोड सका था।

सीता कर सकी थी।

सीता पहले पढाई मे जुटी थी। एक साल से कुछ महीने अधिक समय मे उसने आइ० ए० पास कर लिया था। बी० ए० मे पढ रही थी। सवेरे या दोपहर को घर आती, अपने हाथ से कुछ खाना-पीना बनाती, कुछ भरतहरि से बनवाती, (नौकर का असली नाम शायद भर्तृहरि था, उससे भरतहरि हो गया, अशुमान कभी उसे भरत कहकर पुकारता, कभी हरि) निर्जन दुपहरी मे दोनो खाने बैठते, बातें करते। पढने-लिखने की बातें, जीवन के तत्त्व के बारे मे तर्क-वितर्क; उस तर्क-वितर्क मे धरती को पार करके सीता चली जाती किसी दूसरे ग्रह में; अशुमान से कहती—तुम अशुमान बनकर ही मेरे हृदय मे अपना प्रकाश भेजना।

लेकिन दो साल पूरे होते न होते ही अशुमान ने अनुभव किया—जाने कहा से उत्ताप विकीर्ण हो रहा है।

क्रमशः उसने अनुभव किया कि वह उत्ताप उसके मन के अन्तर्लोक से निकल रहा है। लेकिन कहने मे सकोच होता था।

सीता ? सीता की बात सीता जाने।

विचित्र रूप से, आपस के एक अत्यन्त आत्म-विस्मृत मुहूर्त मे, एक-

दूसरे के निकट उन्होने मृत ईश्वर अथवा वर्तमान समय के सब कुछ नष्ट करनेवाले जीवन-तत्त्व के नाम पर शपथ ली थी—हम एक-दूसरे को बाधेगे नही—विवाह नही, बधन नही; देह-दान नही, मन का विनिमय—विदेही अस्तित्व के मिलन-जैसी ।

एक दिन उसने सीता से कहा—सीता, अब तो मैं अपने को रोक नही पाता ।

सीता ने हसकर कहा—हम लोगो ने जो वादा किया था, उसकी याद करो । याद नही है ?

बाहर एक जुलूस जा रहा था । वह सन १९६२ का साल था ।

चीन के आक्रमण को लेकर शोर-गुल हो रहा है, तर्क-वितर्क हो रहा है ।

वही सब नारे लग रहे थे ।

रास्ते के उस ओर, एक नये रगे मकान की दीवार पर, उन्हीमे से कुछ नारे लिखे हुए थे । सीता और अशुमान उसी लिखावट की ओर देखते बैठे हुए थे । वे जैसे एक-दूसरे की ओर ठीक से देख भी न पा रहे थे ।

जितनी देर तक जुलूस निकल नही गया, उतनी देर दोनो बाते नही कर सके । उसके चले जाने पर अशुमान ने पुकारा था—सीता !

सीता ने कहा था—कहो !

—मैं क्या कहू । तुम कहो । मुझे जो कहना था, कह चुका हू ।

सीता ने कहा—नही, तुमने नही कहा । मित्रता के दायरे से निकल-कर जब तुम पास आने को कहते हो तो क्या वादा करते हो, यह बताओ । मैं नारी हू, तुम पुरुष हो । तुम मेरे अधिक से अधिक निकट आ सकते हो, लेकिन रावण की तरह नही ।

पल-भर के लिए अशुमान को लगा था कि सीता कौतुक से उच्छ्वसित हो उठी है और उसने भी उसी ढग से उत्तर दिया—तो बताओ, कौन-सा शिव-धनुष तोडना पडेगा मुझे ?

सीता ने कहा—नही अशुमान, मैंने कौतुक अथवा परिहास नही किया । मैंने रावण की बात कही, इसका कारण यह है कि रावण बनना

आसान है, लेकिन वाल्मीकि का राम-सीता बनना बडा कठिन है। वह दुःख मैं नही सह सकूगी। मैं जानती हू, राम के नाम पर तुम ठट्ठा करके ठहाका लगाओगे। मैं हल के फाल से निकाली गई लडकी नही हू। एक साधारण लडकी हू। मैं जिसे अपने जीवन का हिस्सेदार बनाऊगी, वह मेरा दूल्हा होगा, मैं उसकी बहू होऊगी। तुम मुझे पति होने का वचन दोगे, मैं तुम्हे पत्नी होने का वचन दूगी। बताओ, तुम किस मन्त्र से मुझे ग्रहण करोगे ?

—यानी तुम यह जानना चाहती हो कि किस मत से ? तुम लोग ईसाई हो, हम हिन्दू है—गो कि मैं वह भी नही हू। फिर भी तुम यह पूछती हो कि किस मत से होगा ?

—हा।

वह गभीर हो गया था। उसने कहा था—उसकी जरूरत क्या है ?

—जरूरत नही है ? सीता चौक उठी थी।

—क्या जरूरत है ?

बहुत देर तक उसकी ओर देखती रहकर सीता बोली थी—बडी धीरता से और धीमी आवाज मे बोली थी—मुझे घरनी बनाकर लाओगे, मैं घर चाहूगी…

—क्यो, यही मकान तो मेरा घर है।

—यह मकान कल किसीके हाथ बेच देने पर दूसरे का हो जाएगा। मैं जो घर चाहती हू, वह किराये के मकान मे भी बसाया जा सकता है, पेड के नीचे भी, पहाड की गुफा मे भी। मुझे गृहस्थी चाहिए—मैं गृहस्थी बसाऊगी।

—सीता !

—कहो।

—विवाह, माने मिथ्या ईश्वर की शपथ लेकर, मन्त्र पढकर विवाह हो या रजिस्ट्री करके विवाह हो, हम लोगो ने इतने दिनो तक इन दोनो मे से किसीको नही माना। तुमने भी नही—मैंने भी नही। आज तुम यह क्यो चाहती हो ? तुम्हे किस बात का डर है ?

कुछ सोचकर सीता ने कहा था—डर की बात नही अशु ! तुम्हारे

संपर्क मे आकर मैं बहुत बदल गई हू । देखो, पुरुष और नारी जब आमने-सामने खडे होते है तो आखो से, सारी देह से, सासो की गर्मी से एक दूसरे के लिए चचल हो उठते है । यह प्रकृति का नियम है । पुरुष अपनी प्रकृति का निर्देश मन से बाहर कर देता है । वह मन कहता है, मैं उसे सदा के लिए चाहता हू । सदा के लिए ही उसका नितान्त अपना होना चाहता हू । और किसीको नही चाहता—मन से नही चाहता, देह से नही चाहता—यहा तक कि बात की बात से भी नही चाहता । प्रेम

बार-बार सिर हिलाकर अशुमान कह उठ—नही सीता, नही । यह भ्रान्ति है—सामयिक मोह है—यह उसी मिथ्या की पुनरुक्ति है ।

—तो मैं चली अशुमान !

अशुमान चौक उठा था । उसने कहा था—चली क्या ? सीता !

—हा, मैं चली । तुम भी सोच देखो, मैं भी सोच देखूगी । यद्यपि मैं अपने मन को जानती हू, सोच देखने को कुछ है नही—फिर भी कहती हू, सोच देखूगी । तुम्हारी ओर अब मैं देख भी नही पाती हूं अशुमान ! मैं

सीता चली गई थी। शायद 'मै' के बाद उसने जो बात कहनी चाही थी उसके इस प्रथम शब्द 'मै' पर ही वह रो पडी थी । अशुमान ने फिर उसे लौटाने की कोशिश नही की । वह सोचने बैठ गया था ।

नही । नही । नही ।

किसी तरह वह उस पुरानी प्रतिश्रुति के मिथ्या बोझ को सत्य कहकर माथे से न लगा सकेगा । विवाह से भी बडा, अन्तिम कविता का प्रेम, इन बातो पर भी अब उसका मोह नही है। यह कल्पना भी मिथ्या से अधिक मिथ्या है । असार है । वस्तु-जगत् मे वास्तवतावादी मानव है वह । बीसवी शती के इस सप्तम दशक मे उसके निकट इतिहास की चरम याचना का सब कुछ मिथ्या है, मिथ्या है, मिथ्या है; जिसपर वह विश्वास नही करता।

हाय सीता ! अन्त मे तुम्हारी यह परिणति हुई ? कई मिनट तक चुपचाप बैठे रहने के बाद वह उठकर कमरे के अन्दर चला गया था।

डायरी और कलम लेकर लिखने बैठ गया था।

वह इन बातो को लिख रखना चाहता है।

उसने लिख भी रखा है। कटी-कटी, छूटी-छूटी बाते। इस लिखावट को बाद मे उसने कितनी बार पढा है, इसका ठिकाना नही।

उसी समय एक और जुलूस आया था। सब लोग मैदान जा रहे है। सभा होगी। सीता के चले जाने और लिखने के लिए कलम उठाने के बाद वह पाच-सात मिनट तक चलता रहा था।

इन्कलाब ज़िदाबाद तो पहली बात है ही। उसे याद आता है, इसके अलावा भी जाने किसका क्या न्याय चाहिए, ऐसा नारा था। शायद काग्रेसी नेताओ या मन्त्रियो का। गैर-कानूनी कानून नही चलेगा, नही चलेगा, नही चलेगा,—यह भी था।

उस दिन उसने अपनी डायरी, नाटक के दृश्य-सयोजन की तरह लिखी थी और उसे अपने नये नाटक मे शामिल कर लिया था। लोगो ने इन बातो को मन लगाकर सुना था; तालिया बजाई थी, सोचा था।

कितने शतसहस्र वर्षों से मनुष्य एक प्रतिश्रुति से अपने को बाध रखना चाहता है—साथ ही साथ दूसरो को भी एक प्रतिश्रुति देता है। लेकिन उस प्रतिश्रुति की वह रक्षा नही कर पाता। वह स्वय अपने को ठगता है। उसने अपने निकट की हुई अपनी शपथ तोडी है। दूसरे को दी हुई शपथ भी तोडी है। न्याय की प्रतिश्रुति—नीति की प्रतिश्रुति—सत्य की प्रतिश्रुति। लेकिन सब कुछ व्यर्थ हो गया। मिथ्या हो गया। यही प्रमाणित नही हुआ कि क्या न्याय है, क्या नीति है, क्या सत्य है।

दुर्योधन का भी एक सत्य था।

युधिष्ठिर का भी था।

व्यासदेव ने स्वर्गलोक मे दुर्योधन को इन्द्र के साथ समान आसन पर बैठाकर उसे उसका प्राप्य दिया है। वे उसकी अवहेलना नही कर सके। उधर युधिष्ठिर को स्वर्गलोक मे पहले नरक दिखाकर तब छुटकारा दिया है। दिया है तो दे; लेकिन युधिष्ठिर ने धर्मराज्य स्थापित करने की प्रतिश्रुति मे असफल होकर सिर झुकाकर स्वर्ग का रास्ता तय किया था।

याद आता है, बलहीन अर्जुन के हाथ से शबर और व्याध गण, यदु-कुलवधुओ को जबर्दस्ती छीन ले गए थे और वधुओ मे से कुछ जोर-जोर से हसती हुई, शबरो का आलिगन करके उनकी सगिनी बन गई थी । जाने के समय उन लोगो ने अपने मृत पतियो के नाम पर जो थूक फेका था, वह अगर उन्हीके शरीर पर आ पडा तो उसीसे उन्होने अपना शृगार किया । हाय धर्मराज्य ! कटी हुई पतग की तरह उडता-बहता वह किस निरुद्देश्य की ओर चला गया ! हाय प्रतिश्रुति ! प्रतिश्रुति से ही मनुष्य की सभ्यता का जन्म हुआ है । मनुष्य मनुष्य बना है । जानवर से मनुष्य बना है । उसने धर्म का पल्ला पकडा । धर्म ने प्रतिश्रुति दी थी—धर्म ईश्वर को जानता है—वह ईश्वर की कृपा देगा, उनकी वाणी देगा, उनको मनुष्य के पास ला देगा, मनुष्य सब कुछ पाएगा। यह प्रतिश्रुति झूठी हो गई है। धर्म की सारी शपथे मिथ्या है—सारी प्रतिश्रुति व्यर्थ है ।

उसके बाद राष्ट्र ने प्रतिश्रुति दी थी । समाज ने प्रतिश्रुति दी थी। अन्न-वस्त्र की, सुख-शान्ति की । इसके अलावा भी बहुत कुछ की, उसकी स्वाधीनता की, उसके साथ कुछ और की भी । उसी ईश्वर जैसे किसी की ।

वह सब भी व्यर्थ हो गया है ।

जान पडता है, बीसवी शती का प्रथमार्ध खत्म होते-होते इतने दिनो की सारी व्यर्थता चीत्कार कर उठी है···

इन्कलाब—जिदाबाद ।

यह जो वे लोग चीत्कार कर रहे है—'ये आजादी झूठ है', उनका नारा उसीके साथ कह रहा है—'सब कुछ बिलकुल झूठ है।'

इस तरह दुनिया की सारी प्रतिश्रुति, सारी तपस्या के मिथ्या हो जाने की हताशा से, क्षोभ से मनुष्य और कभी ऐसा क्षुब्ध हाहाकार नही कर उठा था। वह सब कुछ कूडे की तरह उठाकर फेके दे रहा है—टूटे-फूटे, छोडे हुए पदार्थों की तरह ।

इसी क्षण मे सीता के बदले, उसके अर्ध समाप्त जीवन-नाटक की

नायिका बनने के लिए, नाटकीय मुहूर्त की सृष्टि करके नमिता ने मुंह बढाया—हलो, हलो अशुमान !

—मैं कोई एक नमिता हू । पहचान सकते हो ?

नमिता उसकी भाभी की बहन है, जो उसकी उपेक्षा करके ऑल इंडिया सर्विस के एक नौकरी-पेशा, नवीन भद्र सन्तान से शादी करके उसकी आखो के इलाके से दूर चली गई थी। जिसे वह लक्ष्मी का वाहन उल्लू कहता है, वह यही है ।

बिलकुल नाटक के अन्दाज मे नमिता आई । टेलीफोन की घटी बज उठी ।

उसी दिन, जिस दिन सीता के चले जाने के बाद और जुलूस गुजर जाने के बाद अकस्मात् मन मे उठे विचारो के टुकडो को डायरी मे लिखे जा रहा था, तभी लिखने मे बाधा देकर टेलीफोन की घटी बज उठी थी ।

दमदम एयरोड्रोम से नमिता टेलीफोन कर रही थी।

—अशु बाबू ! मै हूं नमि ! मुझे पहचान रहे हो ?

पहले दो-एक बातो मे पहचाना नही जा सका । उसके जीवन-पथ के कई माइल-पोस्टो पर अमिता का नाम लिखा है, फिर भी पहले-पहल अशु पहचान नही सका । वह सीता की बात सोच रहा था। नमिता की आवाज ने उसे चौका दिया । वह और दो पक्तियां लिखकर डायरी बद करके उठ गया ।

उसने लिखा—देह से तो देह की एक प्रतिश्रुति है सीता !

वह प्रतिश्रुति रक्त के प्रवाह-प्रवाह मे कल्लोलित है । आखो की पलको मे, दृष्टि मे दिन-रात प्रवाहित है । पल-भर मे चौंक उठती है ।

देह मे रहकर देहातीत होने की कोशिश न करना । उसका नाम मृत्यु है ।

मन की दुहाई देकर नर-नारी के प्रथम अधिकार को चारो ओर से कस बाधकर, केशो मे गोद लगाकर, जटा न बना देना ।

यही तक उसकी डायरी मे लिखा है । उसके बाद कुछ नही है ।

नमिता आ गई ।

नमिता ने टेलीफोन के दूसरे सिरे से याद दिला दी—नमिता तुम्हारी भाभी की बहन है। किसी जमाने की तुम्हारे काव्य की नायिका। मेरे लिए विरागी होकर तुमने विवाह नही किया। मै क्या करती, बताओ ? उन लोगो ने धर-पकडकर, फॉरेन सर्विस के अफसर के कोट के साथ सेफ्टी पिन से मेरी साडी का आचल नत्थी कर दिया। पहले नशा चढा। उसी नशे मे उडकर चली गई। बहुत-से देशो मे घूमना हुआ। बीच-बीच मे देश भी लौटी थी, लेकिन तुमसे मिली नही।

अचानक हवा के एक झोके की तरह महीन आवाज की रेशमी चादर के हिल्लोल पर चढकर एक दबी हुई हसी उसके कानो तक पहुची थी।

यह हवा उस हवा का झोका थी, जो अलस भ्रमरो के पास फूलो की गध ले आती है। अशुमान के चित्त की चेतना जैसे पल-भर मे जाग उठी थी। आग्रहपूर्ण उल्लास के साथ उसने कहा था—नमि। मैं और तुम—अशु और नमि की नमि।

—हा। दुनिया-भर मे घूमकर तुम्हारे देश मे पहुची हू। साथ ही पति देवता से झगडकर लौटी हू। इसीसे तो कस्टम्स का बेडा पार करते-न-करते तुम्हे खबर दे रही हू। तुम आओ। मेरी मदद करो। सीधे किसी होटल मे पहुचा दो। समझे ? मै पूरी तरह स्वाधीन हू। नही। घर की ताबेदारी और भले-बुरे की खबरदारी मे अब नही पडना है। एनफ आफ इट। बहुत हो गया अशु ! अब उस अर्थहीन ईश्वर-धर्म, सतता-सतीत्व वगैरह को लेकर, आखो पर पट्टी बाधकर लगडी का खेल खेलने को मै तैयार नही हू। हा, तुम आओ।

नमिता आश्चर्यजनक रूप से सुन्दरी और उच्छल यौवना हो गई है। उसके अग-अग मे, डाल पर खिले उस फूल की गध, वर्ण और मोह है, जिस डाल पर फूल खिलाने के लिए प्रचुर विलास और अगाध ऐश्वर्य की आवश्यकता होती है।

कस्टम्स की रेलिंग के किनारे खडी वह रास्ते की ओर ही देख रही थी। अशुमान को उर्वशी कविता की कुछ पंक्तिया याद आ रही थी—

'तुम कन्या हो न वधू, कि रूपसी हो सुन्दर।' उसे याद आ रहा था—

—तुम्हारे कुच-हारो से ··। हृदय के अन्दर रक्तधारा का नाचना, उसके लिए नया नही है, लेकिन वह कभी इस तरह विह्वल नही हुआ।

नमिता ने उससे कहा था—कैसा देख रहे हो ? मैं बहुत सुन्दर नही हो गई ?

—हुई हो।

—यह तो जानती हूं, लेकिन तुम बताओ, कैसी ?

—कहूगा, अपूर्व।

—अगर कहू, तुम्हारे ही लिए।

—मैं कहूगा, झूठी बात।

—क्यो ?

—यह नही जानता। लेकिन अपनी बात जानता हू। वही कहता हू। मै कहता हू, देह देह को आर्कषित करती है, यह सच है; लेकिन यह मिथ्या है कि मन मन को आर्कषित करता है। इस क्षण तुम्हारे सामने खडा होकर भी यह बात कहने मे मुझे सकोच नही है।

नमिता ने अत्यन्त सहज हसी से मानो अकपट भाव से स्वीकार करते हुए कहा था—ठीक कहते हो। उससे बडा झूठ और कुछ नही है। इस जमाने मे जब समाज का भय, पतित होने का भय और शास्त्रो के शासन का भय जाता रहा है तो निश्चय ही यह स्वीकार करना पड़ेगा कि कोई भी व्यक्ति किसी एक का नही। तुम्हारा भी नही है, यह मैं न कहूगी।

एक मशहूर होटल मे वह उसे छोड आया था और उस दिन वह मतवाले की तरह अतसी की तलाश मे दौड पडा था।

वह गया तो था अतसी की तलाश मे, लेकिन टैक्सी मे सारे वक्त उसे सीता की ही याद आती रही थी। इस युग का समस्त क्षोभ, सारे अविश्वास की रूढता को हृदय मे लेकर सीता की तस्वीर को मन से हटा देने, सीता को खदेड देने के लिए ही उसने अतसी की याद की थी। नमिता को याद करना उसे अच्छा नही लगा। नमिता के शरीर के लिए उसके मन मे कोई आकर्षण नही था, यह सच नही है। आकर्षण था, लेकिन किसी एक विचित्र बोध ने उसे रोक रक्खा था।

उसका मन उत्साहित न होकर लौट आया था।

शाम को नमिता के होटल में ही शराब पीकर वह अतसी की तलाश मे निकल पडा था। नमिता ने उसे ठीक-ठीक आकर्षित नही किया। अतसी से उसे किसी तरह का सकोच नही है। नही, नही है।

एक अपरिचित किशोरावस्था मे वह और अतसी, देह के आकर्षण से एक दूसरे-से मिले थे। उसमे मन का योग हो न हो, बिलकुल भ्रूण के समान प्रकृति का एक अनिवार्य आकर्षण तो था ही। शायद वह पशु-भाव था, लेकिन उससे ज्यादा कुछ नही था। शायद निर्लज्ज था, लेकिन कदर्य नही था। नमिता ने देह के आकर्षण के बीच, विलास के विविध उपकरणो से सजाकर, लालसा को उत्तेजित करके जाने कैसा गंदला बना दिया है। वह उसे अपवित्र न कहेगा। नही, अतसी अपवित्र है। लेकिन वह अतसी को पा नही सका। वह बम्बई चली गई, फिर लौटी नही।

नमिता मूर्तिमती आधुनिका है। वह मानो धन-तान्त्रिक देश का आधुनिक युग ही है। अशुमान को नये सिरे से उज्ज्वल और उत्तप्त करके, जलाकर वह डेढ-दो महीने बाद फिर चली गई। जाते समय कह गई—"यूरोप आओ, अमेरिका आओ। बगला मे किताबे लिखकर क्या करोगे? यहा जीवन कहां है? मुझे देखो। इस देश मे तुम मुझे स्पर्श भी नही कर सके। उसके लिए मुझे क्षोभ नही है। दुःख भी नही है। देख लो।"

नमिता इस देश के नाम से दुखी है। उसका पति उससे तृप्त नहीं है—उससे बधा नही है। वह भी नहीं है। इससे नमिता का कुछ बनता-बिगडता नही।

उसने सोचा था, नमिता को प्लेन पर चढाकर लौटने के बाद वह नाटक लिखेगा। वह फिर उसी पुराने और अधूरे नाटक की विषय-वस्तु को लेकर बैठ गया। महाभारत की सत्यवती की कथा लेकर नाटक लिख रहा है। इस बार नाम देगा—स्वर्ण-मृगी।

पहला अंक—पराशर और सत्यवती।

लगभग दो महीने बाद आई सीता। सीता दो महीने बाद नही आई—वह आती थी और लौट जाती थी। अशुमान से भेंट न होती थी। अशुमान नमिता के साथ चक्कर काटता रहता था। किसी दिन घर लौटता था, किसी दिन नही।

सीता को देखकर अशुमान जाने कैसा हो गया था। शायद फक पड गया था। लेकिन सीता ने उससे कुछ कहा नही।

उसने कहा था—नमिता से तुमको इतना क्या काम था ?

वह चौंक उठा था—नमिता से !

सीता ने कहा था—मैं जानती हू।

अशु ने कहा था—सोच रहा था, अमेरिका जाऊगा।

—ओ !

जरा देर बाद सीता ने फिर कहा था—क्या हुआ, बताओ तो ?

—क्या होगा ?

—इस तरह बदल गए ?

—बदल गया हू ? नही। ज़रा देर बाद कहा था—एक नया नाटक लिख रहा हूं। सोच रहा हू, उसमे खुद भी काम करूगा।

—फिर नाटक ? खुद भी पार्ट करोगे ?

—नही तो ?

बहुत देर तक चुपचाप बैठी रहकर सीता चली गई थी।

अशु और भी बदला। वह चला जाता—घर पर न रहता। सीता आकर बैठी रहती, फिर घर लौट जाती। भोजन बनाकर रख जाती।

जिस दिन भेट हो जाती, पूछने पर कहता—काम था। प्रकाशकों के साथ हिसाब-किताब हो रहा है। झगडा हो गया है। उनके यहा से हटाकर किताब दूसरी जगह दूगा। उसीके लिए जाना पड़ता है। अथवा कहता—मीटिंग थी।

एक दिन उसने कहा—एक नाटक होगा। उसके हीरो का पार्ट करने के लिए जिद कर रहे है। उसीके लिए गया था।

ज़रा चुप रहकर सीता ने कहा था—अभिनय करोगे ?

—कठिन पार्ट है···

उसी दिन जाने के वक्त सीता ने कहा था—कल मैं नही आऊगी।

अशु ने कहा था—ठीक है। मुझे भी काम है।

—वह भी मैं जानती हू।

—जानती हो ? मैने तो तुमसे कहा नही।

—कहते तो कभी नही। मै आकर लौट जाती हू।

अशुमान चुप रह गया था। जवाब न दे सका था। जवाब वह ढूढ ही नही पाया।

सीता ने कहा था—एक और बात कहती हू।

बिना रुके ही उसने कहा था—अब फिर नही आऊगी।

—नही आओगी ? मतलब ?

—अच्छा नही लगता।

—सीता !

—तुम्हे भी अच्छा नही लगता अशु ! तुम कह नही पाते। खेल-घर को तोडकर चले जाने का समय आ गया है···

अशुमान उठकर चहलकदमी करने लगा था। सीता भी उठ खडी हुई थी। लेकिन अशुमान ने कहा था—जाना मत।

—कहो, क्या कहते हो ? रात बहुत हो गई है।

—आज मत जाना।

—अशु !

अशुमान ने ज़ोर से उसके हाथ पकडकर कहा था—नही।

सीता ने कहा था—अशु !

—नही, नही, नही।

वह पुरुष है।

बीसवी शती के इकसठवें साल मे उसकी उम्र है तीस बरस की। उसने कहा था—नही, आज न जा सकोगी।

याद करते-करते अंशु को परेशानी जान पडी। उसके जीवन मे यही एक अशाति है, अस्वस्ति है। सवेरे उठकर सीता चली गई थी। फिर नही आई। उस दिन उसके उठने के पहले ही सीता उठकर निकल

गई थी। जाने के समय सिर्फ इतना ही कहा था—कहो तो, यह क्या हो गया ?

अशुमान ढूढे जवाब न पा सका था।

उस दिन सवेरे उठकर अशुमान ने अशान्ति भोगी थी। उसे भयानक अशान्ति और पश्चात्ताप का अनुभव हुआ था—उसने यह किया क्या ? यह क्या किया उसने ! उसकी आशका थी, सीता आएगी। आकर…। इसके बाद वह नही सोच पाता था। वह एक शब्द निकालता था। विरक्ति-सूचक शब्द। कभी-आ· ! कभी छिः-छि ! कभी मुह से कोई शब्द न निकालता—अस्थिर हो जाता था।

लेकिन सीता फिर नही आई। चार बरस हो गए। रजन से पता लगवाकर उसने जाना था, सीता यहा से चली गई है। सीता की मा की मृत्यु हो गई है। सीता को वे अपने मकान का हिस्सा दे गई थी। मकान का वह हिस्सा बेचकर वह चली गई है। भाइयो को पता नही कि वह कहा गई है। वे लोग नही जानते।

सीता पर उन्हे बडा क्रोध है; क्योकि मा के दिए हुए घर के हिस्से को वह उन लोगो को न देकर, ज्यादा दाम पर किसी और को देकर चली गई है। उत्तरी कलकत्ते का मकान है, उसे हजारो की अच्छी रकम मिली है।

इस समाचार से अशुमान विस्मित नही हुआ। सीता जीवन के हिसाब मे पक्की है। ऐसा न होता तो उसके साथ गृहस्थी बसाने का दावा लेकर आती और गृहस्थी बसाकर बाकी जीवन मे खुद भी अशान्ति की आग मे जलती, उसे भी जलाती। उसने वैसा नही किया।

अशुमान ने सीता को मन से धो बहाया और अपने जीवन के परित्यक्त पथ पर लौटकर उसने द्रुततर गति से यात्रा शुरू कर दी।

वह बीसवी शती के द्वितीयार्ध के कई बरसो के साथ दौडा चला जा रहा था। सन् १९६२ से १९६६ का अन्त और १९६७ का आरभ।

सीता जाने कहां खो गई थी। धीरे-धीरे अशुमान ने उसे भूलने की कोशिश की थी। अन्याय का पश्चात्ताप उसके मन मे ज़रा-सी भी

परेशानी नही छोड गया था। वह युग के साथ चलनेवाला व्यक्ति है। यूरी गागारिन के साथ वह शून्यलोक मे पृथ्वी की परिक्रमा कर आया है। हगरी के मामले मे उसने सोवियत सघ का विरोध किया है। ताइवान के मामले मे अमेरिका का विरोध किया है—वियतनाम के मामले मे भी अमेरिका का विरोध किया है। कैनेडी की मृत्यु पर उसने शोक प्रकट किया है। जवाहरलाल की मृत्यु पर भी रोया है। विधान राय की मृत्यु पर भी उदास हुआ है। काल के प्रखर स्रोत के खिंचाव से वह तीव्रतम वेग से बहा जा रहा था।

अचानक काल··। सन् १९६७ की जनवरी की दसवी तारीख।

कल वह यू० सी०`सी० मे गया था।

अपने नाटको से उसने एक नाटक-सप्ताह मनाने का निश्चय किया था। उसमे वह केवल नाट्यकार और अभिनेता ही न रहेगा, स्वय ही परिचालना और प्रयोजना करके डाइरेक्टर-प्रोड्यूसर भी होगा। उसी प्रोडक्शन के बारे मे वह किताबें उलट-पुलट रहा था—अमेरिकन प्रोडक्शन की किताबे। इसके लिए वह सिर्फ यू० सी० सी० मे ही नही गया, रशियन एम्बेसी और सोवियत देश के दफ्तर मे भी गया था। इसीके लिए कल यू० सी० सी० मे जाकर उसने अचानक चौरगी के रास्ते पर समवेत कठो का 'जिदाबाद-मुर्दाबाद' नारा सुना था। सुनकर बाहर आकर देखा था कि छात्रो का एक लम्बा जुलूस जा रहा है। उसमे युवक-युवतियो से लेकर छोटे-छोटे बच्चे तक है। फेस्टून प्लाकार्ड लिए वे आवाज़ें लगाते जा रहे है—

—वियतनाम से—

—हाथ हटाओ !

—अमेरिकन साम्राज्यवाद—

—मुर्दाबाद !

—वियतकाग मुक्ति सेना—

—ज़िदाबाद !

—लाग लिव—

—रिवोल्यूशन !

उनके साथ-साथ पुलिस के सिपाही चल रहे है। पुलिस की जीप भी है। यू० सी० सी० के पास, कुछ दूर खडी पुलिस पहरा दे रही है। एक बार इसी तरह के एक अमेरिका-विरोधी जुलूसवालो ने ईंट और डंडे मारकर यू० सी० सी० के शीशे तोड डाले थे—इसीसे पुलिस ने यहां यह सतर्कता बरती है। उस दिन वह इन जुलूसवालो पर बिगडा था। बुरी तरह से बिगड उठा था। लेकिन आज उसे क्रोध नही आया। मन ही मन अखबारो की हेड लाइने दीखने लगीं। उसे ठीक तौर से भाषा याद नही है, लेकिन अमेरिका अपने जेट बाबर वियतनाम मे ले गया है और झुंड के झुड बाबर उत्तरी वियतनाम के कम्युनिस्ट इलाके मे जाकर बमबारी कर आते हैं। एक औरत की तस्वीर निकली थी। उस औरत का चेहरा देखकर जान पडता था कि वह कलेजा फाडकर रो रही है। उसका सब कुछ नष्ट हो गया है—पति-पुत्र, घर-बार, सब·· सब कुछ। क्यो ? तुम्हे समूचा प्रशान्त महासागर पार करके, दक्षिणी वियतनाम के प्रेम मे पागल होकर लडने के लिए यहा आने की क्या ज़रूरत है ? अपने भाग्य का निर्णय वे ही लोग करे। तुम्हारा क्या है ?

उधर चीन है। चीन ने ऐटम बम का विस्फोट किया है। उसको अभिमान है कि वह एशिया का भाग्य-नियन्ता बन गया है। भारतवर्ष के उत्तरी हिस्से मे पजा जमाकर बैठ गया है। सोचते-सोचते माथा खराब हो जाता है। दम घुटने लगता है।

उधर अयूब खा विष उगल रहे थे—बूद-बूद नही, गलगलाकर। कच्छ के रन मे साप की तरह दश मारकर उसका बहुत-सा हिस्सा उन्होने अपने दाढो मे दबा रखा था।

इन्ही उलझे-पुलझे खयालो के बीच कब वह रास्ते पर आकर जुलूस के साथ-साथ चलने लगा था, यह खुद भी नही जानता। लेकिन अमेरिकन कौसुलेट के सामने आकर रुक गया था।

एक सौ गज की दूरी पर पुलिस के घेरे ने जुलूस को रोक रखा है। एक छात्र-नेता किसी चीज़ के ऊपर चढकर खडा हो गया है। हाथ की मुट्ठी बाधकर, चीखते हुए उसने भाषण आरम्भ कर दिया—भाइयो !

कुछ वाक्य सुनने के बाद उसे अच्छा न लगा। अत्यन्त अभद्र और

अत्यन्त क्रुद्ध वाक्यों के समूह ने उसे दुखी कर दिया।

वह वहा से हट आया। अकेला चलता हुआ वह विक्टोरिया मेमोरियल के पास चला आया। धूप-खिले मैदान से घास का एक तिनका तोड़कर वह बच्चो की तरह उसकी डडी दात से कुतरने लगा।

शाम हुई जा रही है। बडी-बडी गाडिया मैदान के किनारे आ खड़ीं हुईं। गाडी से सुन्दर और अच्छे पहनावे-पोशाकवाली औरतें उतर रही हैं, उनके साथ है बच्चे-कच्चे और मर्द। इनमे से ज्यादातर दूसरे प्रान्तो के लोग हैं—लखपती-करोडपतियो का दल। इनमे से सौ मे निन्यानबे से भी अधिक लोग ब्लैक मार्केटियर हैं। और लोग सौ मे से शायद सौ ही कहे। वह ऐसा न कहेगा। एक आदमी—कम से कम एक भला आदमी उनके बीच है। जरूर है। नही तो दुनिया टिकी कैसे है ? वहा से हटकर वह प्लैनेटोरियम के पासवाले बगीचे की छाया मे आ बैठा।

सारा दिन बेकार चला गया—खामखाह वह इन लडको के दल के साथ इतनी दूर घूमता फिरा !

अचानक उसे लगा कि जीवन-भर वह इसी तरह व्यर्थ ही घूमता रहा है। व्यर्थ नही तो और क्या !

सोचते-सोचते उसने आसमान की ओर देखा। कौन जाने—चालीस-पचास हज़ार या कि उससे भी ज्यादा ऐटम बम पेट मे छिपाए जेट विमान नहीं उड रहे है ! अमेरिका मे जाने कहा, किस कट्रोल पोस्ट मे बैठे किसी आदमी के एक बटन दबाते ही भयानक धडाका होगा। जिस धडाके की आवाज से पृथ्वी का केन्द्र-स्थल तक सिहर जाता है, वही धडाका करता हुआ एक विशालकाय ऐटम बम नीचे गिरते-गिरते फटकर, आखें अंधी कर देनेवाली चमक की गर्मी से और प्रचडतम आवाज़ से सारे कलकत्ता शहर को जला-झुलसाकर राख न कर देगा ! अंशुमान को आज ज़रा भी डर नही लगता।

अचानक थियेटर रोड और चौरगी के क्रासिंग पर ट्राफिक पुलिस कीं ह्विसल अस्वाभाविक जोर से बज उठी। आवाज के साथ मोटर के ब्रेक कसने कीं ध्वनि सुन पडी। अशुमान ने आखे उठाकर देखा—पूर्व से पश्चिम का ट्रैफिक बन्द किए पुलिस खड़ी है।

इस बार उसे सामने एक खाली टैक्सी मिल गई। वह दौडकर उस-पर जा बैठा।

मैदान मे मानूमेट के नीचे मीटिंग हो रही है। मानूमेट से सटा फ़ेस्टून टंगा हुआ है। झडा फहरा रहा है। यूनाइटेड फ्रंट की मीटिंग है। इस बार एलेक्शन है। सारे दल इस बार काग्रेस को हटाने के लिए कमर बाधे हुए है।

बाईं ओर, पूरब की तरफ मेट्रो के सामने दर्शको की भीड जमा है। फर्स्ट शो खत्म हुआ—शाम के शो के दर्शक अन्दर जा रहे है। गाडी, गाडी, गाडी। प्राइवेट टैक्सी, डबल डेकर, लॉरी—उनके साथ आदमी, आदमी, आदमी। चल रहे है। चल रहे है। चल रहे है। रोजी-रोजगार। फेरीवाले—जूता पॉलिश—पिक पॉकेट—नारी-शिकारी पुरुष—पुरुष सधानी नारी। पुलिस स्पाई।

जीवन का स्रोत प्रचड वेग से बहा जा रहा है। असख्य टैक्सिया भी उसीके साथ चल रही है। मन्थर गति से। द्रुत गति से। इस-उस बगल से निकलकर। बूढा सिख ड्राइवर पासवाले ड्राइवर को गाली दे रहा है। कभी दूसरे सिख ड्राइवर से चिल्लाकर कुछ कह रहा है। गीयर लगाता है, क्लच दबाता है, हार्न बजाता है। विचित्र रूप से यान्त्रिक हो गया है जीवन। अशुमान का मन सूना है।

गाडी रुक गई। सामने धर्मतल्ला, चौरगी, बेंटिक स्ट्रीट और सेंट्रल एवेन्यू का जक्शन है। मोड पर लाल बत्ती जल उठी है। गाडियो की कतार रुक गई है। अब दक्खिन मुहवाली गाडिया पूरब की ओर जा रही है—चल रही है दक्खिन मुह! पच्छिम की ओर कर्जन पार्क मे जन-समुद्र है, चीटियो की तरह आदमी। आदमी। आदमी। आदमी। अन्न नही है। जगह नही है। है आदमी। किसी अखबार मे अशुमान ने पढा था, आज धरती पर साढे तीन सौ करोड आदमी हैं—सन् २००० मे इससे दुगुने हो जाएगे। उसके तीस साल बाद ७०० करोड हो जाएगे १४०० करोड। तब आदमी क्या करेगा?

गाडी के अन्दर अशु को जीवन असह्य जान पडता है। जाडे का

मौसम होने पर भी उसे पसीना छूट रहा है। पेट्रोल की गन्ध। धुआं। दस, बीस या पचास हार्नों की एकसाथ आवाज़। डबल डेकर का असहनीय अहकार से अतिकाय दैत्य की तरह दबा देने की धमकी देते हुए शरीर से सटकर निकल जाना—यह असह्य जान पडता है। इसीके बीच-बीच मे भिखारी घूम रहे है। ये इस तरफ के आदमी ही नही है। दूसरे प्रदेशो से आकर चौरगी का इलाका दखल कर बैठे है।

सीटी बजी। लाल रोशनी पीली हो गई। अब हरी होगी। इसी बीच गाडियो की कतार खिसकने लगी है। यह चलने लगी। अशुमान की टैक्सी के पास से एक डबल डेकर भागमभाग, गरजता हुआ बगल काटकर निकल गया। क्रूड आयल के धुए से सामने कालिमा छा गई। पहले धीरे-धीरे, फिर प्रबल गर्जन करके आगे बढ चला। उधर एक लॉरी है। वे रोलिग स्टोन हैं। उनके रास्ते से हट जाओ।

पजाबी सिख ड्राइवर बिगड उठा है। उसने सिर निकालकर ड्राइवर को गाली दी। बस का ड्राइवर अपने इजन के गर्जन के बीच कुछ सुन नही सका। वह गाली दे रहा है अपने सामने के एक टैक्सी-ड्राइवर को।

इसी बीच सामने एक काले रग की प्राइवेट गाडी आ गई। कुछ गाडिया गवर्नमेट हाउस की ओर जा रही थी, कुछ जा रही थी सामने। कुछ पूरब की ओर धर्मतल्ला स्ट्रीट मे घूम रही थी। डबल डेकर घूम रहा था धर्मतल्ला की ओर। उसके पीछे एक लॉरी थी।

अरे–अरे–अरे !

अद्भुत कौशल से प्राइवेट गाडी और गाडियो को दाहिने-बाये छोडती आगे बढ गई।

पजाबी सिख ड्राइवर ने कहा—मर जाएगा साला !

अजीब अशुभ बात निकल गई उसके मुह से।

एक भयानक आवाज से अशुमान की विचारधारा मे बाधा पडी। वह चौंक उठा।

निश्चय वही डबल डेकर है। सामने की ओर देखते ही उसका शरीर-मन सिहर उठा, नही, डबल डेकर नही, यह एक हैवी ट्रक है,

जिसने एक प्राइवेट को धक्का मार दिया है। धक्का बगल से लगा है। एक ओर का कुछ हिस्सा चरमराकर टूट गया है, कुछ पिचक गया है।

साथ ही साथ तीन-चार सीटिया बज उठी। यहा तीन-चार टी० पी० रहते है। वे ज़ोर से ह्विसल देते हुए गाडी की ओर दौडे आ रहे है। उनमे से एक ने दोनो हाथ फैलाकर सब तरफ का ट्रैफिक बन्द कर दिया है। ब्रेक लगाने की एक असहनीय आवाज़ सुन पडी। इसी आवाज़ से शरीर सिहर उठता है। जेट प्लेन के उतरने के समय जैसी आवाज़ होती है, यह बहुत कुछ उसी तरह की आवाज़ है। शरीर ठीक सिहर नही उठता, सारे शरीर की स्नायु-शिराए मानो उस आवाज़ से मुड-तुडकर कुडली मार लेना चाहती है। साप जैसे कुडली मारकर ज़रा-सा हो जाता है, घोघा जैसे अपनी खोल मे घुस जाता है, या उससे भी अधिक चारा जैसे टेढा-तिरछा होकर छटपटा उठता है, वैसी ही हो जाती है। उसीके साथ शरीर का यह रिफ्लेक्स ऐक्शन ज्यादा मेल खाता है। आदमी चेतना और चैतन्य की बडाई करता है—लेकिन ऐसे मौको पर वह कहा रहता है, इसका कोई ठिकाना नही। निर्गुण ब्रह्म की तरह अवाड् मनस गोचर हो जाता है।

आस-पास से लोग धडफड दौडे आ रहे है। चारो ओर से घिरकर भीड लगा देते है। उधर सामने आदमियो का एक झुड है, एक टी० पी० बेंटिक स्ट्रीट पर दौडा जा रहा है।

अशुमान की टैक्सी के ड्राइवर ने कहा—वह लॉरी ड्राइवर कूदकर भागा है। वह भाग रहा है—वह!

हा, वही भाग रहा है। बेचारा प्राणभय से भाग रहा है। पकड मे आने पर फिर उसकी खैरियत नही है। सास रोके दौडा जा रहा है। वह उस गली मे घूम गया।

टैक्सी ड्राइवर ने कहा—लेकिन उसका कसूर नही था साहब! सारा कसूर प्राइवेट चलानेवाले बाबू का था। बाबू ने लॉरी को ओवर-टेक करने की कोशिश की। इसने भी टर्न लिया, उसने भी टर्न लिया। लॉरी पहले गई, प्राइवेट पीछे से टर्न लेती हुई लॉरी से जा टकराई। आजकल का नया प्राइवेट सिर्फ टीन है। एकदम टीन। उसने स्टियरिंग

छोडकर दाहिने हाथ पर बाये हाथ की मुट्ठी बाधकर घूसा मारा। अर्थात् प्राइवेट गाडी चूर हो गई है।

—जानी नुकसान हुआ ? कोई मर गया ?

—क्या मालूम ? ड्राइव करनेवाला मर गया होगा; क्योकि धक्का पीछे की ओर लगा है। मर गया होगा।

टैक्सी खडी हो गई थी। अशुमान उतरकर ऐक्सिडेंट वाली गाडी की ओर बढ गया।

यह क्या ? यह तो सीता है। गाडी के अन्दर बेहोश होकर पडी है या मर गई है। और एक बच्चा।

अशुमान को कभी ऐसा अनुभव नही हुआ था। वह जाने कैसा हो गया। आकस्मिक आघात से बेहोश होने के पहले वाले क्षण मे अथवा चेतना जाते-जाते, जाने के अन्तिम क्षण मे मनुष्य को जैसा अनुभव होता है, शायद वैसा ही। रोशनी जैसे बुझ गई—अथवा वृत्त के रूप मे सकुचित होकर उसे केन्द्र मे लेकर टिकी रही; सब कुछ खो गया; सब कुछ थम गया; सब कुछ निस्तब्ध हो गया, कही कोई आवाज नही है—सब कुछ नि शब्द हो गया है; ठीक वैसी ही अनुभूति से अशुमान आच्छन्न हो गया।

पुराणो मे मनुष्य के पत्थर हो जाने की बात लिखी है।

ऋषि गौतम के शाप से उनकी द्विचारिणी पत्नी अहल्या पाषाणी हो गई थी। अशुमान को लगा, वह भी पत्थर हुआ जा रहा है।

अहल्या की प्रस्तरीभूत देह मे बन्दी आत्मा की तरह ही मानो उसकी आत्मा ने चीत्कार करना चाहा, लेकिन कर नही सकी। उसके गले से कोई आवाज़ न निकली।

पूरी तरह से निस्तब्ध हो गया है ससार।

रोशनी मानो मिटती-मिटती केवल आभास के रूप मे उसकी आखो के सामने बनी हुई है।

अशुमान ने स्पष्ट अनुभव किया कि पृथ्वी जो सूर्य के चारो ओर लम्बाई लिए एक गोलाकार कक्ष-पथ पर अनिवार और निरन्तर घूर्ण

मानता तथा चल मानता के साथ घूमती रहती है, वह घूर्ण मानता थम गई है, उस वेगवत्ता मे बाधा पड गई है। सामने पैर टिकाने के लिए मिट्टी नही रही दुनिया मे, और उस पैर को वह आगे बढाएगा ही कैसे, उसमे तो पैर को हिलाने की भी ताकत नही रह गई। जो पृथ्वी उसकी पृथ्वी है—जिस पृथ्वी पर वह जनमा है—जिसपर उसने अपने जीवन-यौवन का सिक्का जमाया है, वह अचानक एक जीवन-स्पदनहीन जड पदार्थ के स्तूप के रूप मे परिणत हो गई है—उसके साथ-साथ वह भी पत्थर हुआ जा रहा है।

एक शिशु के रक्त के स्पर्श से सारी पृथ्वी पत्थर हुई जा रही है—साथ ही साथ वह भी पत्थर हुआ जा रहा है। इसके बीच भी वह कैसे चेतना के अन्तिम छोर के बिन्दु पर खडा है, यह वह भी नही समझ पाता। बुझे जा रहे दीपक की बाती के छोर पर टिके क्षीणतम आलोक और उत्ताप को प्राणपण से जकडकर वह बचा या जागा हुआ है।

जीवनी-शक्ति या परमायु बडी आश्चर्यजनक शक्ति है। देह मे रक्त-स्रोत जमकर पत्थर हो जाता है, लेकिन प्राण नही निकलते और हार्ट फेल होने से कैसी आसानी से आदमी मर जाता है, ऐक्सीडेंट मे पल-भर मे मृत्यु हो जाती है।

उसे लगता है, मानो एक बच्चे के रक्त-स्रोत से सारी पृथ्वी पर रक्त की बाढ आ गई है। सब कुछ डूब गया है। सिर्फ वही गले तक डूबकर और नही डूब पा रहा—सिर उठाकर सब कुछ देख रहा है।

मोटर के एक तरफ सीता पडी हुई है—दूसरी ओर चार बरस का एक बच्चा खून मे डूब रहा है। बच्चे का बाया हाथ टूटे हुए दरवाज़े की सेंध मे कुचलकर अटका हुआ है। देह से बिलकुल अलग हो गया है।

ओः! सीता! सीता का बच्चा! सीता की माग मे सिंदूर!

उसने स्वय अपने दोनो हाथो पर उठाकर बच्चे को टैक्सी पर डाल दिया था—उसके रक्त से उसका शरीर, उसका कपडा-लत्ता रग गया था। उसके पीछे-पीछे दो आदमियो ने बच्चे की बेहोश मा को (लोगो

ने उसे मा ही समझा था, क्योकि गाड़ी मे कोई और महिला नही थी) लाकर गाडी की पिछली सीट पर लिटा दिया था। तभी वह चौक उठा था, क्योकि वह औरत सीता थी। तभी उसका चित्त चचल हो उठा था—मन जाने कैसा उद्भ्रान्त हो गया था।

सीता ! तो यह लडका सीता का लडका है !

तब भी वह लडका सिर्फ सीता का लडका था। उससे अधिक कुछ नही। मेडिकल कॉलेज मे पहुचकर (धर्मतल्ला के मोड से मेडिकल कॉलेज ही सबसे नजदीक है) उसने उस लडके को स्ट्रेचर पर सुला दिया था। रास्ते-भर कभी वह सीता को और कभी लडके को देखता रहा है और अंधेरी रात मे जुगनू की तरह हजारो या असख्य, असबद्ध और विक्षिप्त विचार, उसके मन मे एक-एक छोटी दीप्त रेखा खीच गए है। उन सबको मिलाकर और एक लम्बी रेखा से जोडकर वह कही से कही पहुच सके, इसका भी कोई उपाय नही था, क्योकि एक बार के लिए जलकर ही वह रेखा अधकार मे खो गई या बुझ गई है।

सीता !

सीता का लडका !

लडके का बाया हाथ गाडी के पिचक गए दरवाज़े के साथ पिच गया है—अन्दर की हड्डिया चूर-चूर हो गई है। मास लिथड गया है। ओ ! कितना खून गिरा है ! ओः ! लडका क्या ज़िंदा है ?

सीता भी बेहोश है।

सीता की माग मे सिदूर का आभास है।

सीता ने ब्याह किया है।

इसी तरह अनेक असलग्न विचार मन मे जुगनू की तरह जल रहे थे, बुझ रहे थे। उन्हीके बीच वह मेडिकल कॉलेज मे आ पहुचा था।

लडका शुरू से उसीकी गोद मे था।

सीता के पति, जिसे उसने लडके का बाप समझा था, वे सज्जन··· ऐक्सिडेंट उन्हीके दोष से हुआ था। हा, उन्हीके दोष से। उसका टैक्सी ड्राइवर उन लोगो के पीछे ही था। उसने कहा था, कुछ देर से इस प्राइवेट को उसने किस तरह बे-कायदे ड्राइव किया था। ऐक्सीडेंट

हो जाएगा। गाडी की दाहिनी ओर से पास करना चाहता है। कैसा ड्राइव करता है। ठीक वही हुआ। एक लॉरी की दाहिनी ओर से ओवर टेक करने गया, ठीक धर्मतला के मोड पर। और टक्कर हुई। वह कैसी आवाज़ थी! गाडी का बाईं तरफ का पिछला हिस्सा चूर-चूर होकर भीतर घुस गया था। पीछे की सीट पर थी मा और बच्चा। लडका ही बाईं ओर के दरवाज़े के पास था। शायद उसने बायें हाथ से दरवाज़े का हैंडिल पकड रखा था। अचानक टक्कर लगी। कुचलकर, टूटकर चपटा हो गया है—अन्दर नर्म हड्डी टुकडे-टुकडे हो गई है। इस प्रकृति-जगत् का विधान विचित्र है। वह अधा है, बहरा है,—उसे कोई विचार नही है। उन बाप सज्जन (तब उसने उनको बाप ही समझा था) के अपराध से, गलती से टक्कर हुई थी और उसका सबसे निष्ठुर आघात, कहना चाहिए कि इस आघात का सामने का धक्का आ पडा इस लडके के ऊपर और वे सज्जन आश्चर्यजनक सुरक्षा के बीच बिलकुल बेदाग बच गए। एकदम बेदाग। इतने बेदाग कि उन्हे अस्पताल ले जाने की ज़रूरत किसीने नही समझी। उसके बदले उन्हे थाने ले गए थे।

इमर्जेन्सी वार्ड मे पहुचाकर अनायास ही वह चला आ सकता था; लेकिन ऐसे मामलो मे अनायास आया जा सकने पर भी आया नही जाता; इसके अलावा ऐसा जान पडा था, जैसे उस औरत को सीता के रूप मे पहचानने के बाद वह किसी दलदली ज़मीन पर पैर रखकर अटक गया था।

सीता को अलग ले गए है। उसे एक टेबुल पर सुला दिया है। लडके को अलग रखा है। वह रुक गया। बाहर खडा रहा—बिलकुल बेमतलब खड़ा रहकर उसने साथ के कान्स्टेबल से ही कुछ बातें की थी।

बातें उस लड़के के बारे मे ही थी। अचानक खून की बात निकल पड़ी। डॉक्टरो ने ही आकर खून की बात कही।

उसने खुद ही कहा था—यह मेरा कोई नही है, फिर भी मैं खून दे सकता हूं।

खून ले लेने के बाद एक डॉक्टर ने कहा था—वाह, यह तो एक

ही ग्रुप का खून है। तब तो लडका बच जाएगा। इसीको कहते हैं सुभीता।

उसका नाम-धाम लिख लेने के बाद उसकी ओर देखकर डॉक्टर ने कहा था—अशुमान चौधरी—यानी लेखक, नाट्यकार, ऐक्टर, डाइरेक्टर ··

मुह से हा या ना कुछ भी न कहकर वह सिर्फ ज़रा-सा हसा था। उसके बाद नमस्कार करके चला आया था।

डॉक्टर यदि नाम सुनकर अचरज से प्रश्न न करता और वह यदि उस तरह एक हल्की-सी नीरव हसी के द्वारा एक नाटकीय मुहूर्त की सृष्टि करने का सुयोग न पाता तो शायद वह कुछ देर और रुकता। लड़के से भी बहुत ज्यादा आकषर्ण उसे सीता के लिए था।

सीता !

रामायण के राम की सीता नही। अशुमान की सीता। पांच-छः साल पहले सीता एक दिन अशुमान की प्रिय बाधवी थी। एक बार दोनो ने गृहस्थी बसाने का सपना भी देखा था। लेकिन उस एक छोटे-से नाटकीय मुहूर्त की सृष्टि के बाद वह नही रहा। वह अभ्यासवश चला आया था। एक और कारण हो गया था। वे सज्जन, सीता के पति, इसी समय थाने से मेडिकल कालेज आ पहुचे थे। सीता और उनके बीच खडे होने की उसकी इच्छा नही हुई। उन लोगो को अच्छा न लगेगा। उससे भी ज्यादा यह कि उसे अच्छा न लगेगा।

घर लौटकर भी उसे शान्ति नही मिली।

स्नानघर मे जाकर उसने सीता और उस बच्चे के खून से सने सारे कपडे उतारकर स्नान किया था।

उस रात, सारी रात उसे नीद नही आई। आज सवेरे जेट प्लेन उसे जगा गया है।

इसी बीच रंजन आया है। एक और सज्जन आए है।

ये लोग मेडिकल कालेज से ही आए है।

सीता ने उन लोगो को उसीके पास-भेजा है। जिस लडके को उसने

गोद, मे उठाकर इमर्जेन्सी-टेबुल तक पहुचा दिया था, जिसके लिए उसने खून दिया था, वह उसीकी सतान है। सीता ने उससे अनुरोध किया है कि द्वैपायन का अन्तिम सस्कार वही करे। उसने लडके का नाम रक्खा था द्वैपायन।

सीता को कोई खास चोट नही आई। उसे कल ही छुटकारा मिल जाता। सिर्फ उस बच्चे के लिए उसे रोक रक्खा था।

सीता रानाघाट के पास एक स्कूल मे मास्टरी करती है।

कुछ दिनो के लिए वह अपनी दीदी के यहा आई थी। लौट रही थी अपनी नौकरी पर। दीदी का बडा लडका गाडी चला रहा था। ट्रेन छूटने मे देर नही थी। फिर भाग्य की बात।

अशुमान भाग्य को नही मानता। लेकिन यह बात वह नहीं कह सका। उसने सिर्फ इतना ही कहा—चलो, चलता हू।

उसके बाद उसने कहा—क्या सीता से भेट न होगी एक बार ?

उसकी आखो मे क्या आसू भर रहे हैं ?

उसने आखो के आसू पोछ लिए।

अस्पताल से मृत शिशु के शव को एक नई कीमती तौलिया मे और बचपन के अपने एक कश्मीरी रूमाल-शाल मे (लम्बाई-चौडाई में बराबर, जरी के कामवाला शाल। बीच से तिरछा मोडकर त्रिकोण बनाकर उसे बदन पर रक्खा जाता है।) लपेटकर, उसे कलेजे से लगाए जब वह श्मशान मे पहुचा, उस समय तीसरा पहर चढ आया था। साथ मे रजन था। कुछ देर बाद एक दूसरी टैक्सी से शिर्वाककर आ पहुंचा। वह थोडी अच्छी-सी चन्दन की लकडी और चन्दन का चूरा, कीमती धूप-बत्ती और गाय का घी ले आया था। आदेश अशुमान का ही था।

जाने उसके मन में क्या आया कि उसने अस्पताल जाने के रास्ते मे—रास्ते के बीच ही मे, यह आदेश देकर उसे हैरिसन रोड और सेट्रल एवेन्यू के चौराहे पर उतार दिया था। यह सब तुम लेते आओ।

फूल रजन ले आया।

किसीने कुछ पूछा—कहा नही। कोई बात ही नही उठी। नीरव,

नि:शब्द रहकर उसने सब अन्तिम कर्म किए। बच्चे को चिता मे रखकर, उसमे आग लगाकर वह गगा के किनारे आ बैठा और गगा की धारा की ओर मुह किए बैठा रहा।

चन्दन की गध फैल रही है; धूपबत्तिया जल रही है; घी जल रहा है। आसमान की ओर धुआ उठ रहा है। बस, शरीर के जल जाते ही···

सब खत्म ? नही तो !

अशुमान ! अशु !—शिवकिंकर ने पुकारा।

अशुमान ने घूमकर देखा।

शिवकिंकर को अपनी बात कहनी न पडी। सीता घाट पर आकर चिता के पास खड़ी हो गई है। वह पानी ढालकर चिता को बुझा देने के लिए आई है। अपलक आंखो से देख रही है। उसकी आखो मे एक बूंद आसू नही है।

चिता बुझ गई।

अशुमान ने कलसी मे जल लाकर ढाल दिया। एक बार, दो बार, तीन बार। अन्तिम बार जल ढालकर वह रुक गया। कलसी उसने आगे बढ़ा दी।

सीता ने कलसी लेकर कहा—मुह मे आग दी थी ?

—दी थी, यानी चिता मे आग लगाई थी। कोई मन्त्र-वन्त्र नही पढा। उसपर तो मैं विश्वास नही करता।

अशुमान पश्चिम की ओर देखता सोच रहा था। सोच रहा था—यही क्या भविष्य है ?

सीता ने चिता को धोकर, बची हुई कई हड्डियां चुन ले जाकर गगा के जल मे बहा दी। बोली तुम्हे अमृतलोक मिले !

सब कुछ मिथ्या है। कम से कम सत्य नही है। लेकिन इसके बारे मे किसीने किसीसे कोई बात नही की। सीता ने सिर्फ इतना ही कहा—मैं जा रही हू।

वह चली गई।

अशु थोड़ी देर खड़ा रहकर श्मशान से बाहर निकल आया। एक

बार उसके मन मे आया था, सीता को पुकारे। लेकिन नही। सीता लौटेगी नही; लौट नही सकती। वह भी उसे न पुकारेगा। उसे पुकारा नही जा सकता। नही, नही पुकारा जा सकता। दोनो की राहे दो ओर चली गई है—विपरीत दिशा मे।

